VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.Com.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-II

# व्यावसायिक अर्थशास्त्र

## SYLLABUS

**UNIT-I** **Introduction :** Meaning, Nature and Scope of Business Economics, Population Theory, Law of Demand, Law of Marginal Diminishing Utility, Elasticity of Demand, Concept and Measurement of Elasticity of Demand Price, Income, Cross Elasticity, Determinants of Elasticity of Demand, Importance of Elasticity of Demand. Thoughts of Famous Economist of India Including—Kautilya.

**UNIT-II** **Theory of Cost :** Short run and Long run Cost Curve, Traditional and Modern Approaches, Production, Function : Law of Variable Proportion; Properties, Ride Line, Optimum Factor Combination and Expansion Path; Return to Scale; Internal and External Economics and Diseconomies.

**UNIT-III** **Market Structure & Pricing :** Concept, Types of Markets; Perfect Competition—Characteristics, Price Determination under Perfect Competition. Monopoly—Characteristics and Price Determination under Monopoly. Oligopoly—Characteristics, Pricing Policy.

**UNIT-IV** **Business Cycle :** Various Phases and its Causes; Theory of Distribution; Marginal Productivity Theory, Wage—Meaning, Determination of Wage Rate Under Perfect Competition and Monopoly, Rent Concept, Modern Theories of Rent, Interest Concept and Theories of Interest, Profit—Concept and Theories of Profit.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

**पंजीकृत कार्यालय**
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

**सम्पादन एवं लेखन**
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

**मुद्रक**
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

# विषय-सूची

**UNIT-I** व्यावसायिक अर्थशास्त्र का परिचय ...3
**UNIT-II** लागत का सिद्धान्त एवं उत्पादन फलन ...41
**UNIT-III** बाजार संरचना एवं कीमत ...71
**UNIT-IV** व्यापार चक्र ...113

**मॉडल पेपर** ...143

# UNIT-I

# व्यावसायिक अर्थशास्त्र का परिचय
# Introduction to Business Economics

## खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं?**
**What do you understand by business economics?**

**उत्तर** व्यावसायिक अर्थशास्त्र उन आर्थिक सिद्धान्तों का अध्ययन है जिनका उपयोग व्यवसाय की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए होता है।

**प्र.2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।**
**Write any two features of business economics.**

**उत्तर** व्यावसायिक अर्थशास्त्र की विशेषताएँ—

1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र 'फर्म के सिद्धान्त' से सम्बन्धित होता है।
2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र धनात्मक की अपेक्षा आदर्श अधिक है।

**प्र.3. आर्थिक सिद्धान्तों के व्यावसायिक अर्थशास्त्र में कोई दो उपयोग लिखिए।**
**Write any two uses of economic prinicples in business economics.**

**उत्तर** आर्थिक सिद्धान्तों के व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उपयोग निम्न हैं—

1. आर्थिक लागतों एवं लेखा लागतों की धारणाओं में समन्वय।
2. व्यवसाय को प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियों का ज्ञान एवं प्रबन्धकीय निर्णयों में समायोजन।

**प्र.4. अनुकूलतम जनसंख्या की परिभाषा दीजिए।**
**Write the definition of optimum population.**

**उत्तर** **बोर्ल्डिग** के अनुसार, "वह जनसंख्या जिस पर जीवन स्तर अधिकतम होता है, अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है।"

**प्र.5. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।**
**Write any two features of optimum population theory.**

**उत्तर** अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की विशेषताएँ—

1. यह सिद्धान्त परिवर्तनशील अनुपात या उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है।
2. अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु गतिशील होता है।

**प्र.6. माँग को प्रभावित करने वाले चार तत्त्वों को लिखिए।**
**Write four factors affecting the demand.**

**उत्तर** माँग को प्रभावित करने वाले चार तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. वस्तु की उपयोगिता
2. धन का वितरण
3. वस्तु की कीमत एवं
4. भविष्य में कीमत परिवर्तन की आशा।

TOUCH 'n PASS

**प्र.7. माँग को मुख्य रूप से कितने रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है?**
**Into how many forms the demand can be mainly classified?**

**उत्तर** माँग को मुख्य रूप से तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. कीमत माँग (Price demand)
2. आय माँग (Income demand) एवं
3. आड़ी अथवा तिरछी माँग (Cross demand)।

**प्र.8. माँग तालिका से आप क्या समझते हैं?**
**What do you understand by demand schedule?**

**उत्तर** किसी दिये समय पर वस्तु की विभिन्न कीमतों एवं उन कीमतों पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं के पारस्परिक सम्बन्धों को बताने वाली तालिका माँग तालिका कहलाती है।

**प्र.9. माँग की लोच से आपका क्या तात्पर्य है?**
**What do you mean by elasticity of demand?**

**उत्तर** माँग की लोच अथवा माँग की कीमत लोच का अभिप्राय कीमत के सूक्ष्म परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन की माप से है।

**प्र.10. माँग की कीमत लोच को कितने भागों में वर्गीकृत किया जाता है?**
**Into how many parts is the price elasticity of demand classified?**

**उत्तर** माँग की कीमत लोच को पाँच भागों में वर्गीकृत किया जाता है—

1. सापेक्षत: लोचदार माँग
2. सापेक्षत: बेलोचदार माँग
3. इकाई लोचदार माँग
4. पूर्णत: बेलोचदार माँग एवं
5. पूर्णतया लोचदार माँग।

**प्र.11. माँग की लोच को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार तत्त्वों के नाम लिखिए।**
**Name any four factors affecting the elasticity of demand.**

**उत्तर** माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व—

1. वस्तु की प्रकृति
2. वस्तु के वैकल्पिक प्रयोग
3. उपभोग स्थगन और
4. संयुक्त माँग अथवा वस्तुओं की पूरकता।

**प्र.12. माँग की आड़ी लोच का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of cross elasticity of demand?**

**उत्तर** एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उससे सम्बन्धित वस्तु की माँग पर पड़ने वाले मात्रात्मक प्रभाव को माँग की आड़ी लोच कहा जाता है।

**प्र.13. माँग की लोच का अर्थशास्त्र में क्या महत्त्व है?**
**What is the importance of elasticity of demand in economics?**

**उत्तर** माँग की लोच का अर्थशास्त्र में महत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. मूल्य सिद्धान्त में उपयोगी
2. एकाधिकारी के लिए उपयोगी
3. सरकार के लिए उपयोगी एवं
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उपयोगी।

TOUCH 'n' PASS

## खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र का क्या अर्थ है? इसकी परिभाषा भी लिखिए।**
**What is the meaning of business economics? Also write its definition.**

**उत्तर**

### व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
### (Meaning and Definition of Business Economics)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र परम्परागत अर्थशास्त्र का ही एक भाग है। इसमें व्यावसायिक फर्म की समस्याओं का अध्ययन होता है। अर्थशास्त्र निरपेक्ष आर्थिक सिद्धान्तों (Abstract Economic Theories) से सम्बन्धित है। व्यावसायिक अर्थशास्त्र उन आर्थिक सिद्धान्तों का अध्ययन है जिनका उपयोग व्यवसाय की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए होता है।

**परिभाषाएँ (Definitions)**

व्यावसायिक अर्थशास्त्र की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **हेन्स तथा अन्य** के अनुसार, "प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र व्यावसायिक निर्णयों में प्रयुक्त किया जाने वाला अर्थशास्त्र है। यह अर्थशास्त्र की वह विशिष्ट शाखा है जो विशुद्ध सिद्धान्तों एवं प्रबन्धकीय व्यवहार के मध्य सेतु का काम करती है।"
2. **स्पेन्सर व सीगिलमैन** के अनुसार, "व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों तथा व्यावसायिक व्यवहारों का इस उद्देश्य से किया गया समन्वय है कि प्रबन्धकों को निर्णय लेने और आगे के लिए नियोजन करने में सुविधा हो।"

उपर्युक्त परिभाषाओं में केवल बाह्य अभिव्यक्ति में अन्तर है जबकि आन्तरिक स्वर एक ही है। इसका कारण यह है कि प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र ज्ञान की अपेक्षाकृत एक नवीन शाखा है तथा वह अपने विकास के प्रारम्भिक स्तर पर है और यह अभी अपना अन्तिम आकार नहीं ग्रहण कर सकी है। अत: अभी तक ऐसी परिभाषा प्रस्तुत नहीं की जा सकी है जो इस विषय की प्रकृति, अध्ययन-क्षेत्र तथा सीमाओं को स्पष्ट करती हो। एक ऐसी परिपूर्ण परिभाषा के निर्माण में **प्रो. बामोल** की **साम्यीकरण** (Optimisation) की धारणा काफी सहायक है। बामोल ने व्यावसायिक अर्थशास्त्र की कोई निश्चित परिभाषा तो नहीं दी है परन्तु अपनी पुस्तक 'Economic Theory and Operations Analysis' में साम्यीकरण की धारणा को विस्तारपूर्वक समझाया है। वस्तुत: यही धारणा व्यावसायिक अर्थशास्त्र का आधार है। बामोल की साम्यीकरण की धारणा के आधार पर व्यावसायिक अर्थशास्त्र को इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है—

"व्यावसायिक अर्थशास्त्र, विशिष्ट अर्थशास्त्र का वह भाग है जिसमें एक फर्म के आचरण का विश्लेषण आर्थिक सिद्धान्तों, मान्यताओं व धारणाओं के आधार पर कार्यात्मक अनुसन्धान में प्रयुक्त विभिन्न साधनों की सहायता से किया जाता है, ताकि सम्यक निष्कर्ष प्राप्त हों।"

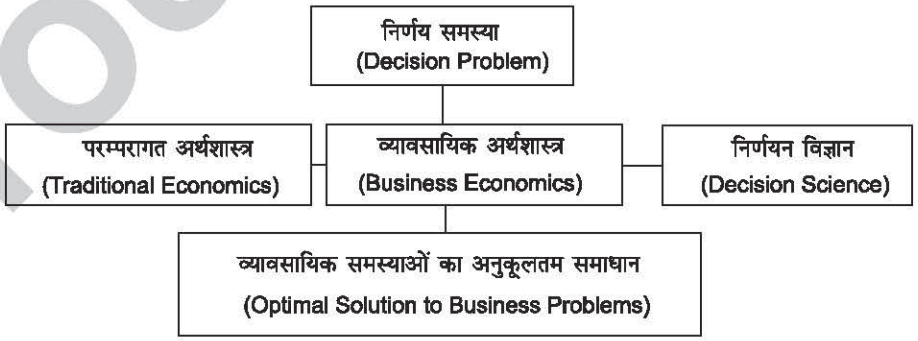


उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निश्चित होता है कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत व्यावसायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में परम्परागत अर्थशास्त्र और निर्णयन-विज्ञान के बीच एक सेतु का काम करता है।

TOUCH 'n PASS

**प्र.2. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the main characteristics of business economics.**

**उत्तर**

## व्यावसायिक अर्थशास्त्र की मुख्य विशेषताएँ
## (Chief Characteristics of Business Economics)

1. **आर्थिक सिद्धान्तों एवं प्रबन्धकीय व्यवहारों का समन्वय**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र, आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यवहार का समन्वय है जो ज्ञान की इन दोनों शाखाओं के मध्य एक सेतु का कार्य करता है। फर्म के दैनिक क्रिया-कलापों में सिद्धान्त जहाँ मार्ग निर्देशन का कार्य करते हैं, वहीं व्यावहारिकता सफलता की कुंजी है। इसी कारण व्यावसायिक निर्णयों में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के प्रयोगों का महत्त्व बढ़ रहा है।
2. **निर्देशात्मक प्रकृति**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र निर्देशात्मक प्रकृति का है इसमें सिद्धान्तों तथा आर्थिक विश्लेषणों का किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है, इसका अध्ययन होता है। यह वर्णनात्मक आधार पर सिद्धान्तों का वर्णन नहीं करता।
3. **विशिष्ट अर्थशास्त्र**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र में फर्म से सम्बन्धित कार्यों, घटनाओं तथा समस्याओं का अध्ययन होने के कारण यह विशिष्ट अर्थशास्त्र भी कहा जाता है।
4. **फर्म के सिद्धान्त से सम्बन्धित**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र 'फर्म के सिद्धान्त' से सम्बन्धित होता है। फर्म के सिद्धान्त के अन्तर्गत माँग व पूर्ति का विश्लेषण, लागत व आय का विश्लेषण, सन्तुलन, उत्पादन, मात्रा व मूल्य का निर्धारण तथा लाभ अधिकतमकरण आदि का विस्तृत अध्ययन होता है।
5. **आदर्श अर्थशास्त्र**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र धनात्मक की अपेक्षा आदर्श अधिक है। यह 'क्या है' की अपेक्षा 'क्या होना चाहिए' पर अधिक बल देता है। 'व्यापार का क्या लाभ है?' की अपेक्षा? 'लाभ की मात्रा को कैसे बढ़ाया जा सकता है?' इस पर अधिक बल दिया जाता है।
6. **समष्टिगत अर्थशास्त्र से सम्बन्धित**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अध्ययन से व्यवसाय प्रबन्धक को उस वातावरण की जानकारी प्राप्त होती है जिसके अन्तर्गत उसकी फर्म को कार्य करना होता है। एक व्यक्तिगत फर्म सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली का एक सूक्ष्म रूप होती है। अत: प्रबन्धक को बाह्य तत्त्वों; जैसे—व्यापार चक्र, राष्ट्रीय आय लेखांकन, सरकार की विदेश व्यापार नीति, कर-नीति, मूल्य-नीति, श्रम नीति आदि के अनुरूप समायोजन करना होता है क्योंकि इन तत्त्वों पर उसका नियन्त्रण नहीं होता है लेकिन व्यवसाय पर उनका प्रभाव पड़ता है।
7. **अधिक परिष्कृत एवं नवोदित विषय**—सामान्य अर्थशास्त्र की तुलना में व्यावसायिक अर्थशास्त्र परिष्कृत होने के साथ-साथ एक नवोदित विषय भी है। इसके विश्लेषण में गणितीय रीतियों और वैज्ञानिक उपकरणों का व्यापक प्रयोग होने, कम्प्यूटर आदि का भी समावेश होने के कारण इसकी गणना परिष्कृत विषयों में होती है। इस विषय का विकास मुख्यत: द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ-साथ हुआ है इसीलिए इसे नवोदित विषयों की श्रेणी में रखा जाता है। यह विकासशील शास्त्र है। ज्ञान की अपेक्षाकृत नवीन शखा है जो अपने विकास के प्रारम्भिक स्तर पर है।
8. **अधिक व्यावहारिक उपयोगिता**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्तों एवं विश्लेषणों को आर्थिक निर्णयों और नीति निर्धारण में प्रयुक्त करने की विधि बताता है, अत: यह सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक उपयोगिता का सशक्त साधन है।

**प्र.3. व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति का वर्णन कीजिए।**
**Describe the nature of business economics.**

**उत्तर**

## व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति
## (Nature of Business Economics)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति का अध्ययन कर हमें निर्धारित करना है कि क्या यह विज्ञान है, अथवा कला अथवा दोनों? यदि विज्ञान है तो क्या यह वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान।

**व्यावसायिक अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में**—क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है जिसमें नियमों का प्रतिपादन होता है, नियमों की सत्यता की जाँच होती है, भविष्यवाणी की जा सकती है। इस दृष्टि से व्यावसायिक अर्थशास्त्र भी विज्ञान लगता है क्योंकि इसके भी नियम एवं सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों की सत्यता की जाँच की जा सकती है और क्रमबद्ध ज्ञान होने के साथ-साथ इसमें भविष्यवाणी भी की जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

**व्यावसायिक अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान के रूप में**—विज्ञान दो प्रकार का होता है—वास्तविक एवं आदर्श वास्तविक विज्ञान में वस्तु स्थिति का अध्ययन किया जाता है अर्थात् वास्तविक विज्ञान 'क्या है' का अध्ययन करता है।
व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किसी फर्म के उत्पादन की लागत, उसकी माँग, लाभदेय क्षमता तथा भविष्य में उन्नति की सम्भावनाओं आदि का क्रम से विश्लेषण कर उसका निष्कर्ष निकाला जाता है कि उस फर्म की आर्थिक स्थिति क्या है? क्या वह प्रतिस्पर्द्धा तथा अनिश्चितता के वातावरण में अपनी नियोजित पूँजी अपेक्षित लाभदेय क्षमता रखती है? यदि नहीं तो क्यों? अत: क्या है? (What is?)' का पूरा समाधान व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ही किया जाता है इसलिए यह वास्तविक विज्ञान कहलाता है।
**व्यावसायिक अर्थशास्त्र आदर्श का अंग है**—वास्तविक विज्ञान तो कारण एवं परिणाम की निरपेक्ष व्याख्या करता है—'क्या है' जबकि आदर्श विज्ञान 'क्या है?' और 'क्या होना चाहिए' के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। इस दृष्टि से व्यावसायिक अर्थशास्त्र केवल व्यावसायिक फर्मों की क्रियाओं, घटनाओं एवं समस्याओं का सैद्धान्तिक विश्लेषण ही नहीं करता वरन् उनके व्यावहारिक समाधान की भी खोज करता है। अत: व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति निर्देशात्मक (Prespective) है। आर्थिक सिद्धान्तों के सैद्धान्तिक विवेचन से इन सिद्धान्तों के निर्णय, नीति निर्धारण तथा नियोजन में क्रियाशीलता को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। एक फर्म के उत्पाद की मात्रा क्या होनी चाहिए? उसकी माँग क्या होगी? लाभदेय क्षमता में कितनी वृद्धि की जा सकती है? उत्पादित वस्तु के मूल्य में कितनी वृद्धि या कितनी कमी की जा सकती है? आदि का विश्लेषण व्यावसायिक अर्थशास्त्र में होता है। इसलिए व्यावसायिक अर्थशास्त्र केवल संस्था की क्रियाओं और समस्याओं का सर्वेक्षण ही नहीं करता है बल्कि उनके प्रायोगिक समाधान की खोज करता है। अत: यह वास्तविक विज्ञान ही नहीं बल्कि आदर्श विज्ञान भी है।
**व्यावसायिक अर्थशास्त्र कला भी है**—किसी कार्य को सर्वोत्तम ढंग से करने की क्रिया है, इस दृष्टि से हमें व्यावसायिक अर्थशास्त्र में भी कला के गुण दिखाई देते हैं। व्यावसायिक अर्थशास्त्र भी एक कला है क्योंकि यह प्रबन्धक को अनेक विकल्पों में से सही विकल्प को चुनने में सहायता प्रदान करता है। सही विकल्प को चुनना ही सही निर्णयन कहलाता है। एक व्यावसायिक संस्था के साधन सीमित होते हैं तथा उन साधनों के अनेक वैकल्पिक उपयोग होते हैं। अत: प्रबन्धक को इन विकल्पों में से एक का चयन करना होता है। सही चयन की यह प्रक्रिया बड़ी जटिल होती है क्योंकि संस्था का भविष्य अनिश्चित होता है। व्यावसायिक अर्थशास्त्र का यह 'कला' तत्त्व ही प्रबन्धक को अनिश्चित एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में निर्णय लेने तथा भावी नियोजन के क्रियान्वयन में सहायता करता है। संस्था की लाभदेय क्षमता में उत्पादन बढ़ाकर, मूल्य बढ़ाकर अथवा लागत घटाकर या अन्य तरीकों से किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है, इसका निर्णय, व्यावसायिक अर्थशास्त्र के 'कला' पक्ष द्वारा ही होता है। अत: व्यावसायिक अर्थशास्त्र एक कला भी है।

**प्र.4. माल्थस के सिद्धान्त को किन बिन्दुओं के आधार पर सत्य सिद्ध किया जा सकता है?**
**On the basis of which points can Malthus's theory be proved authentic?**

**उत्तर**

## माल्थस के सिद्धान्त की सत्यता
## (Authenticity of Malthus's Theory)

संक्षेप में माल्थस के सिद्धान्त में पाई जाने वाली सत्यता को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है—

1. माल्थस का यह निष्कर्ष आज भी सत्य है कि यदि मानव द्वारा प्रतिबन्धों का प्रयोग न किया गया तो जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ेगी जो अनेक समस्याओं को जन्म देगी।
2. यह सिद्धान्त प्रगतिशील और उन्नत देशों में भी अपनी यथार्थता को प्रमाणित करता है। फ्रांस, इंग्लैण्ड व अमेरिका जैसे उन्नत देशों द्वारा परिवार नियोजन व संतति-निग्रह का बढ़ता हुआ प्रयोग इन देशों में माल्थस के सिद्धान्त की प्रभावशीलता को स्पष्ट करता है।
3. जनसंख्या वृद्धि की भविष्यवाणी आज भी अर्द्ध-विकसित देशों में सत्य प्रमाणित होती है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। **बरट्रेन्ड रसेल** के अनुसार, "माल्थस का जनसंख्या का विचार उसके लिखते समय तक बहत सही था पर यह आज भी जंगली-अर्द्धसभ्य और सभ्य जाति में निम्न श्रेणी के मनुष्यों के लिए सत्य है।"
4. यदि हम सम्पूर्ण विश्व की खाद्य-सामग्री को दृष्टि में रखते हुए सोचें तो माल्थस का यह कथन बिल्कुल सत्य है कि खाद्य-सामग्री का कुल उत्पादन निश्चित है। **एडवर्ड ईस्ट** ने लिखा है कि, "यदि जनसंख्या इसी प्रकार बढ़ती रही तो संसार का कृषि योग्य क्षेत्र बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य सामग्री की पूर्ति में अपर्याप्त हो जायेगा।"

TOUCH 'n' PASS

5. यह कथन कि खाद्यान्न की तुलना में जनसंख्या यदि अधिक रही और असंतुलन को यदि प्रतिबंधक निरोधों द्वारा दूर न किया गया तो जन्मदर की वृद्धि के साथ ही प्राकृतिक अवरोधों की क्रियाशीलता से मृत्युदर भी बढ़ेगी, सत्य है। **प्रो० सेम्युल्सन** के अनुसार "भारत, चीन तथा संसार के अन्य भागों में जहाँ खाद्य सामग्री की पूर्ति और जनसंख्या के मध्य असंतुलन एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, जनसंख्या का व्यवहार समझने के लिए माल्थस के सिद्धान्त में आज भी सत्य के तत्त्व महत्त्वूपर्ण हैं।"
6. कम विकसित देशों के सम्बन्ध में सिद्धान्त की यह बात आज भी सत्य है कि जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है और अप्रतिबन्धित रहने पर शीघ्र ही दुगुनी हो जाती है। भले ही जनसंख्या दुगुनी होने की अवधि 25 वर्ष न होकर 30 या 35 वर्ष हो।

उपर्युक्त तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि माल्थस का सिद्धान्त अनेक कमियों के बावजूद आज भी सारगर्भित है। इस सन्दर्भ में **वाकर** का यह कथन उल्लेखनीय है कि, "माल्थस के विरुद्ध उठाये गये सम्पूर्ण विवादों के मध्य माल्थसवाद अजेय तथा अविच्छिन्न रूप से स्थित है।"

**प्र.5. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the main features of optimum population theory.**

**उत्तर**

## अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त : विशेषताएँ
## (Optimum Population Theory : Features)

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित**—यह सिद्धान्त परिवर्तनशील अनुपात या उत्पत्ति ह्रास नियम पर आधारित है।
2. **अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु गतिशील होता है**—अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु गतिशील होता है। जिन साधनों को दिया हुआ मान लिया गया है उनमें से किसी में भी परिवर्तन होने पर, यह अनुकूलतम बिन्दु या स्तर बदल जाता है। उदाहरणार्थ, देश में वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास, प्राकृतिक साधनों की खोज, उत्पादन की नयी रीतियों के अनुसंधान से प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होगी और अनुकूलतम बिन्दु ऊपर को खिसक जाएगा। अनुकूलतम जनसंख्या के बिन्दु की गतिशील प्रकृति को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

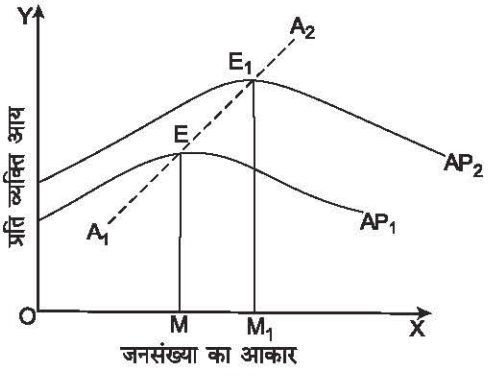

चित्र

उत्पादन की तकनीक तथा वैज्ञानिक विकास की एक दी हुई स्थिति में $AP_1$ औसत उत्पाद वक्र अथवा प्रति व्यक्ति आय वक्र है जिस पर अनुकूलतम जनसंख्या स्तर $OM$ है। उत्पादन की विधियों में सुधार तथा अनुसंधान के फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है और प्रति व्यक्ति आय $EM$ से बढ़कर $E_1$, $M_1$ हो जाती है क्योंकि अब नयी औसत उत्पादन रेखा ऊपर उठकर $AP_2$ हो जाती है। फलस्वरूप, अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु $M$ से बढ़कर $M_1$ हो जाता है। $OM$ जनसंख्या जो पहले अनुकूलतम थी अब अल्प-जनसंख्या हो चुकी है। चित्र में $A_1A_2$ रेखा जनसख्या के प्रावैगिक स्वरूप (Dynamic Nature) को प्रकट करती है।

3. **अनुकूलतम जनसंख्या परिमाणात्मक ही नहीं, गुणात्मक विचार भी है**—कुछ आधुनिक अर्थशास्त्रियों जिनमें **प्रो० बोल्डिंग, प्रो० टी०आर० बाई, प्रो० पेनरोज** प्रमुख हैं, की धारणा है कि अनुकूलतम जनसंख्या एक परिमाणात्मक विचार ही नहीं बल्कि गुणात्मक विचार भी है। यही कारण है कि बोल्डिंग 'प्रति व्यक्ति आय' के स्थान पर 'जीवन स्तर' शब्द का प्रयोग करते हैं। **प्रो० बाई** जनसंख्या के उस आकार को अनुकूलतम मानते हैं जो (प्रति व्यक्ति अधिकतम आय के अतिरिक्त) सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को भी उच्चतम बना सके। स्वभावत: जब उत्पादन या आय बढ़ती है तो लोगों के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा उठने लगता है, परन्तु चरित्र स्वास्थ्य आदि गुणात्मक बातों को सम्मिलित करने से किसी समय पर एक देश के लिए सही रूप से अनुकूलतम जनसंख्या को ज्ञात करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.6. जनांकिकीय संक्रमण के सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या की अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।**
**Explain in detail the stages of population according to the theory of demographic transition.**

**उत्तर**

## जनांकिकीय संक्रमण का सिद्धान्त : जनसंख्या की अवस्थाएँ
## (Theory of Demographic Transition : Stages of Population)

यह जनसंख्या के विकास का आधुनिकतम सिद्धान्त है जिसे विश्व के अधिकांश अर्थशास्त्रियों व जनसंख्या शास्त्रियों का समर्थन मिला है। यह सिद्धान्त यूरोप के अनेक देशों के आँकड़ों पर आधारित है। यह सरल है, तर्क संगत है तथा सभी सिद्धान्तों में सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। वर्तमान जनसंख्या शास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक समाज की जनसंख्या को अनेक अवस्थाओं से गुजरना होता है। प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषतायें होती हैं। विश्व का कोई देश प्रथम अवस्था में है तो कोई द्वितीय, और कोई तृतीय अवस्था में। इन तीनों अवस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

**प्रथम अवस्था**—यह अवस्था पिछड़े देशों में होती है। जहाँ जन्म-दर भी ऊँची है तथा मृत्यु-दर भी ऊँची है। कृषि, आय का प्रमुख स्रोत है—ग्रामीण अर्थव्यवस्था। द्वितीयक उद्योग या तो हैं ही नहीं, यदि हैं तो बहुत छोटे पैमाने पर। तृतीयक उद्योग (Tertiary Sector) जैसे—बीमा, बैंक आदि नहीं होते हैं। प्रति व्यक्ति आय कम है अत: बच्चे आय बढ़ाने के स्रोत होने के कारण दायित्व नहीं वरन् पूँजी हैं। कृषि में प्रत्येक उम्र के बच्चे के लिये काम निकल आता है। अत: छोटा बच्चा भी आय का स्रोत होता है। बच्चों के विकास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य की कोई महत्त्वाकांक्षा ही नहीं होती, अत: उनमें व्यय नहीं होता है। संयुक्त परिवार-व्यवस्था होती है, अत: लालन-पालन की कोई समस्या नहीं होती है। इन्हीं सब कारणों से प्रथम अवस्था में जन्म-दर ऊँची होती है तथा मृत्यु-दर भी ऊँची होती है।

प्रथम चरण में बड़े परिवार के अनेक आर्थिक लाभ भी होते हैं। **ए०जे० कोल एवं इ०एम० हूवर** ने लिखा है—"Children contribute at an early age..... and are traditional source of security in the old age of parents. The prevalent high death rates especially in infancy imply that such security can be attained only when many children are born."

**द्वितीय अवस्था**—द्वितीय चरण में अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होती है। कृषि के साथ उद्योग भी बढ़ने लगते हैं। परिवहन व शहरीकरण होने से गतिशीलता बढ़ती है। शिक्षा का विस्तार, आय में वृद्धि, भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा में सुधार होने से मृत्यु-दर घटती है। किन्तु धर्मान्धता, रीति-रिवाज व रूढ़िवादिता के बन्धन ढीले नहीं होते हैं। अत: जन्म-दर नहीं घटती है और जनसंख्या—विस्फोट की स्थिति आ जाती है।

**तृतीय अवस्था** में जीवन-स्तर सुधार, मानसिक विकास, नारी-शिक्षा, नारी रोजगार में वृद्धि तथा औरतों में जागृति आती है। परिणामस्वरूप औरतें कम बच्चे पसन्द करने लगती हैं, सारे जीवन भर बच्चे खिलाने की अपेक्षा वे अन्य क्षेत्रों में सहयोग करना चाहती हैं, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा अच्छी तरह करने की होड़ होने लगती है। शहरीकरण से आर्थिक कशमकश बढ़ती है, साधन कम पड़ने लगते हैं। परिवार नियोजन की विधियाँ विकसित होती हैं। विवाह की आयु बढ़ने लगती है अत: प्रजनन आयु-वर्ग का विस्तार घटने लगता है अत: दिखावा-प्रभाव (Demonstration effect) अत्यन्त प्रभावशील होता है। अत: जन्म-दर घटने लगती है।

**प्रो० ए० जे० कोल** ने निम्न वाक्यों में स्पष्ट किया है कि आर्थिक विकास किस प्रकार छोटे परिवार के प्रति लोगों को प्रेरित करता है—"With the development of economic roles for women outside the home, tends to increase the possibility of economic mobility that can better be achieved with small families, and tends to decrease the economic advantages of a large family. One of the features of economic development is typically increase urbanisadtion and children are usually more of a burden and less of an asset in an urban setting than in a rural."

विश्व के सभी देश इन्हीं तीन प्रमुख अवस्थाओं से गुजर रहे हैं अथवा गुजर चुके हैं। अफ्रीका के कुछ देश प्रथमावस्था में हैं, तो एशिया से कुछ द्वितीय अवस्था में हैं, तथा यूरोपीय देश तृतीय अवस्था में हैं। अग्र चित्र में इन तीनों अवस्थाओं का निरूपण किया गया है—

TOUCH 'n PASS

जनसंख्या परिवर्तन की अवस्थाएँ

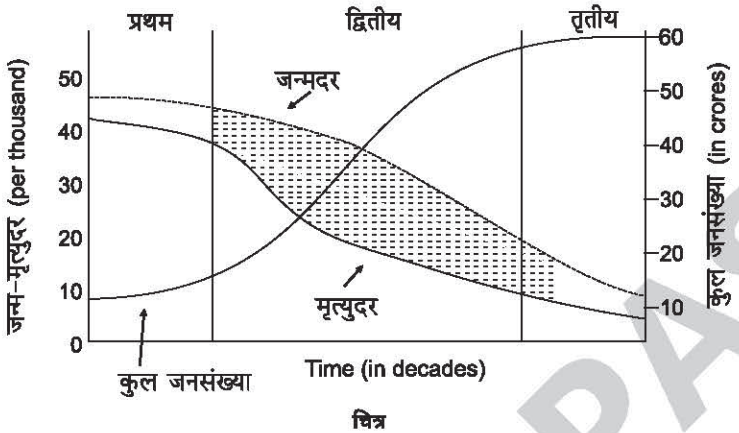


चित्र

उपर्युक्त चित्र में ऐसी तीनों अवस्थाओं को प्रदर्शित किया गया है। प्रथम अवस्था में जन्म-दर करीब 46 या 48 प्रति हजार है। किन्तु मृत्यु-दर भी इसके करीब-करीब बराबर होती है, अत: जनसंख्या बहुत धीरे-धीरे बढ़ती है।

**प्र.7. जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की आलोचना के मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए तथा इस सिद्धान्त का मूल्यांकन भी कीजिए।**

**Throw light on the main points of criticism of demographic transition theory and also evaluate this theory.**

**उत्तर**

## सिद्धान्त की आलोचनाएँ
## (Criticisms of Theory)

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की आलोचना से सम्बन्धित बिन्दुओं का अध्ययन कर इसके महत्त्वपूर्ण पक्ष से आप परिचित हो जायेंगे। यथा—

1. यह सिद्धान्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय चरण की व्याख्या तो करता है किन्तु चतुर्थ चरण के विषय में विद्वानों में मतभेद है, कुछ विद्वानों की धारणा है कि जनसंख्या चतुर्थ चरण में बढ़ती है तथा कुछ की धारणा है कि यह स्थिर रहती है। किन्तु कारण स्पष्ट नहीं किया गया है।
2. यह सिद्धान्त आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों एवं जनांकिकी संक्रमण के चरणों के बीच किसी सम्बन्ध की चर्चा नहीं करता है। जबकि **प्रो० लाइबेन्स्टिन** की धारणा है, आर्थिक विकास के चरण एवं जनांकिकीय संक्रमण की अवस्था साथ-साथ चलती है।
3. प्रथम अवस्था में जन्म-दर तो ऊँचे स्तर पर स्थिर होती है किन्तु मृत्यु दर में प्राकृतिक प्रकोपों के कारण उच्चावचन होते रहते हैं, अत: जनसंख्या वृद्धि प्रथम अवस्था में भी परिवर्तनशील रहती है।
4. यह सिद्धान्त जनसंख्या परिवर्तन के विभिन्न चरणों में कितना समय लगाता है—इस बात पर कोई प्रकाश नहीं डालता है।
5. इस सिद्धान्त की पुष्टि आँकड़ों के आधार पर नहीं की जा सकती है। अत: यह सांख्यिकी विश्लेषण के लिये अयोग्य है।
6. आर्थिक विकास एवं जनांकिकीय संक्रमण दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। केवल विकास के कारण संक्रमण नहीं होता है वरन् संक्रमण के कारण भी विकास होता है।

### संक्रमण सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of Transition Theory)

जनसंख्या के संक्रमण सिद्धान्त की विवेचना एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि यह सिद्धान्त जनसंख्या वृद्धि का एक सर्वमान्य, व्यावहारिक, यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त उन सब साधनों यथा सामाजिक, आर्थिक, संस्थागत एवं जैविकीय पर विचार करता है जो जनसंख्या वृद्धि दर को प्रभावित करते हैं। यह सिद्धान्त माल्थस के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है क्योंकि यह खाद्यपूर्ति पर जोर नहीं देता और न ही निराशावादी दृष्टिकोण अपनाता है। यह अनुकूलतम सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है जो

Touch 'n' PASS

जनसंख्या वृद्धि के लिए एक मात्र प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि पर बल देता है तथा जनसंख्या को प्रभावित करने वाले अन्य साधनों की उपेक्षा कर जाता है। जैविकीय सिद्धान्त भी एकांगी है। जनसंख्या सिद्धान्तों में जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त इसलिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यह यूरोप के विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक प्रवृत्तियों पर आधारित है। यह सिद्धान्त विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों पर समान रूप से लागू होता है। अफ्रीका महाद्वीप के कुछ बहुत पिछड़े देश अभी भी प्रथम अवस्था में हैं तथा विश्व के अन्य सभी विकासशील देश दूसरी अवस्था में हैं। यूरोप के लगभग सभी देश प्रथम दो अवस्थाओं से गुजर कर तीसरी अवस्था एवं चौथी अवस्था में पहुँच चुके हैं। इस तरह यह सिद्धान्त व्यावहारिक रूप से पूरी दुनिया में लागू होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक जनांकिकीय मॉडलों (Economic Demographic Models) का विकास किया है जिससे विकासशील देश अन्तिम अवस्था में पहुँचें तथा आत्मनिर्भर बन सकें। इसी तरह का एक मॉडल **कोल-हूवर मॉडल** (Coole-Hoover Model) भारत के लिए बनाया गया है, जो दूसरे विकासशील देशों पर भी लागू किया जा रहा है।

जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की विकासशील देशों के लिए सार्थकता पर कुछ विद्वानों ने प्रश्न चिह्न भी लगाए हैं और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि जिन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से विकसित देश गुजर चुके हैं वे आज के विकासशील देशों की परिस्थितियों से भिन्न हैं।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या विकास के इस सिद्धान्त को अर्थशास्त्रियों एवं जनसंख्याशास्त्रियों का व्यापक समर्थन प्राप्त है। यह सरल तर्क जनसंख्या सिद्धान्तों में सर्वाधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला है।

**प्र.8. माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का वर्णन कीजिए।**
**Describe the factors affecting the demand.**

**उत्तर**

## माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्व
## (Factors Affecting Demand)

माँग को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **वस्तु की कीमत** (Price of the Goods)—वस्तु की कीमत माँग को मुख्य रूप से प्रभावित करती है। कम कीमत पर वस्तु की अधिक माँग तथा अधिक कीमत पर वस्तु की कम माँग होती है।
2. **धन का वितरण** (Distribution of Wealth)—समाज में धन के वितरण का भी माँग पर प्रभाव पड़ता है। समाज में धन और आय का वितरण यदि असमान है तो धनी वर्ग द्वारा विलासिता की वस्तुओं की माँग अधिक होगी। जैसे-जैसे समाज में धन का वितरण समान होता जायेगा, वैसे-वैसे समाज में आवश्यक व आरामदायक वस्तुओं की माँग बढ़ती जायेगी।
3. **आय स्तर** (Income Level)—आय स्तर का माँग पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उपभोक्ता की आय जितनी अधिक होगी, उसकी माँग उतनी ही अधिक हो जायेगी तथा इसके विपरीत आय का कम स्तर माँग को कम कर देगा।
4. **वस्तु की उपयोगिता** (Utility of the Goods)—उपयोगिता का अभिप्राय है, आवश्यकता पूर्ति की क्षमता। एक दी गई समयावधि में वस्तु की माँग का आकार इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति की वस्तु में कितनी क्षमता है। अधिक उपयोगिता वाली वस्तु की माँग अधिक होगी तथा इसके विपरीत कम उपयोगिता वाली वस्तु की माँग कम होगी।
5. **रुचि, फैशन, आदि** (Taste, Fashion, etc.)—वस्तु की माँग पर उपभोक्ता की रुचि, उसकी आदत, प्रचलित फैशन आदि का भी प्रभाव पड़ता है। किसी वस्तु विशेष का समाज में फैशन होने पर निश्चित रूप से उसकी माँग में वृद्धि होगी।
6. **सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें** (Prices of Related Goods)—सम्बन्धित वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—
   (i) **स्थानापन्न वस्तुएँ** (Substitutes Goods)—ऐसी वस्तुएँ जिनका एक-दूसरे के बदले प्रयोग किया जाता है; जैसे, चीनी-गुड़, चाय-कॉफी आदि।
   (ii) **पूरक वस्तुएँ** (Complementary Goods)—ऐसी वस्तुएँ जिनका उपयोग एक साथ किया जाता है; जैसे, कार-पैट्रोल, स्याही-कलम, डबलरोटी-मक्खन, आदि।

TOUCH 'n' PASS

स्थानापन्न वस्तुओं में एक वस्तु की कीमत का परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग को विपरीत दिशा में प्रभावित करेगा तथा पूरक वस्तुओं में एक वस्तु के कीमत परिवर्तन के कारण दूसरी वस्तु की माँग समान दिशा में बदलेगी।

7. **भविष्य में कीमत परिवर्तन की आशा** (Expected Price Change in Future)—सरकारी नियन्त्रण, दैवीय विपत्ति की आशंका, युद्ध सम्भावना आदि अनेक अप्रत्याशित एवं प्रत्याशित घटकों का भी वस्तु की माँग पर प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त जनसंख्या परिवर्तन, व्यापार दिशा में परिवर्तन , जलवायु, मौसम आदि का भी वस्तु की माँग पर प्रभाव पड़ता है।

**प्र.9. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the assumptions of the law of diminishing marginal utility.**

**उत्तर**

## सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताएँ
## (Assumptions of the Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **उपभोक्ता की मानसिक दशा में परिवर्तन नहीं होना चाहिए** (No Change in the mental status of the Consumer)—उपयोगिता ह्रास नियम की चौथी मान्यता यह है कि उपभोग करते समय उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आना चाहिए। उदाहरण के लिए, उपभोग करते समय उपभोक्ता चिन्तामग्न है जिसके कारण उसके लिए रोटी की उपयोगिता शून्य होगी। चिन्ता के समाप्त होते ही उसके लिए रोटी की उपयोगिता बढ़ जायेगी। यही बात मादक व नशीली वस्तुओं के लिए लागू होती है। ऐसी दशा में उपयोगिता ह्रास नियम काम नहीं करेगा, क्योंकि उपभोक्ता की मानसिक दशा असन्तुलित हो चुकी है।
2. **वस्तु का उपभोग निरन्तर होना चाहिए** (Continuous Consumption)—उपभोक्ता जिन वस्तुओं का उपभोग कर रहा है, उसके उपभोग का क्रम तब तक नहीं टूटना चाहिए, जब तक कि उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती है। यदि उपभोग का क्रम बीच-बीच में टूटता है या समयान्तर (Time gap) हुआ, तो नियम लागू नहीं होगा।
3. **वस्तु की इकाइयों का आकार उपयुक्त होना** (Suitable Quantity of the Commodity)—उपभोक्ता के द्वारा जिन वस्तुओं का उपभोग किया जाता है वे वस्तुएँ उसके सन्दर्भ में प्रामाणिक होनी चाहिए। प्रामाणिकता का अभिप्राय यह है कि वस्तुओं की इकाइयाँ उपभोक्ता के आकार-प्रकार के अनुरूप होनी चाहिए। यदि उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की इकाइयाँ उपभोक्ता के लिए उपयुक्त नहीं हैं, तो यह नियम क्रियाशील नहीं होगा।
4. **इकाइयों के गुण व रूप में समरूप होना** (All the units of the Commodity must be uniform in Quantity and Quality)—यह नियम तभी क्रियाशील होगा जब उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ गुण और रूप में समरूप हों। वस्तुओं के गुणों का अन्तर नियम को लागू नहीं होने देगा।
5. **उपयोगिता ह्रास नियम केवल सुखमय आर्थिक दशाओं में ही लागू होता है** (Law Applicable only to Pleasure Economy)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सुखमय अवस्था (Pleasure Economy) में ही लागू होता है, दुखमय अवस्था (Painful Economy) में नहीं। उदाहरण के लिए, खून की कमी से बेहोश पड़े व्यक्ति को खून की प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय इकाई से अधिक उपयोगिता मिलेगी, पर जब वह सामान्य स्थिति में आयेगा तभी सीमान्त उपयोगिता में कमी आयेगी।
6. **उपभोक्ता की आय, फैशन, रुचि व स्वभाव का यथास्थिर रहना** (No Change in the Income, Fashion, Taste and Nature of the Consumer)—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उपभोग लम्बे समय तक किया जाता है। इस बीच उपभोक्ता की आय, फैशन, स्वभाव, रुचि, आदि में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आना चाहिए। यदि इन बातों में परिवर्तन आ गया, तो उपयोगिता ह्रास नियम लागू नहीं होगा।
7. **वस्तु की कीमत में परिवर्तन न होना** (No Change in the Price of the Commodity)—उपभोक्ता जिस समय किसी वस्तु का उपभोग करता है, उस वस्तु अथवा उसकी स्थानापन्न वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.10. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के कौन-से अपवाद हैं? स्पष्ट कीजिए।**

**What are the exceptions of the law of diminishing marginal utility? Explain.**

**उत्तर**

## सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के अपवाद
## (Exceptions of the Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के बारे में कुछ अर्थशास्त्रियों की धारणा है कि यह नियम सार्वभौमिक नहीं है। आलोचकों के अनुसार इस नियम के कुछ अपवाद हैं। पर नियम के समर्थकों का कहना है कि नियम के सन्दर्भ में जितने भी अपवाद बनाये गये हैं वे सब कोरे तथा झूठे हैं। फिर भी औपचारिकतावश कुछ अपवाद नीचे दिये जा रहे हैं—

1. **दुर्लभ तथा विचित्र वस्तुएँ** (Rare and Curious Things)—सिक्के व टिकटों का संग्रह करने वाला व्यक्ति ज्यों-ज्यों नये सिक्कों व टिकटों को प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों प्रत्येक अगले सिक्के व टिकट से मिलने वाली उपयोगिता उसके लिए बढ़ जाती है। पुराने सिक्कों व पुराने टिकटों का संग्रह उसके संग्रहालय को और अधिक उपयोगी बना देता है। यह अपवाद भी सही नहीं है, क्योंकि इस संग्रह में समयान्तर (Time-gap) है। इसके अतिरिक्त, जिन सिक्कों व टिकटों का संग्रह किया जाता है वे समरूप भी नहीं हैं, जबकि नियम की मान्यता में समयान्तर व समान आकार की वस्तु को माना गया है।
2. **शराबी व्यक्ति** (Drunkards)—एक शराबी जब शराब की उत्तरोत्तर इकाइयों का उपभोग करता है, तो वह अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। शराबी को प्रथम प्याले की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे प्याले से अधिक उपयोगिता मिलती है, अत: ऐसी स्थिति में सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम लागू नहीं होता है। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का यह अपवाद सही नहीं है, क्योंकि नियम की क्रियाशीलता के लिए उपभोक्ता की मनोदशा को सामान्य मान लिया था, जबकि यहाँ शराब पीने के साथ-साथ उपभोक्ता की मनोदशा असामान्य हो जाती है।
3. **उपभोग की जाने वाली वस्तु की इकाइयाँ बहुत छोटी-छोटी हों तो** (The Commodity may not be Consumed in Very Small Quantity)—**प्रो० चैपमैन** (Prof. Chapman) ने इस अपवाद के सम्बन्ध में चाय बनाने के लिए कोयले का उदाहरण दिया है। यदि चाय बनाने वाले व्यक्ति को कोयले का एक-एक टुकड़ा दिया जाता है, तो उसके लिए प्रत्येक अगले टुकड़े की उपयोगिता बढ़ती जायेगी। इस सन्दर्भ में प्रो० चैपमैन का कहना है कि "हर अगली इकाई से मिलने वाला तुष्टिगुण बढ़ता जायेगा जब तक कि कोयले की मात्रा पर्याप्त नहीं हो जाती और इसके बाद तुष्टिगण घटने लगेगा।" चैपमैन ने जिस अपवाद की व्याख्या की है वह वास्तव में अपवाद नहीं है, क्योंकि हमने नियम की मान्यता में वस्तु की प्रामाणिक इकाई की बात कही है, अत: यह अपवाद गलत है।
4. **सुरीले गीत, सुन्दर कविता तथा अच्छा साहित्य** (Good Poem, Book and Literature)—इन सब बातों में उपयोगिता ह्रास नियम लागू नहीं होता है। यदि ऐसा होता तो कवि सम्मेलन में पुन:-पुन: की ध्वनि क्यों गूँजती? किसी सुरीले गीत को बार-बार सुनने के लिए हम उसके टेप को बार-बार क्यों सुनते? देखा जाय, तो यह अपवाद भी सही नहीं है, क्योंकि एक सीमा के बाद कविता एवं सुरीला गीत भी बार-बार सुनने के बाद अरुचिकर लगने लगता है।
5. **धन संचय की प्रवृत्ति शान-शौकत, दिखावा** (Lust for Money and Desire for Display)—लगातार संचय करते रहने से धन की उपयोगिता घटती नहीं है। इसी प्रकार शान-शौकत व दिखावे के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों से भी उपयोगिता घटती नहीं है, बल्कि बढ़ती जाती है। इन अपवादों के सम्बन्ध में भी यही कहा जाता है कि ये अपवाद नियम के वास्तविक अपवाद नहीं हैं, क्योंकि अर्थशास्त्र में एक वास्तविक व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है, जबकि रात-दिन धन संग्रह, शान-शौकत व दिखावे के प्रयत्नों में लगे हुए मशीनी व्यक्ति के सन्दर्भ में यह अपवाद लागू होगा।

**प्र.11. माँग की लोच से आपका क्या तात्पर्य हैं? इसकी परिभाषा भी लिखिए।**

**What do you mean by elasticity of demand? Also write its definition.**

**उत्तर**

## माँग की लोच का अर्थ एवं परिभाषा
## (Meaning and Definition of Elasticity of Demand)

माँग की लोच अथवा माँग की कीमत लोच का अभिप्राय कीमत के सूक्ष्म परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन की माप से है।

TOUCH 'n PASS

**मार्शल** के अनुसार, "माँग की लोच का बाजार में कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु की कीमत में एक निश्चित मात्रा में परिवर्तन होने पर उसकी माँग में सापेक्ष रूप से अधिक या कम अनुपात में परिवर्तन होता है।"

**सैम्युलसन** के शब्दों में, माँग की लोच का विचार, "कीमत के परिवर्तन के फलस्वरूप माँग की मात्रा में परिवर्तन के अंश, अर्थात् माँग में प्रतिक्रियात्मकता के अंश को बताता है।"

$$\text{माँग की लोच } (e_d) = \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\text{Elasticity of Demand} = \frac{\text{Proportionate Change in Quantity Demanded}}{\text{Proportionate Change in Price}}$$

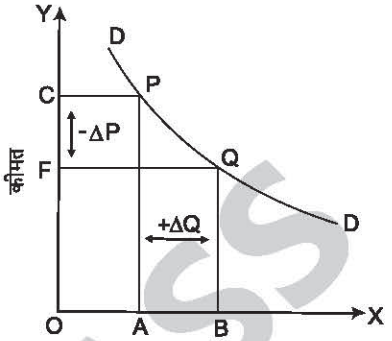

चित्र

चित्र 1 में $DD$ माँग वक्र है। यह माँग वक्र यह बताता है कि अन्य तत्त्वों के स्थिर रहने पर माँग एवं वस्तु की कीमत में प्रतिलोम सम्बन्ध होता है। चित्र में बिन्दु $P$ पर उपभोक्ता $OC$ कीमत पर $OA$ वस्तु मात्रा का उपभोग कर रहा है। कीमत में $\Delta P$ कमी होने पर उपभोक्ता वस्तु की उपभोग मात्रा $\Delta Q$ बढ़ा देता है। दूसरे शब्दों में, कीमत की कमी के कारण उपभोक्ता की माँग में वृद्धि हो जाती है।

$$\text{चित्रानुसार, माँग की लोच } (e_d) = \frac{\text{वस्तु की माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P}$$

जहाँ $\Delta Q$ = माँग में परिवर्तन, $Q$ = आरम्भिक माँग, $\Delta P$ = कीमत में परिवर्तन, $P$ = आरम्भिक कीमत

किन्तु माँग की लोच ऋणात्मक (Negative) होती है क्योंकि वस्तु की माँग और उसकी कीमत में विपरीत सम्बन्ध होता है। अत:

$$e_d = -\frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P} = -\frac{\Delta Q}{Q} \cdot \frac{P}{\Delta P}$$

$$e_d = -\frac{\Delta Q}{\Delta P} \cdot \frac{P}{Q}$$

**प्र.12. माँग की आय लोच को परिभाषा सहित समझाइए।**

**Explain the income elasticity of demand with definition.**

**उत्तर**

## माँग की आय लोच
## (Income Elasticity of Demand)

**अर्थ व परिभाषा** (Meaning and definition)—अन्य बातों के समान रहते हुए जब किसी उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने से उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तु की माँग में जो मात्रात्मक प्रभाव पड़ता है वही माँग की आय लोच है।

**वाटसन** के शब्दों में, "माँग की आय लोच आय के प्रतिशत परिवर्तन से माँगी गयी मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात है।"

दूसरे शब्दों में, किसी उपभोक्ता की आय के परिवर्तन से किसी वस्तु की माँग पर जो परिवर्तनात्मक प्रतिक्रिया होती है वही माँग की आय लोच है।

**माँग की आय लोच के प्रकार** (Kinds of Income Elasticity of Demand)—माँग की आय लोच को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **धनात्मक आय लोच या सामान्य वस्तुओं की लोच** (Positive income elasticity or Income elasticity for normal goods)—धनात्मक आय लोच उस समय होती है, जबकि आय व वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन एक ही दिशा में हो अर्थात् आय के बढ़ने-घटने से माँग बढ़े अथवा घटे। ऐसा सामान्य वस्तुओं (normal goods) की दशा में ही होता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **ऋणात्मक आय लोच या घटिया वस्तुओं की आय लोच** (Negative income elasticity or income elasticity for interior goods)—जब किसी वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन उपभोक्ता की आय के परिवर्तन की विरोधी दिशा में हो तो यह ऋणात्मक आय लोच कहलाती है। दूसरे शब्दों में, जब उपभोक्ता की आय बढ़ने से किसी वस्तु की माँग कम तथा आय के घटने से माँग अधिक हो, तो ऋणात्मक आय लोच होती है। यह घटिया (inferior) किस्म की वस्तुओं की दशा में पायी जा सकती है।
3. **माँग की शून्य आय लोच** (Zero income elasticity of demand)—अति अनिवार्य वस्तुओं; जैसे—माचिस, नमक, मिट्टी के तेल आदि के सन्दर्भ में यह देखा गया है कि उपभोक्ता की आय के परिवर्तन का इन वस्तुओं की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसी दशा में नई वस्तुओं की आय लोच शून्य होती है।

**माँग की आय लोच की माप** (Measurement of Income Elasticity of Demand)—उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होते हैं। उन परिवर्तनों की माप आय लोच के अन्तर्गत की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र की सहायता ली जा सकती है—

$$e_y = \frac{\text{वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\Delta D / D}{\Delta Y / Y}$$

जहाँ, $\Delta D$ = माँग का परिवर्तन, $D$ = आरम्भिक माँग, $\Delta Y$ = आय का परिवर्तन, $Y$ = आरम्भिक आय

**प्र.13. माँग की आड़ी लोच से आप क्या समझते हैं?**

**What do you understand by cross elasticity of demand?**

**उत्तर**

## माँग की आड़ी लोच
## (Cross Elasticity of Demand)

जब दो वस्तुएँ आपस में सम्बन्धित होती हैं तो एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन से दूसरी वस्तु की माँग पर प्रभाव पड़ता है। सम्बन्धित वस्तुएँ प्रतिस्थापन (substitutes) जैसे चाय व कॉफी तथा पूरक (complementary) जैसे डबलरोटी व मक्खन होती है। प्रतिस्थापन वस्तुओं के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि एक वस्तु की कीमत व दूसरी की माँग में एक ही दिशा में परिवर्तन होता है, जबकि पूरक वस्तुओं में बह परिवर्तन उल्टी दिशा में होता है। यह बात हमें आड़ी माँग (cross demand) से ज्ञात होती है।

**माँग की आड़ी लोच का अर्थ** (Meaning of cross elasticity of demand)—एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उससे सम्बन्धित वस्तु की माँग पर कितना मात्रात्मक प्रभाव पड़ता है यह माँग की आड़ी लोच से पता चलता है।

**फर्गूसन** (Ferguson) के अनुसार, "माँग की आड़ी लोच सम्बन्धित वस्तु की कीमत में एक निश्चित सापेक्षिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप $X$-वस्तु की माँगी गई मात्रा में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन है।"

**माँग की आड़ी लोच के प्रकार और उसकी गणना** (Kinds of Cross Elasticity of Demand and their Calculation)—माँग की आड़ी लोच को भी तीन भागों में बाँटा गया है—

1. **धनात्मक या प्रतिस्थापन वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच** (Positive or cross elasticity of demand for substitution)—धनात्मक आड़ी लोच इस बात को प्रकट करती है कि जब एक वस्तु की कीमत बदले तो दूसरी वस्तु की माँग भी उसी दिशा में बदले, ऐसा प्रतिस्थापन वस्तुओं के सम्बन्ध में होता है। वास्तव में ये वस्तुएँ एक-दूसरे की प्रतियोगी वस्तुएँ (Competitive goods) होती हैं; जैसे—जब चाय ($Y$-वस्तु) की कीमत बढ़ जाये तो उपभोक्ता उसके स्थान पर कॉफी ($X$-वस्तु) खरीदने की प्रवृत्ति रख सकता है। कीमत घटने पर दूसरी वस्तु पर प्रभाव माँग घटाने वाला होगा।
2. **ऋणात्मक या पूरक वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच** (Negative cross elasticity of demand for complementaries)—जब एक वस्तु के परिवर्तन से दूसरी वस्तु की माँग में विपरीत दिशा में परिवर्तन हो तो यह ऋणात्मक स्थिति को प्रकट करेगा। ऐसा पूरक वस्तुओं; जैसे—डबलरोटी ($Y$-वस्तु) तथा मक्खन ($X$-वस्तु) को दशा में होता है। यदि डबलरोटी महँगी हो जाये तो इसकी माँग कम हो जायेगी और चूँकि मक्खन डबलरोटी के लिए चाहिए, इसलिए मक्खन की भी माँग कम हो जायेगी, कीमत की कमी का प्रभाव इसका उल्टा होगा।

TOUCH 'n PASS

3. **शून्य या असम्बन्धित वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच** (Zero or cross elasticity of demand for unrelated goods)—यदि हम दो ऐसी वस्तुओं को लें जिनका कोई ऐसा सीधा तार्किक सम्बन्ध नहीं है, तो एक वस्तु की कीमत के परिवर्तन का दूसरी वस्तु की माँग पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे यदि जूता ($Y$-वस्तु) की कीमतों में परिवर्तन आता है तो उसका गेहूं ($X$-वस्तु) की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

**माँग की आड़ी लोच की माप** (Measurement of cross elasticity of demand)—माँग की आड़ी लोच के मापने के लिए आनुपातिक विधि का प्रयोग करते हुए निम्न सूत्र लिया जा सकता है—

$$e_c = \frac{X \text{ - वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ - वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\Delta D_X \ / D_X}{\Delta P_Y \ / P_Y}$$

जहाँ, $\Delta D_X = X$ वस्तु की माँग में परिवर्तन, $D_X = X$ वस्तु की आरम्भिक माँग, $\Delta P_Y = Y$ वस्तु की कीमत का परिवर्तन, $P_Y = Y$ वस्तु की आरम्भिक कीमत

## खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र का वर्णन कीजिए एवं आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उपयोग बताइए।**

**Describe the scope of business economics and use of economic principles in business economics.**

**उत्तर**

### व्यावसायिक अर्थशास्त्र का क्षेत्र
### (Scope of Business Economics)

व्यावसायिक अर्थशास्त्र ज्ञान की एक नयी शाखा है और अभी अपने विकास की शैशव अवस्था में है। इस विषय का विकास मुख्यत: द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ-साथ हुआ है। संक्षेप में, व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित शीर्षकों को शामिल किया जाता है—

1. **पूँजी प्रबन्ध**—व्यवसाय की सफलता का आधार पूर्णत: पूँजी प्रबन्ध की क्षमता पर निर्भर होता है। पूँजी पर ही व्यवसाय का विस्तार, नियोजन तथा प्रगति सम्भव है। बहुत-से व्यापारियों को व्यापार में पूँजी की अधिकता अथवा पूँजी की कमी के कारण असफलता का सामना करना पड़ता है, अत: पूँजी का प्रबन्ध व्यावसायिक अर्थशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत निम्न तथ्यों पर ध्यान दिया जाता है—(i) पूँजी की लागत, (ii) पूँजी बजट, (iii) पूँजी पर प्रतिफल की दर, (iv) पूँजी का आवण्टन-स्थायी एवं कार्यशील आदि।
2. **मूल्य निर्धारण नीतियाँ एवं व्यवहार**—मूल्य निर्धारण व्यावसायिक अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। एक फर्म की सफलता उसकी सही मूल्य नीति पर निर्भर करती है। इसके अन्तर्गत निम्न तथ्यों का अध्ययन होता है—(i) विभिन्न प्रतियोगी दशाओं में मूल्य निर्धारण, (ii) व्यावसायिक फर्मों की मूल्य नीतियाँ, (iii) मूल्य निर्धारण की वैकल्पिक पद्धतियाँ, (iv) मूल्य विभेद-नीति, (v) उत्पादन-श्रेणी, मूल्य निर्धारण और मूल्यों के पूर्वानुमान।
3. **उत्पादन एवं लागत का विश्लेषण**—उत्पादन की मात्रा और उत्पादन में लगने वाली लागतों का विश्लेषण लाभ की मात्रा के नियोजन, मूल्य नीति-निर्धारण तथा फर्म के प्रभावी नियन्त्रण के लिए अति आवश्यक है। उत्पादन विश्लेषण भौतिक रूप में होता है परन्तु लागत विश्लेषण हमेशा मौद्रिक रूप में होता है। लागत विश्लेषण के अन्तर्गत जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है, वे हैं—(i) लागत अवधारणा तथा वर्गीकरण, (ii) लागत-उत्पादन सम्बन्ध, (iii) उत्पादन फलन, (iv) उत्पादन के पैमाने से सम्बन्धित मितव्ययिताएँ, (v) रेखीय कार्यक्रम।
4. **माँग विश्लेषण तथा माँग का पूर्वानुमान**—इस विषय के अन्तर्गत माँग का विश्लेषण विस्तार से किया जाता है जिसमें प्रमुख निम्न हैं—

(अ) माँग निर्धारण शक्तियाँ (Demand Determinants),
(ब) माँग की लोच (Elasticity of Demand),

TOUCH 'n PASS

(स) माँग का नियम (Law of Demand),
(द) माँग विभेद (Demand Differentials)।

**माँग का पूर्वानुमान** व्यवसाय की प्रकृति तथा सफलता के लिए अति आवश्यक होता है। इसके अन्तर्गत सांख्यिकी तथा गणित की विधियों का प्रयोग होता है।

5. **समष्टिगत अर्थशास्त्र का उपयोग**—यद्यपि व्यावसायिक अर्थशास्त्र की प्रकृति विशिष्ट अर्थशास्त्र है फिर भी व्यावसायिक संस्था के प्रबन्ध के क्षेत्र में समष्टिगत अर्थशास्त्र का भी बहुधा प्रयोग होता है क्योंकि संस्था का संचालन आन्तरिक प्रबन्ध के अतिरिक्त बाह्य तत्त्वों पर भी निर्भर होता है। अत: बाह्य तत्त्वों का अध्ययन और उनके अनुरूप अपनी रीतियों तथा योजनाओं का निर्माण करना आवश्यक होता है, इसके लिए निम्नलिखित बातों का अध्ययन आवश्यक है—(i) करारोपण नीति, (ii) श्रम नीति, (iii) औद्योगिक नीति, (iv) व्यापार चक्र।
6. **बाजार अनुसन्धान**—बाजार का अध्ययन करना भी व्यावसायिक अर्थशास्त्र का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अन्तर्गत प्रमुख विषयों का अध्ययन होता है—(i) विज्ञापन, (ii) विक्रय-कला, (iii) मध्यस्थ, (iv) वितरण पद्धति।
7. **उपभोक्ता व्यवहार का अध्ययन**—व्यावसायिक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपभोक्ता इच्छा, उपभोक्ता की बचत आदि का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है।
8. **लाभ प्रबन्धन**—प्रत्येक उत्पादक एवं व्यावसायिक फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। व्यवसाय की सफलता का आकलन उसके लाभों से ही होता है। कुल आगमों और कुल व्ययों के अन्तर को लाभ कहते हैं। व्यावसायिक अर्थशास्त्र में लाभों को प्रभावित करने वाले सभी आन्तरिक और बाह्य घटकों पर विचार करके इसकी सही भविष्यवाणी करने का प्रयत्न होता है। इसके अन्तर्गत (i) लाभ की प्रकृति तथा उसकी माप, (ii) समुचित लाभ नीति का चुनाव, (iii) लाभ नियोजन और लाभ नियन्त्रण की तकनीकियाँ; जैसे—सन्तुलन स्तर विश्लेषण तथा लागत नियन्त्रण का अध्ययन किया जाता है।

## अर्थशास्त्र अथवा आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उपयोग
## (Applications of Economics or Economic Principles in Business Economics)

व्यावसायिक फर्मों के कार्यों एवं घटनाओं के विश्लेषण तथा समस्याओं के समाधान के लिए अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों, धारणाओं एवं विश्लेषण की पद्धतियों का व्यावसायिक अर्थशास्त्र में व्यापक प्रयोग होता है। इसी कारण **स्पेन्सर** तथा **सीगिलमैन** ने इसे आर्थिक सिद्धान्त का व्यावसायिक व्यवहार के साथ एकीकरण (The Integration of Economic Theory with Business Practice) की संज्ञा दी है। व्यावसायिक अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र का उपयोग निम्नलिखित दृष्टि से किया जा सकता है—

1. **व्यावसायिक भविष्यवाणी एवं पूर्वानुमान**—आर्थिक मात्राओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करने हेतु भी आर्थिक नियमों की सहायता ली जाती है, जैसे—भविष्य में क्या माँग होगी, उत्पादन की किसी विशिष्ट मात्रा पर क्या लाभ होगा, व्यापार प्रारम्भ में कितनी पूँजी की आवश्यकता होगी, मजदूरी की कौन-सी समस्याएँ उठ सकती हैं और व्यापार पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा आदि के सम्बन्ध में निश्चय किया जाता है, ताकि इनके आधार पर भविष्य में उठाये जाने वाले कदमों पर विचार हो सके।
2. **व्यवसाय के आर्थिक सम्बन्धों की जानकारी**—व्यावसायिक प्रबन्ध में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के प्रयोग से व्यवसाय के आर्थिक सम्बन्धों, जैसे-लागत और उत्पादन का सम्बन्ध, मूल्य व माँग का सम्बन्ध, उत्पादन का मूल्य से सम्बन्ध, माँग की लोच का आय से सम्बन्ध, स्थानापन्न वस्तुओं से सम्बन्ध, लागत एवं मूल्य लाभ का सम्बन्ध आदि की जानकारी होने पर उचित निर्णय लेने में सहायता प्राप्त होती है।
3. **आर्थिक सिद्धान्तों के प्रयोग से व्यवसाय संचालन में सुविधा**—आर्थिक सिद्धान्तों के उपयोग से ही यह निर्णय लिया जाता है कि व्यापार को किस प्रकार संचालित किया जाये, ताकि भविष्य में आने वाली किसी कठिनाई की सम्भावनाओं का अन्त हो जाये।
4. **व्यवसाय को प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियों का ज्ञान एवं प्रबन्धकीय निर्णयों में समायोजन**—सरकारी आर्थिक नीतियों, व्यापार चक्र श्रमिक सम्बन्ध, राष्ट्रीय आय में परिवर्तन, एकाधिकार विरोधी कानून आदि का अध्ययन आर्थिक सिद्धान्तों की सहायता से ही होता है। बाह्य परिस्थितियाँ व्यापार पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है, इसलिए

TOUCH 'n PASS

व्यापार प्रबन्धक को इनसे सतर्क रहना पड़ता है ताकि इनसे होने वाले दुष्परिणामों से वह अपने व्यापार की रक्षा कर सके अथवा अच्छे प्रभाव से लाभान्वित हो सके। इन बाह्य परिस्थितियों को समझने के लिए आर्थिक सिद्धान्तों को समझकर उनका प्रयोग करना आवश्यक होता है।

5. **आर्थिक लागतों एवं लेखा लागतों की धारणाओं में समन्वय**—कुछ पारिभाषिक शब्दों, जैसे—लागत व लाभ आदि का अर्थ जो व्यापार के बहीखाते में लिया जाता है, वही अर्थशास्त्र में नहीं होता। बहीखाते में सिर्फ वही लागत प्रदर्शित की जाती है जो दी गयी हो या दी जाने वाली हो किन्तु अर्थशास्त्र में इस प्रकार की लागत के साथ-साथ वास्तविक लागत की भी चर्चा होती है। जैसे- यदि कोई व्यापारी अपना व्यापार एक किराये के भवन में करता है और उसका किराया ₹ 100 देता है तो उस लागत का लेखा बहीखाते में दर्ज होगा, किन्तु यदि वह स्वयं के भवन में व्यापार करता है तो उसका जिक्र बहीखाते में दर्ज नहीं किया जायेगा। किन्तु अर्थशास्त्र में दोनों परिस्थितियों में इस लागत की गणना होती है। व्यावसायिक अर्थशास्त्र में इस प्रकार के शब्दों की बहीखाता सम्बन्धी धारणाओं और अर्थशास्त्र सम्बन्धी धारणाओं में, समन्वय स्थापित किया जाता है।

**प्र.2. माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का उसकी मान्यताओं सहित विस्तृत विवेचन कीजिए।**
**Discuss in detail Malthus's population theory alongwith its assumptions.**

**उत्तर**

## माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त
## (Population Theory of Malthus)

जनसंख्या में वृद्धि तथा खाद्यान्न आपूर्ति के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करता है। माल्थस ने 1798 के जनसंख्या के सिद्धान्त पर एक लेख (An Essay on the Principle of Population, 1798) में अपने जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने यह सिद्धान्त अनेक तात्कालिक परिस्थितियों, प्रचलित आशावादी विचारों, अपने यूरोपीय देशों के भ्रमण के दौरान विभिन्न देशों की जनसंख्या का विकास का गहन अध्ययन कर प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त का कथन है कि, "जनसंख्या में जीवन निर्वाह साधनों की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।" (Population tends to out run subsistence)। इस प्रकार यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि खाद्यपूर्ति की अपेक्षा जनसंख्या में अधिक तेजी से वृद्धि होती है और यदि इस जनसंख्या वृद्धि पर रोक न लगाई गई तो परिणामस्वरूप दुराचार या विपत्ति (vice or misery) उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार अपने निबन्ध में आशावादी विचारों को ध्वस्त कर दिया और एक कष्ट पूर्ण समाज की कल्पना की।

### मान्यताएँ (Assumptions)

**माल्थस** का जनसंख्या सिद्धान्त निम्नलिखित आधारतभूत मान्यताओं पर आधारित है—

1. स्त्री एवं पुरुष के बीच काम भावना स्वाभाविक है। इस प्रकार पुरुष की प्रजनन शक्ति (fecundity) तथा सन्तान उत्पत्ति की इच्छा यथा स्थिर रहती है। यह शिक्षा तथा सभ्यता की प्रगति से अप्रभावित है।
2. मनुष्य को जीवित रहने के लिए भोजन अनिवार्य है तथा कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।
3. आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य में सन्तानोत्पादन की इच्छा भी तीव्र रहती है तथा जीवन स्तर में कमी होने पर वह घटती है।

अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से हम माल्थस के सिद्धान्त को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर अध्ययन कर सकते हैं—

1. **जनसंख्या ज्यामिती अनुपात से बढ़ती है**—माल्थस का कथन है कि "अनियंत्रित जनसंख्या ज्यामितिक-दर (Geometrical ratio) से बढ़ती है।" इनका विचार है कि स्त्रियों और पुरुषों के मध्य सदा यौन आकर्षण रहा है और
रहेगा। यौन इच्छा स्वाभाविक और अत्यन्त प्रबल है फलतः सन्तान उत्पत्ति भी स्वाभाविक परिणाम है। यदि जनसंख्या को नियंत्रित नहीं किया गया तो वह प्रत्येक 25 वर्ष में दुगुनी हो जायेगी। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है, "अगर जनसंख्या को रोका न गया (संयम द्वारा) तो जनसंख्या प्रत्येक 25 वर्ष में दुगुने हो जाने की प्रवृत्ति रखती है।"

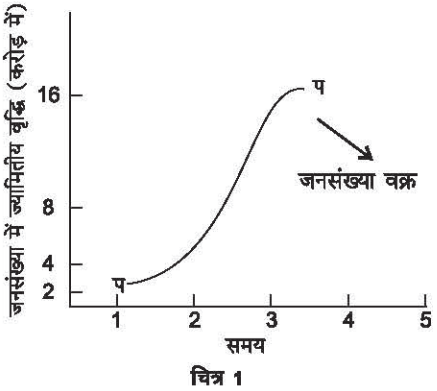

चित्र 1

TOUCH 'n' PASS

जनसंख्या के ज्यामितिक अनुपात को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है—2, 4, 8, 16, 32, 64, 128, 256 आदि इसी क्रम से बढ़ती है।

जनसंख्या वृद्धि के इस अनुपात को गुणोत्तर वृद्धि भी कह सकते हैं। माल्थस ने अपना यह निष्कर्ष कई योरोपीय देशों के भ्रमण के दौरान जनसंख्या वृद्धि के अध्ययन के आधार पर दिया था। आपके अनुसार, "जीविका प्रदान करने वाली भूमि की शक्ति की तुलना में जनसंख्या वृद्धि की शक्ति अनन्त है।"

2. **खाद्य सामग्री अंकगणितीय अनुपात से बढ़ती है**—मानव के जीवन और अस्तित्व के लिए भोजन आवश्यक है लेकिन जिस दर से जनसंख्या में वृद्धि होती है उस दर से खाद्य सामग्री में वृद्धि नहीं होती है। खाद्य सामग्री में तो समानान्तर अर्थात् गणितीय अनुपात में ही वृद्धि होती है क्योंकि कृषि उपज में 'उत्पत्ति-ह्रास नियम' लागू होता है अर्थात् जैसे-जैसे खेत में फसल उगाने का क्रम बढ़ता जाता है वैसे-वैसे क्रमानुसार कृषि उत्पादन घटता जाता है। खाद्य सामग्री के गणितीय अनुपात को इस प्रकार रखा जा सकता है—1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 आदि क्रम से। **माल्थस** के शब्दों में, यदि अन्य बातें समान रहें, तो प्रकृति द्वारा मानवीय आहार धीरे-धीरे अंकगणितीय अनुपात में बढ़ता है और मानव स्वयं तेजी से ज्योमितीय अनुपात में बढ़ता है। रेखाचित्र में खाद्यान्न सामग्री में होने वाली अंकगणितीय दर से वृद्धि प्रदर्शित है।

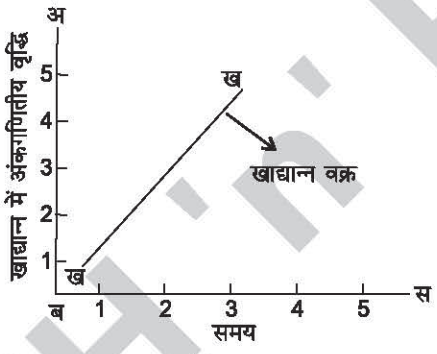


चित्र 2

3. **जनसंख्या एवं खाद्य सामग्री में असंतुलन**—यद्यपि जनसंख्या और खाद्य सामग्री दोनों में वृद्धि होती है। पर वृद्धि दर में अन्तर होने के कारण दोनों के मध्य असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। चूँकि जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितीय दर से होती है अत: इसकी तुलना में गणितीय दर से बढ़ने वाली खाद्य सामग्री पीछे रह जाती है। उदाहरण के लिए—जहाँ 5 वर्षों में खाद्य सामग्री में 1, 2, 3, 4, 5 अर्थात् 5 गुनी वृद्धि होती है, वहीं जनसंख्या में इतनी ही अवधि में ज्यामितिक अनुपात से 1, 2, 4, 8, 18 अर्थात् 16 गुनी वृद्धि हो जाती है। 5 और 16 (16 – 5 = 11) के मध्य का अन्तर खाद्य और जनसंख्या के असंतुलन को प्रदर्शित करता है। माल्थस का कथन था कि यह असंतुलन भयंकर कष्टदायी परिणामों को उत्पन्न करता है। खाद्य सामग्री और जीवन-स्तर में वृद्धि के साथ जनसंख्या बढ़ती है। उसने स्वयं लिखा है, "Prosperity was not to depend on population but population was to depend on prosperity."

4. **जनसंख्या पर प्रतिबन्ध या अवरोध**—थॉमस राबर्ट माल्थस ने जनसंख्या नियंत्रण के दो प्रकार से प्रतिबन्धों का उल्लेख किया है—

   (i) **नैसर्गिक या प्राकृतिक अवरोध** (Positive or Natural checks)—ये वे प्रतिबन्ध हैं जो प्रकृति की ओर से लगाए जाते हैं। इसके द्वारा मृत्यु दर बढ़ जाती है फलत: खाद्य सामग्री से अतिरिक्त जनसंख्या भार कम होकर उसके बराबर हो जाती है। इन अवरोधों में युद्ध, बीमारी, अकाल, भूकम्प, अतिवृष्टि, बाढ़ आदि अनेक प्राकृतिक प्रकोपों के साथ माल्थस ने खराब कार्य, बच्चों के असन्तोषजनक पालन-पोषण एवं नागरिक जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों आदि को भी सम्मिलित किया है। **माल्थस** के अनुसार—"प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिए ही लगी है, इसलिए जो बिना निमंत्रण के आयेगा उसे भूखों मरना पड़ेगा।" उसने प्राकृतिक अवरोध को अत्यन्त दु:खद

TOUCH 'n' PASS

और कष्टमय कहा है। यद्यपि इससे मृत्यु दर बढ़ने के कारण जनसंख्या घटकर खाद्यान्न पूर्ति के संतुलित अनुपात में आ जाती है। पर यह संतुलन स्थायी न होकर अल्पकालिक ही होता है। कुछ समय बाद फिर जनसंख्या बढ़ती है और संतुलन भंग होता है, पुन: प्रकृति द्वारा संतुलित जनसंख्या हो जाती है। यह स्थिति एक चक्र की भांति चलती रहती है जिसे कुछ विद्वानों ने 'माल्थूसियन चक्र' कहकर सम्बोधित किया है। इस स्थिति को चित्र में प्रदर्शित किया गया है। माल्थस के अनुसार, "आजीविका की कठिनाई के कारण जनसंख्या वृद्धि पर एक शक्ति एवं निरन्तर नियंत्रण बना रहता है।"

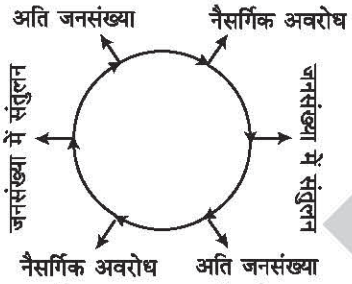

चित्र 3 : जनसंख्या में संतुलन

(a) यद्यपि ये प्राकृतिक शक्तियाँ जनसंख्या पर नियन्त्रण तो लगाती हैं पर ये अतिकष्ट कर (Miseries) हैं, इनसे बचना चाहिए।

(b) माल्थस का मत था कि किसी देश में नैसर्गिक अवरोध क्रियाशील हो जाते हैं, तो यह इस बात का परिचायक है कि उस देश में खाद्य पूर्ति की तुलना में जनसंख्या अधिक है अर्थात् जनाधिक्य की स्थिति मौजूद है।

(ii) **प्रतिबन्धात्मक अवरोध** (Preventive Checks)—माल्थस ने जनसंख्या नियन्त्रण का दूसरा प्रतिबन्ध मानवीय प्रयत्न को माना है। चूँकि प्राकृतिक प्रतिबन्ध मानव के लिए अत्यन्त दु:खद एवं कष्टकर हैं अत: मनुष्य को प्रतिबन्धक अवरोधों से जनसंख्या पर नियन्त्रण बनाये रखना चाहिए। इन अवरोधों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(a) **नैतिक प्रतिबन्ध**—वास्तव में नैतिक प्रतिबन्ध को ही माल्थस ने प्रतिबन्धक अवरोध के रूप में मान्यता दी है। इनमें वे सब प्रतिबन्ध (उपाय) सम्मिलित हैं, जो मनुष्य अपने विवेक से जन्मदर को रोकने के लिए करता है; जैसे—संयम, ब्रह्मचर्य व विलम्ब-विवाह आदि।

माल्थस ने केवल नैतिक प्रतिबन्धों को ही उचित माना है तथा इन्हें ही अपनाकर जन्मदर पर नियंत्रण रखने की सलाह दी है। उसके अनुसार नैतिक प्रतिबन्ध (ब्रह्मचर्य) ही एक ऐसा तरीका है जिससे मानव जाति प्राकृतिक अवरोधों की मार (कष्ट) से बच सकती है। माल्थस ने पुरुषों को अधिक कामुक मानते हुए महिलाओं से अपील की थी कि उन्हें पुरुषों के बहकावे में नहीं आना चाहिए, बल्कि संयम के साथ 28 वर्ष तक कुँवारी रहना चाहिए।'

(b) **कृत्रिम साधनों से अवरोध**—इनके अन्तर्गत जन्म नियन्त्रण के उन समस्त मानव निर्मित साधनों को सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें आज 'संतति निग्रह' के साधन कहा जाता है। पर माल्थस ने इन्हें अधर्म (Vices) पाप (Sins) माना है। वह इनके प्रयोग का घोर विरोधी था।

इस प्रकार एक पादरी होने के नाते माल्थस ने केवल नैतिक प्रतिबन्धों को अपनाकर जनसंख्या (जन्म दर) को कम करने का सुझाव दिया है। उसने सुझाव रखा था कि जनसंख्या बढ़ाने में लोगों को हतोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे विवेक से काम लें, भविष्य पर बिना गम्भीरता से विचार के विवाह के लिए आतुर न हों।

अब आप माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त से परिचित हो चुके हैं तो इनके सिद्धान्त को संक्षेप में अग्र प्रकार भी रखकर और परिचित हो सकते हैं—

TOUCH 'n' PASS

**माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त**

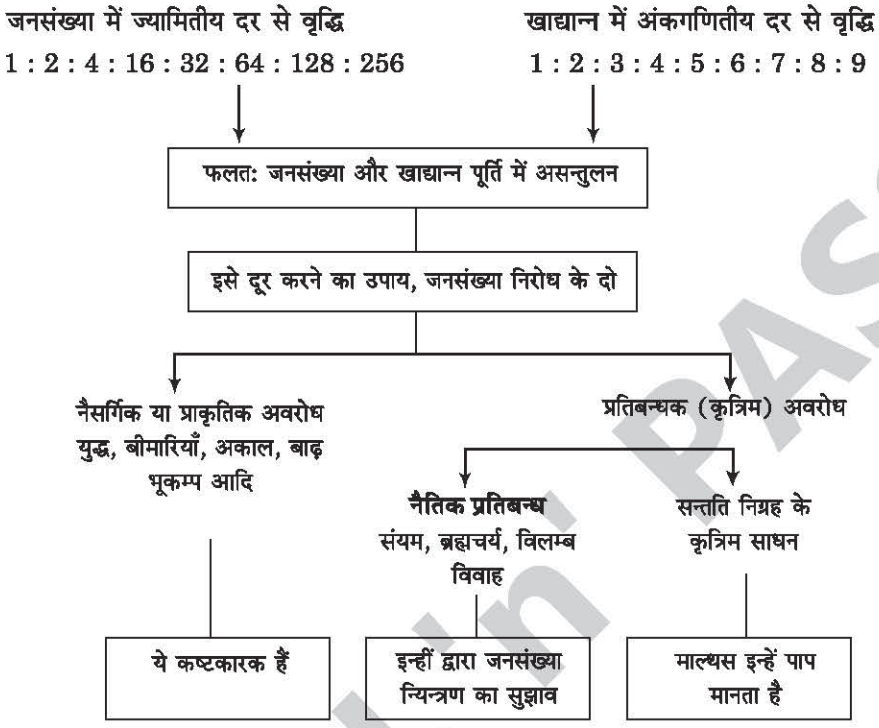


चित्र 4

**प्र.3. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**Explain in detail the optimum population theory.**

**उत्तर**

## अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त : व्याख्या
## (Optimum Population Theory : Explanation)

अनुकूलतम या ईस्टतम (Optimum) का विचार सर्वत्र स्वीकार किया जाता है। एक कक्षा में कितने छात्र होने चाहिए, पहनने के लिए कितने कपड़े होने चाहिए या कमरे में पढ़ने के लिए कितनी रोशनी होनी चाहिए आदि प्रश्न ईष्टतम के विचार से ही सम्बन्धित हैं। ईष्टतम सर्वोत्तम तो है लेकिन अधिकतम नहीं है। उदाहरण के लिए, एक श्रमिक अधिकतम मजदूरी अर्जित करने का यत्न तो कर सकता है लेकिन अधिकतम मजदूरी के लिए अन्य तत्त्वों को ध्यान में रखना होगा जैसे, रोजगार की सुरक्षा, कार्य की दशायें, धन प्राप्ति के स्रोत की वैधानिकता आदि। अत: ऊँची मजदूरी मिलने पर भी वह ऐसे स्थान पर रोजगार स्वीकार नहीं करेगा जहाँ असुरक्षा हो। इस प्रकार वह एक अनुकूलतम या ईष्टतम मजदूरी की तलाश में रहता है, न कि अधिकतम मजदूरी की। इस प्रकार ईष्टतम या अनुकूलतम स्थिति वह है जहाँ पर किसी लक्ष्य विशेष की पूर्ति सर्वोत्तम ढंग से की जा रही है। इसी परिप्रेक्ष्य में ईष्टतम या अनुकूलतम जनसंख्या की बात भी की जा सकती है। **एलफ्रेड सौवे** ने इसीलिए लिखा है—"An optimum population is the one that achieves a given aim in the most satisfactory way."

अब आपके सम्मुख प्रश्न उठता है कि कौन से लक्ष्य हैं जिन्हें हम अधिकतम करना चाहते हैं। व्यक्तिगत कल्याण, सम्पत्ति में वृद्धि, रोजगार, शक्ति, जनस्वास्थ्य एवं आयु-प्रत्याशा जीवनस्तर, राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति उपभोग आदि। इन विभिन्न घटकों में आर्थिक आधार सर्वाधिक स्वीकार्य आधार हो सकता है। अत: जब भी अनुकूलतम का उल्लेख होता है हम आर्थिक ईष्टतम को लेते हैं। **सौवे** ने लिखा है, "The optimum population is only a convenient phrase. When we say that, a country is economically over populated, we mean that its population is higher than its economic optimum at the present moment."

यहाँ पर अनुकूलतम जनसंख्या के मापदण्डों का भी उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है; यथा—

1. जनसंख्या की संरचना (Composition of Population)।

TOUCH 'n' PASS

2. प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)।
3. प्रौद्योगिकी (Technology)।
4. उत्पादन की विधियाँ (Production methods)।
5. मानवीय सुख (Human happiness)।
6. व्यक्तिगत अवसर तथा सुरक्षा (Opportunity & Security)।
7. प्रकृति के साथ सामंजस्य (Co-ordination with the Nature)।
8. पर्यावरण संरक्षण (Protection of Ecology)।
9. आध्यात्मिक उपलब्धि (Spiritual Achievement)।

अब प्रश्न उठता है कि आर्थिक इष्टतम या अनुकूलतम का आधार क्या हो? उत्पत्ति के नियमों से यह आप समझ गये होंगे कि साधनों का एक ऐसा संयोग होता है कि जिस पर लागतें न्यूनतम होती हैं। यदि उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को आदर्श अनुपात में नहीं मिलाया जायेगा तब प्रत्येक साधन का पूरा-पूरा प्रयोग उत्पादन के क्षेत्र में नहीं किया जा सकेगा। सभी साधनों के आदर्श अनुपात में होते ही अधिकतम उत्पादन की सीमा आ जायेगी। अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त उत्पत्ति के नियमों (Laws of Returns) पर आधारित है। जनसंख्या में वृद्धि तथा कार्यकारी जनसंख्या के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध होता है। किसी देश के प्राकृतिक साधनों का समुचित ढंग से विदोहन करने के लिए यह आवश्यक होता है कि जनशक्ति का अन्य उत्पादन साधनों से एक निश्चित अनुपात बना रहे। यदि किसी देश की जनसंख्या कम है तो कार्यशील जनसंख्या भी कम होगी। अत: उत्पादन के साधनों का समुचित रूप से प्रयोग न हो पाने के कारण औसत उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति आय (Per Capita Income) कम होगी। जब जनसंख्या बढ़ती है और कार्यशील जनसंख्या बढ़ती है तो श्रम विभाजन के लाभ के फलस्वरूप देश के साधनों का अच्छी तरह से प्रयोग के साथ प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ने लगती है। इस तरह आप समझ गये होंगे कि प्रारम्भ में जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम की सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता बढ़ेगी अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम (Laws of Increasing Returns) लागू होगा। उसके बाद एक ऐसा बिन्दु प्राप्त होगा जिस पर जनसंख्या का उत्पत्ति के अन्य साधनों के साथ इष्टतम सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा। यहाँ औसत उत्पादन अधिकतम एवं अनुकूलतम होगी। यह अनुकूलतम जनसंख्या का बिन्दु होगा। यह उत्पत्ति समता नियम (Laws of Constant Returns) की अवस्था है। यदि जनसंख्या में वृद्धि इसके बाद भी होती है तो यह अनुकूलतम संयोग भंग हो जायेगा। फलत: सीमान्त एवं औसत उत्पादन घटने से उत्पत्ति ह्रास नियम (Laws of Decreasing Returns) क्रियाशील हो जायेगा, प्रति व्यक्ति आय घटने लगेगी।

अब आप समझ गये होंगे कि अनुकूलतम जनसंख्या का स्तर या बिन्दु वह है जहाँ प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होगी। यदि जनसंख्या का आकार इस स्तर से कम है तो इसे न्यून जनसंख्या (Under Population) कहा जायेगा और जनसंख्या के आकार का इस बिन्दु से अधिक होने पर देश में अति जनसंख्या (Over Population) समझी जायेगी।

अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त को निम्न चित्र से भी आप समझ सकते हैं—

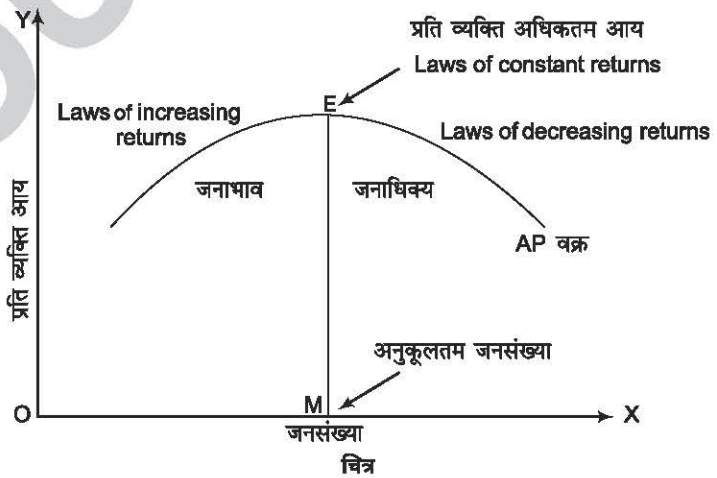


चित्र

TOUCH 'n' PASS

चित्र में $AP$ प्रति व्यक्ति औसत आय अथवा औसत उत्पादन का वक्र है। प्रारम्भ में $OM$ तक जनसंख्या में वृद्धि होने पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय तथा उत्पादकता बढ़ती है अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि नियम (Laws of increasing returns) लागू होता है। $OM$ जनसंख्या पर प्रति व्यक्ति आय $ME$ होती है जो अधिकतम है। इसके उपरान्त प्रति व्यक्ति आय घटने लगती है यहाँ उत्पत्ति ह्रास नियम (Laws of decreasing returns) लागू हो जाता है। अत: $OM$ अनुकूलतम जनसंख्या है। चित्र से स्पष्ट है कि $OM$ तक जनसंख्या वांछनीय है किन्तु $M$ बिन्दु के बाद यह अवांछित है और इस पर रोक न लगने पर जनाधिक्य की समस्या उत्पन्न हो जायेगी।

**प्रो० माल्थस** का मानना था कि यदि देश में नैसर्गिक प्रतिबन्ध लागू हो जाय तो यह स्थिति अतिजनसंख्या या जनाधिक्य (Over population) की स्थिति का सूचक है परन्तु यह विचार वास्तविक नहीं है। अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी देश में अनुकूलतम से कम जनसंख्या है तो जनाभाव अन्यथा अनुकूतलम से अधिक है तो जनाधिक्य की स्थिति मानी जायेगी।

**डाल्टन का सूत्र**—अनुकूलतम आकार से जनसंख्या की न्यूनता या आधिक्य मापने के लिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाल्टन ने एक सूत्र की स्थापना की जो निम्नलिखित है—

$$M = \frac{A - O}{O}$$

जहाँ, $M$ = समायोजन अभाव की मात्रा (Degree of Maladjustment)

$A$ = वास्तविक जनसंख्या (Actual Population)

$O$ = अनुकूलतम जनसंख्या (Optimum Population)

समायोजन अभाव से तात्पर्य है कि वास्तविक जनसंख्या अनुकूलतम जनसंख्या से कितनी कम या अधिक है। यदि $M$ धनात्मक (Positive) है तो यह जनाधिक्य को, $M$ ऋणात्मक है तो कम जनसंख्या अथवा जनाभाव का द्योतक है। यदि $M$ शून्य है तो वास्तविक एवं अनुकूलतम जनसंख्या बराबर होगी।

**प्र.4. अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचना किन आधारों पर की जाती है? स्पष्ट कीजिए।**

**On what grounds is the optimum population theory criticized? Explain.**

**उत्तर**

## अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त : आलोचनाएँ
## (Optimum Population Theory : Criticisms)

अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह पूर्णतया दोषमुक्त है। अनेक विद्वानों ने निम्न आधारों पर इसकी आलोचनाएँ की हैं—

1. **यह सिद्धान्त मात्र भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आधारित है**—"इस सिद्धान्त में आदर्श जनसंख्या का माप करने के लिए भौतिक आधारों का ही अवलम्बन लिया गया है। जनसंख्या के गुणात्मक व अन्य पक्षों पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल प्रति व्यक्ति आय और उत्पादन पर ध्यान देता है जो कि अपने आप में संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है। वास्तव में जनसंख्या केवल आर्थिक आधारों से ही प्रभावित नहीं होती, बल्कि देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व सैनिक शक्तियों से भी प्रभावित होती है। अत: जनसंख्या के निर्धारण में इन तथ्यों पर ध्यान दिया जाना चाहिए था।"
2. **यह सिद्धान्त आधुनिक परिवर्तनशील जगत के लिए अत्यन्त स्थैतिक है**—अनेक विद्वानों ने सिद्धान्त की स्थिर प्रकृति के कारण इसे आधुनिक प्रगतिशील जगत के लिए अनुपयुक्त और स्थैतिक कहा है—**Alva Myrdal** के अनुसार—यह सिद्धान्त एक "पुराना स्थैतिक विश्लेषण है।" आज की दुनिया में तकनीकी, सामाजिक संस्थाएँ व आर्थिक संगठन एक-सी स्थिति में नहीं रहते हैं। इतना ही नहीं उत्पादन फलन में परिवर्तन होने के कारण उत्पत्ति के नियमों में परिवर्तन होता रहता है। अत: इन तथ्यों को स्थिर मान लेना अवैज्ञानिक होगा। यही कारण है कि Paul Mombert ने कहा है कि यह सिद्धान्त आधुनिक जगत् के लिए केवल सैद्धान्तिक महत्त्व का है। अपनी स्थिर प्रकृति के कारण यह सिद्धान्त अपनी उपयोगिता ही खो बैठता है। **Hauser** and **Duncan** के अनुसार, "It is static and also volatile".
3. **जनसंख्या का सिद्धान्त मानना ही अनुचित**—आलोचकों का मत है कि अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त को जनसंख्या का सिद्धान्त मानना ही अनुचित है क्योंकि, यह सिद्धान्त 'कारण एवं परिणाम' के सम्बन्धों पर समुचित प्रकाश नहीं डालता। यह इस सन्दर्भ में मौन है कि जनसंख्या किस प्रकार और क्यों बढ़ती है अथवा उसके बढ़ने का नियम क्या है?

TOUCH 'n' PASS

इस सिद्धान्त के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि कारण एवं परिणाम में सम्बन्ध हो। यह सिद्धान्त वस्तुत: जनसंख्या विवेचन में 'अनुकूलतम' के प्रत्यय का प्रयोग मात्र है। यही कारण है कि जहाँ (Benay K. Sarkar) ने "इसे स्वभाव से अवैज्ञानिक कहा है।" वहीं सोरोकिन जैसे समाजशास्त्री यह कहने को मजबूर हुए हैं कि "यह कुतर्कों का दुष्चक्र है।"

4. **यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है**—इसमें जिस अनुकूलतम या आदर्श जनसंख्या की बात की गई है उसकी माप करना यथार्थ जगत् में अत्यन्त ही कठिन है। जैसा कि **चटर्जी** ने लिखा है—"इस आकस्मिक और प्रतिक्षण परिवर्तित संसार में वस्तुत: अनुकूलतम जनसंख्या की खोज मृगतृष्णा की भाँति है।"
5. **इस सिद्धान्त की मान्यताएँ यथार्थ नहीं हैं**—(क) यह मान्यता कि जनसंख्या वृद्धि के बावजूद जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या का अनुपात अपरिवर्तित रहता है, सही नहीं है। (ख) यह मान्यता भी त्रुटिपूर्ण है कि जनसंख्या में वृद्धि होने पर भी देश के प्राकृतिक साधन, पूँजी की मात्रा व उत्पादन प्रविधियाँ अपरिवर्तित रहती हैं। आज के इस प्रावैगिक समाज में इनके अपरिवर्तित रहने की कल्पना यथार्थ से परे है। (ग) यह कहना भी कि कार्यशील जनसंख्या के कार्य के घंटे तथा उनके द्वारा किया जाने वाला प्रति घंटा कार्य स्थिर रहता है, व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता।
6. **सिद्धान्त का दृष्टिकोण संकुचित है**—यह सिद्धान्त जनसंख्या के प्रश्न पर संकुचित दृष्टि से विचार करता है। मात्र प्रति व्यक्ति आय ही प्रगति का सूचक नहीं है। नागरिकों का स्वास्थ्य, शिक्षा, सभ्यता, निर्माण कौशल तथा नैतिक दृष्टि से उन्नत होना भी आवश्यक है। इस प्रकार आदर्श जनसंख्या के आकार पर विचार करते समय केवल आर्थिक उन्नति पर ही ध्यान देना पर्याप्त नहीं है बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सैनिक परिस्थितियों पर भी ध्यान देना चाहिए।
7. **यह सिद्धान्त आर्थिक नीति निर्धारण में सहायक नहीं**—यह सिद्धान्त आर्थिक नीति (Economic Policy) के मार्ग प्रदर्शन की दृष्टि से बेकार साबित होता है। जब वित्तीय नीति का उद्देश्य देश में रोजगार, उत्पादन तथा आय के स्तर को बढ़ाना है या स्थिर करना है, तो जनसंख्या के अनुकूलतम स्तर की बात ही नहीं होती है। अत: इस सिद्धान्त का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है और इसे बेकार समझा जाता है।
8. **अनुकूलतम जनसंख्या ज्ञात करना कठिन**—अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण आलोचना यह है कि किसी निश्चित अवधि में अनुकूलतम जनसंख्या का पता लगाना ही कठिन है। किसी देश में अनुकूलतम जनसंख्या स्तर के बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलता। उसकी माप करना इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि अनुकूलतम जनसंख्या से तात्पर्य है देश के लिए परिमाणात्मक (Quantitative) तथा गुणात्मक (Qualitative) आदर्श जनसंख्या। गुणात्मक-आदर्श जनसंख्या में जनसंख्या का न केवल शारीरिक गठन, ज्ञान तथा प्रज्ञान बल्कि उसकी श्रेष्ठतम आयु-संरचना (Age-Composition) भी सम्मिलित रहती है। ये चर (Variable) परिवर्तित होते रहते हैं और वातावरण से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार जनसंख्या के अनुकूलतम स्तर की अवधारणा अस्पष्ट रहती है।
9. **यह सिद्धान्त आय के वितरण पक्ष पर ध्यान नहीं देता**—इस सिद्धान्त की इस बात पर भी आलोचना की जाती है कि यह राष्ट्रीय आय के वितरण पक्ष की उपेक्षा करता है। केवल उत्पादन पक्ष पर ही ध्यान देता है। प्रति व्यक्ति अधिकतम औसत आय का तब तक कोई महत्त्व नहीं जब तक कि राष्ट्रीय आय का समान वितरण नहीं होता। यदि कुल राष्ट्रीय आय कुछ गिने-चुने धनी व्यक्तियों के हाथों में ही केन्द्रित हो जाय तो समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार, यह सिद्धान्त राष्ट्रीय आय के समान वितरण जैसे महत्त्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा करता है।
10. **प्रति व्यक्ति आय का ठीक-ठाक माप सम्भव नहीं**—प्रति व्यक्ति आय की माप में कठिनाई होती है। इस सम्बन्ध में आँकड़े प्राय: गलत, भ्रमोत्पादक तथा अविश्वसनीय होते हैं जो अनुकूलतम जनसंख्या की धारणा के प्रति सन्देह उत्पन्न करते हैं। शायद इसीलिए Brinley Thomas ने भी कहा है, "यह धुँधला पकड़ में न आने वाला विचार है।"

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त का जनांकिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन से लोगों में सामान्य 'माल्थूसियन भूत' (Malthusian Devil) का डर कम हो गया। इस सिद्धान्त ने यह स्पष्ट किया कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक नहीं होती। यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तो उसका बढ़ना हितकर नहीं होता। अत: इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.5. माँग के नियम से आप क्या समझते हैं? इस नियम के अपवादों एवं मान्यताओं का भी उल्लेख कीजिए।**
**What do you understand by the law of demand? Also mention the exceptions and assumptions of this law.**

**उत्तर**

## माँग का नियम
## (Law of Demand)

माँग का नियम वस्तु की कीमत और उस कीमत पर माँगी जाने वाली मात्रा के गुणात्मक (qualitative) सम्बन्ध को बताता है। उपभोक्ता अपनी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के अनुसार अपने व्यवहारिक जीवन में ऊँची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदता है और कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा। उपभोक्ता की इसी मनोवैज्ञानिक उपभोग प्रवृत्ति पर माँग का नियम आधारित है। माँग का नियम यह बतलाता है कि '**अन्य बातों के समान रहने पर**' (Other things being equal) वस्तु की कीमत एवं वस्तु की मात्रा में विपरीत सम्बन्ध (inverse relationship) पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, अन्य बातों के समान रहने की दशा में किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी माँग में कमी हो जाती है तथा इसके विपरीत कीमत में कमी होने पर वस्तु की माँग में वृद्धि हो जाती है।

**मार्शल** के अनसार, "कीमत में कमी के फलस्वरूप वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा में वद्धि होती है तथा कीमत में वृद्धि होने से माँग घटती है।"

**सैम्युलसन** के शब्दों में, "दिये गये समय में अन्य बातों के समान रहने की दशा में जब वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तब उसकी कम मात्रा की माँग की जाती है.....व्यक्ति कम कीमत पर अधिक वस्तुएँ खरीदते हैं और अधिक कीमत पर कम वस्तुएँ खरीदते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दी गई स्थिर दशाओं के अन्तर्गत वस्तु की कीमत और वस्तु की माँग में एक विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात्,

$$P \propto \frac{1}{Q} \qquad ...(1)$$

जहाँ $P$ = वस्तु की कीमत, $Q$ = वस्तु की माँग

समीकरण (1) बताता है कि कीमत बढ़ने पर माँग घटेगी तथा कीमत घटने पर माँग बढ़ेगी।

संक्षेप में, माँग का नियम एक गुणात्मक कथन (qualitative statement) है, मात्रात्मक कथन (quantitative statement) नहीं। यह नियम केवल कीमत और माँग के परिवर्तन की दिशा बतलाता है, परिवर्तन की मात्रा को नहीं।

### माँग के नियम के अपवाद (Exceptions to Law of Demand)

कुछ दशाओं में कीमत और माँग का प्रतिलोम सम्बन्ध क्रियाशील नहीं होता। ऐसी दशाओं को नियम का अपवाद कहा जाता है, जो निम्नलिखित हैं—

1. **उपभोक्ता की अज्ञानता** (Ignorance of Consumer)—जब उपभोक्ता अपनी अज्ञानता के कारण ऊँची कीमत देकर यह अनुभव करता है कि उसने अधिक टिकाऊ एवं श्रेष्ठ वस्तु खरीदी है तब ऊँची कीमत माँग को प्रभावित नहीं करती। उसके अतिरिक्त जब किसी वस्तु की कीमत घटाई जाती है तब उपभोक्ता अपनी अज्ञानता के कारण कम कीमत वाली वस्तु को घटिया समझकर उपभोग नहीं करता। ऐसी दशा में कीमत घटने पर उपभोग अधिक होने के स्थान पर कम हो जाता है और माँग का नियम क्रियाशील नहीं होता।
2. **प्रतिष्ठासूचक वस्तुएँ** (Prestigious Goods)—प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं में मिथ्या आकर्षण (False show) के कारण माँग का नियम क्रियाशील नहीं होता। समाज का धनी वर्ग अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए ऊँची कीमत वाली वस्तुओं का अधिक क्रय करता है। हीरे-जवाहरात, बहुमूल्य आभूषण, कीमती कलाकृतियाँ आदि वस्तुओं की माँग पर कीमत परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तविकता तो यह है कि इन वस्तुओं की कीमतों में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है धनी वर्ग मिथ्या आकर्षण के वशीभूत होकर इन वस्तुओं की माँग भी बढ़ाता जाता है।
3. **भविष्य में कीमत वृद्धि की सम्भावना** (Expected rise in Future Price)—कुछ भावी प्रत्याशित परिस्थितियों के कारण जैसे युद्ध, अकाल, क्रान्ति, सरकारी नीति, सीमित पूर्ति जैसी सम्भावनाओं में कीमत वृद्धि के बावजूद माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जायेगी क्योंकि उपभोक्ता भविष्य में और कीमत वृद्धि की आशंका से वर्तमान में माँग को बढ़ा

TOUCH 'n PASS

देगा। ऐसी दशा में कीमत और माँग में प्रतिलोम सम्बन्ध न होकर सीधा सम्बन्ध (direct relationship) होता है और माँग वक्र बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ बन जाता है।

4. **गिफिन का विरोधाभास** (Giffin's Paradox)—जब उपभोग की दो वस्तुओं में एक घटिया वस्तु (inferior goods) हो तथा दूसरी श्रेष्ठ वस्तु (superior goods) हो तब गिफिन का विरोधाभास उत्पन्न होता है। घटिया वस्तुएँ वे होती हैं जिनका उपभोग उपभोक्ता द्वारा इसलिए किया जाता है क्योंकि उपभोक्ता अपनी सीमित आय और श्रेष्ठ वस्तु की ऊँची कीमत के कारण कम कीमत वाली वस्तु अर्थात् घटिया वस्तु का उपभोग करता है। ऐसी दशा में घटिया वस्तु की कीमत में जब कमी होती है तब उपभोक्ता कीमत के घटने के कारण सृजित अतिरिक्त क्रय-शक्ति से अच्छी वस्तु का उपभोग बढ़ा देता है तथा घटिया वस्तु का उपभोग घटा देता है। इस प्रकार घटिया वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी माँग में कमी होती है। माँग के इस विरोधाभास की ओर सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री **रॉबर्ट गिफिन** (Robert Giffin) ने ध्यान आकृष्ट किया था। सम्मानार्थ उन्हीं के नाम पर इसे 'गिफिन का विरोधाभास' (Giffin's paradox) के नाम से जाना जाता है। गिफिन विरोधाभास वाली घटिया वस्तु के माँग वक्र को चित्र 7 में दिखाया गया है।

चित्र में *DD* घटिया वस्तु का माँग वक्र है जो बायें से दायें ऊपर की ओर बढ़ता हुआ है। *OP* कीमत पर उपभोक्ता घटिया वस्तु की *OQ* मात्रा क्रय करता है। जब उपभोक्ता की क्रय-शक्ति में, घटिया वस्तु की कीमत घटने (चित्र में *OP* से $OP_1$) से वृद्धि होती है तब उपभोक्ता घटिया वस्तु का उपभोग *OQ* से $OQ_1$ तक घटाकर श्रेष्ठ वस्तु की ओर उपभोक्ता बढ़ा देता है। दूसरे शब्दों में, घटिया वस्तु की कीमत घटने पर उसकी माँग में कमी होती है। यही माँग के नियम का अपवाद है।

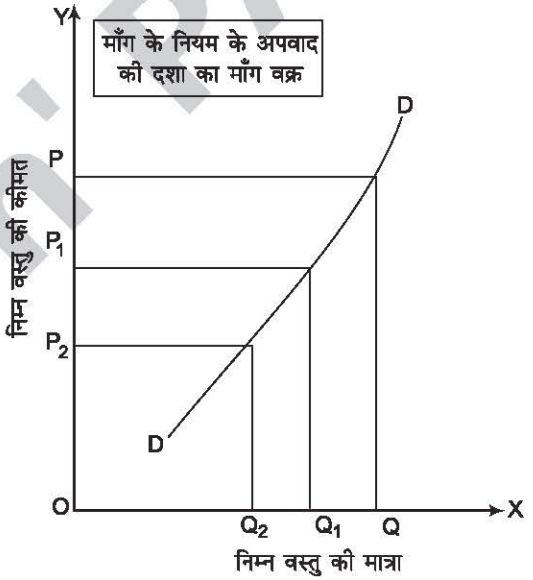

चित्र 7

**माँग के नियम की मान्यताएँ** (Assumptions of the Law of Demand)—माँग के नियम की क्रियाशीलता कुछ मान्यताओं पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, निम्नलिखित मान्यताओं के अन्तर्गत माँग का नियम क्रियाशील होता है—

1. उपभोक्ता की आय में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
2. उपभोक्ता की रुचि, स्वभाव, पसन्द आदि में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
3. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
4. किसी नवीन स्थानापन्न वस्तु का उपभोक्ता को ज्ञान नहीं होना चाहिए।
5. भविष्य में वस्तु की कीमत में परिवर्तन की सम्भावना नहीं होनी चाहिए।

**प्र.6. माँग तालिका क्या है? माँग के नियम की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**What is demand schedule? Explain in detail the law of demand.**

**उत्तर**

## माँग तालिका
## (Demand Schedule)

किसी दिये समय पर वस्तु की विभिन्न कीमतों एवं उन कीमतों पर माँगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं के पारस्परिक सम्बन्धों को बताने वाली तालिका माँग तालिका कहलाती है। दूसरे शब्दों में, एक निश्चित समय पर बाजार में दी गई विभिन्न कीमतों पर वस्तु की जितनी मात्राएँ बेची जाती हैं यदि इस सम्बन्ध को (अर्थात् कीमत व माँग के सम्बन्ध को) एक तालिका के रूप में व्यक्त किया जाये तो यह माँग तालिका कहलाती है।

**उदाहरण**—माँग तालिका के विचार को एक काल्पनिक उदाहरण से समझा जा सकता है—

**तालिका कालपनिक माँग तालिका**

| वस्तु की कीमत प्रति इकाई (रुपयों में) | माँगी गई वस्तु $X$ की इकाइयाँ |
|---|---|
| 2 | 200 |
| 4 | 150 |
| 6 | 130 |
| 8 | 100 |
| 10 | 80 |
| 12 | 60 |

उपर्युक्त तालिका को यदि ग्राफ पेपर पर खींचा जाय तो निम्नांकित चित्र की भाँति हमें DD वक्र प्राप्त होता है। यही माँग वक्र है।

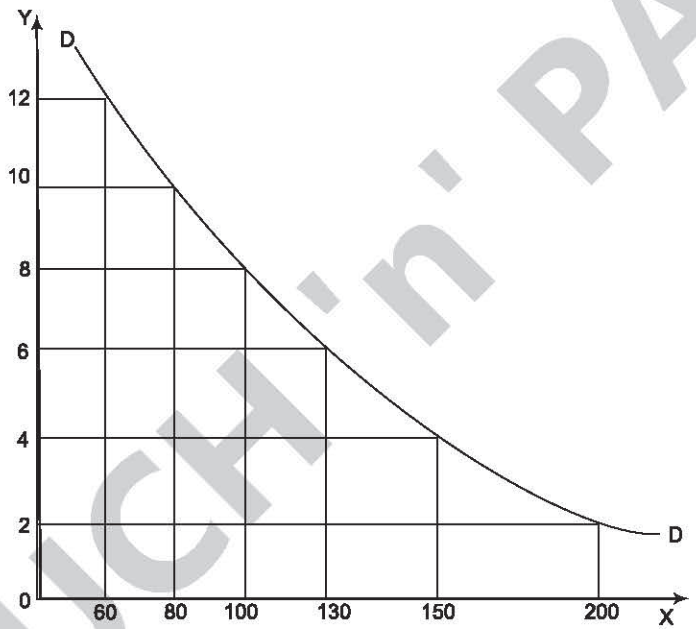


चित्र

## माँग वक्र बायें से दायें नीचे क्यों गिरता है? अथवा माँग के नियम की व्याख्या
## (Why Demand Curve Slopes Downward from Left to Right *or* Explanation of Law of Demand)

कीमत में वृद्धि होने पर माँग में कमी करने और कीमत में कमी होने पर माँग में वृद्धि करने वाले उपभोक्ता के व्यवहार के निम्नलिखित कारण हैं—

1. **घटती सीमान्त उपयोगिता नियम** (Law of Diminishing Marginal Utility)—माँग का नियम घटती सीमान्त उपयोगिता नियम पर आधारित है। इस नियम के अनुसार उपभोक्ता द्वारा वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करने पर वस्तु की सीमान्त इकाइयों की उपयोगिता क्रमशः घटती जाती है। सीमान्त इकाइयों की घटती उपयोगिता के कारण उपभोक्ता वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों की कम कीमत देना चाहता है। दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाइयों का क्रय करेगा वैसे-वैसे वह वस्तु की कम कीमत देगा अर्थात् कम कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदी जायेगी। इसी प्रकार जब उपभोक्ता वस्तु की कम इकाइयों का उपभोग करता है तब कम वस्तु के कारण उसे ऊँची सीमान्त उपयोगिता मिलती है जिसके कारण उपभोक्ता ऊँची कीमत देने को तैयार रहता है। दूसरे शब्दों में, कम उपभोग

TOUCH 'n' PASS

के कारण ऊँची उपयोगिता उपभोक्ता को वस्तु की ऊँची कीमत देने को प्रति करती है अर्थात् ऊँची कीमत पर कम मात्रा क्रय की जाती है। यही माँग का नियम है।

संक्षेप में,

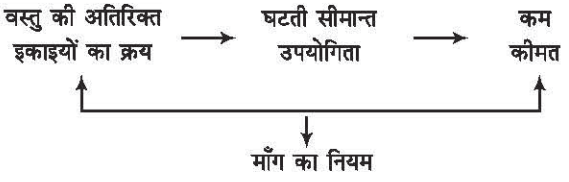


इसी प्रकार,

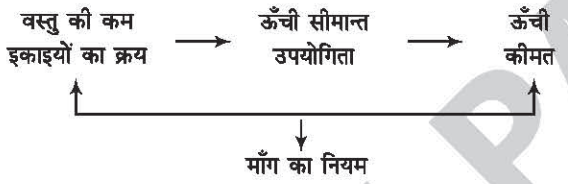


2. **क्रय-शक्ति में वृद्धि अर्थात् आय प्रभाव** (Increase in Purchasing Power or Income Effect)—वस्तु की कीमत में कमी होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय (अथवा क्रय-शक्ति) में वृद्धि होती है जिसके कारण उपभोक्ता को अपना पूर्व उपभोग स्तर बनाये रखने के लिए पहले की तुलना में कम व्यय करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, वस्तु की कीमत में कमी होने के कारण उपभोक्ता पहले किये जाने वाले कुल व्यय में ही अब वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकता है। इस प्रकार वस्तु की कीमत में कमी होने पर वस्तु का अधिक क्रय सम्भव हो पाता है। यही माँग का नियम है। इसके विपरीत वस्तु की कीमत में वृद्धि के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय (अथवा क्रय-शक्ति) में कमी होती है जिसके कारण वस्तु का उपभोग घट जाता है। यही माँग का नियम है।

इसी प्रकार

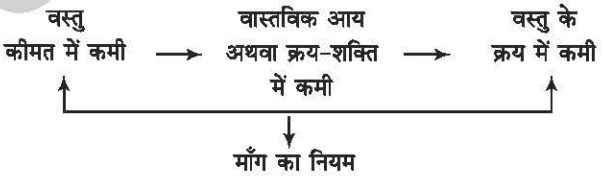


3. **प्रतिस्थापन प्रभाव** (Substitution Effect)—वस्तु की कीमत एवं माँग के विपरीत सम्बन्ध (अथवा ऋणात्मक सम्बन्ध) का कारण प्रतिस्थापन प्रभाव है। जब एक ही आवश्यकता की पूर्ति दो या अधिक वस्तुओं से सम्भव होती है तब अन्य वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने की दशा में एक वस्तु की कीमत का परिवर्तन मूल वस्तु के उपभोग में इसलिए परिवर्तन कर देता है क्योंकि उपभोक्ता मूल वस्तु एवं स्थानापन्न वस्तु के प्रयोग अनुपात में परिवर्तन कर देता है। यही प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect) है। उदाहरणार्थ, चीनी और गुड़ एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। चीनी और गुड़ में यदि चीनी की कीमत में कमी हो जाती है तब अनेक उपभोक्ता गुड़ का उपभोग छोड़कर चीनी के उपभोग पर प्रतिस्थापित हो जायेंगे जिसके कारण चीनी की माँग में वृद्धि हो जायेगी। इसके विपरीत, यदि चीनी की कीमत में वृद्धि होती

TOUCH 'n' PASS

है तब अनेक उपभोक्ता चीनी का उपभोग न कर पाने के कारण गुड़ के उपभोग पर प्रतिस्थापित हो जायेंगे जिसके फलस्वरूप चीनी की माँग में कमी हो जायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी माँग बढ़ती है और कीमत के बढ़ने पर माँग घटती है।

4. **क्रेताओं की संख्या में परिवर्तन** (Change in Consumer's Number)—वस्तु की कीमत पर परिवर्तन उपभोक्ता की संख्या को भी प्रभावित करता है। जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होती है, तो कुछ ऐसे उपभोक्ता भी उस वस्तु का उपभोग करने लगते हैं जो आरम्भ में ऊँची कीमत के कारण उपभोग करने में असमर्थ थे। ऐसी दशा में वस्तु की माँग बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तो अनेक उपभोक्ता अपनी सीमित आय के कारण उस वस्तु का उपभोग बन्द कर देते हैं जिसके कारण वस्तु की माँग घट जाती है। यही माँग का नियम है।

**प्र.7. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की विस्तृत विवेचना कीजिए।**
**Discuss in detail the law of diminishing marginal utility.**

**उत्तर**

## सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम
## (Law of Diminishing Marginal Utility)

19वीं शताब्दी के प्रमुख अर्थशास्त्री **गोसेन** (Gossen) ने इस विचार का प्रयोग पहली बार किया था इसलिए इस नियम को **गोसेन का प्रथम नियम** (Gossen's First Law) कहा जाता है। बाद में इस नियम की वैज्ञानिक व्याख्या **प्रो० मार्शल** (Prof. Marshall) ने की थी।

### परिभाषाएँ (Definitions)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **मार्शल** (Marshall) के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु की मात्रा (स्टॉक) में वृद्धि होने पर जो अतिरिक्त लाभ (सन्तुष्टि या उपयोगिता) प्राप्त होता है, वह वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ घटता जाता है" मार्शल की परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी वस्तु का उत्तरोत्तर उपभोग करते रहने से उस वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटने लगती है। घटती हुई अतिरिक्त उपयोगिता को ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम कहा जाता है।
2. **चैपमैन** (Chapman)—"जिस किसी भी वस्तु की जितनी ही अधिक मात्रा हमारे पास होती है, हम उस वस्तु के लिए उतने ही कम इच्छुक होते जाते हैं, अथवा हम उस वस्तु की उतनी ही कम अतिरिक्त इकाइयाँ चाहते हैं।" प्रो० चैपमैन की धारणा भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में मार्शल की धारणा से मिलती है। दोनों अर्थशास्त्री इस बात को मानते हैं कि वस्तु की मात्रा के बढ़ने या उनका लगातार उपभोग करते रहने से उससे प्राप्त होने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटते हुए क्रम में प्राप्त होती है।
3. **बोल्डिंग** (Boulding)—"जब कभी कोई उपभोक्ता अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए किसी एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है, तो उस बढ़ायी गयी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अन्त में अवश्य घटती है।" प्रो० बोल्डिंग की धारणा एक नयी बात बताती है, जो अन्य अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में नहीं है। पहले पहल एक या दो इकाइयों के उपभोग से सीमान्त उपयोगिता बढ़ेगी और उसके तुरन्त बाद उसमें गिरावट आने लगेगी। यह विचारधारा वर्तमान समय के अर्थशास्त्रियों की देन कही जाती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि उपभोक्ता ज्यों-ज्यों वस्तुओं का उपभोग करता है, त्यों-त्यों उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती है और एक बिन्दु के बाद तो कुल उपयोगिता में भी कमी आने लगती है।

### सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या
### (Explanation of Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को हम एक काल्पनिक तालिका की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं—

TOUCH 'n PASS

**तालिका**

| रोटियों की संख्या | रोटी से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता | रोटियों से प्राप्त कुल उपयोगिता |
|---|---|---|
| 1 | 20 | 20 |
| 2 | 25 | 45 |
| 3 | 15 | 60 |
| 4 | 10 | 70 |
| 5 | 5 | 75 |
| 6 | 0 पूर्ण तुष्टि बिन्दु | 75} |
| 7 | – 5 | 70 |
| 8 | – 10 | 60 |

उपर्युक्त तालिका को देखकर हम यह कह सकते हैं कि दो रोटियों के उपभोग करने तक उपभोक्ता की सीमान्त उपयोगिता में वृद्धि हो रही है, अर्थात् पहली रोटी की अपेक्षा दूसरी रोटी से मिलने वाली उपयोगिता अधिक है। 'एक सीमा के बाद' या 'एक बिन्दु के बाद' या 'अन्त में' जैसा कि बोल्डिंग ने कहा है, रोटी की दूसरी इकाई के तुरन्त बाद जब रोटी की तीसरी इकाई का उपभोग किया जाता है तब सीमान्त उपयोगिता 25 से घटकर 15 और चौथी, पाँचवीं तथा छठी इकाई के उपभोग से सीमान्त उपयोगिता घटकर क्रमश: 10, 5 और 0 तक पहुँच जाती है। उपभोक्ता को रोटी की छठी इकाई से पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त हो जाती है। इस बिन्दु को **'पूर्ण तृप्ति का बिन्दु'** (Point of Satiety) भी कहते हैं। इसी बिन्दु पर रोटियों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता भी अधिकतम होती है। इस बिन्दु के बाद, जब उपभोक्ता रोटी की सातवीं और आठवीं इकाई का उपभोग करता है, तो उपभोक्ता को ऋणात्मक उपयोगिता प्राप्त होने लगती है। इस स्थिति को तालिका में –5 व –10 से अंकित किया गया है। सामान्यतया हम कह सकते हैं कि एक विवेकशील उपभोक्ता रोटी की सातवीं और आठवीं इकाई का उपभोग नहीं करेगा।

संक्षेप में, हम तालिका से तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं—

1. धनात्मक सीमान्त उपयोगिता (पाँचवीं रोटी तक) कुल उपयोगिता में वृद्धि करती है।
2. शून्य सीमान्त उपयोगिता (छठी रोटी पर) कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।
3. शून्य सीमान्त उपयोगिता के बाद (रोटी की सातवीं और आठवीं इकाई पर) सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।

उपर्युक्त निष्कर्ष से यह स्पष्ट है कि सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

**रेखाचित्र की सहायता से स्पष्टीकरण** (Diagrammatic Representation)—संलग्न चित्र से स्पष्ट है कि रोटियों का उत्तरोत्तर उपभोग करने से प्रारम्भ में $A$ बिन्दु तक सीमान्त उपयोगिता बढ़ती है, उसके बाद गिरने लगती है। चित्र के अनुसार $A$ बिन्दु के बाद $MU$ रेखा उत्तरोत्तर गिरती जाती है। रोटी की छठी इकाई का उपभोग करने पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। चित्र में इस बिन्दु को $E$ से दिखाया गया है। $E$ बिन्दु पर उपभोक्ता को पूर्ण सन्तुष्टि मिलती है। चित्र में इस बिन्दु को पूर्ण तृप्ति का बिन्दु कहा गया है। बिन्दु $E$ के बाद $MU$ रेखा $OX$-axis के नीचे चली जाती है, इससे स्पष्ट है कि $E$ बिन्दु के बाद, उपभोक्ता ज्यों-ज्यों रोटी की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करता है, रोटी की प्रत्येक अगली इकाई से सीमान्त उपयोगिता घटती है, जो ऋणात्मक सीमान्त उपयोगिता है। चित्र में $EC$ रेखा ऋणात्मक स्थिति को व्यक्त करती है।

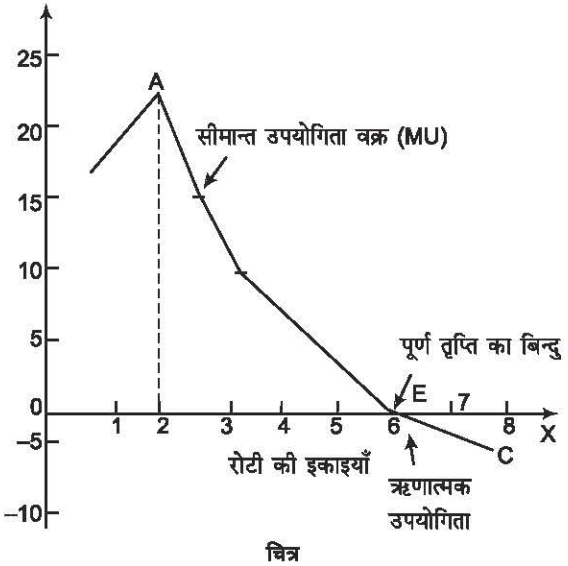


चित्र

TOUCH 'n' PASS

**प्र.8. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के लागू होने के कारण बताइए एवं इसके महत्त्व का भी वर्णन कीजिए।**
**Explain the causes of application of law of diminishing marginal utility and also discuss its importance.**

**उत्तर**

## नियम के लागू होने के कारण
## (Causes of Application of Law)

**प्रो० बोल्डिंग** (Prof. Boulding) ने सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के लागू होने के लिए निम्न कारण बताये हैं—

1. **पूर्ण स्थानापन्न वस्तु का अभाव** (Commodity are Imperfect Substitutes)—वस्तुएँ एक-दूसरे की पूर्ण स्थानापन्न नहीं होती हैं, क्योंकि वस्तुओं का उपभोग एक-दूसरे के रूप में एक उचित मात्रा के साथ, मक्खन की एक निश्चित मात्रा तक ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, रोटी की एक निश्चित मात्रा के साथ, मक्खन की एक निश्चित मात्रा का उपयोग, एक आदर्श उपयोग होगा, यदि रोटी की मात्रा को स्थिर रखकर मक्खन की मात्रा को बढ़ाते जायें तो मक्खन की इकाइयों से घटती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी।
2. **किसी समय विशेष पर किसी एक ही आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है** (Satiability of Particular Wants)—समय और साधन की कमी के कारण एक समय में एक साथ सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती है। उपभोग करते-करते उपभोक्ता एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है, जहाँ पर उपभोग की जाने वाली वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटकर शून्य (Zero) हो जाती है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता को पूर्ण सन्तुष्टि (Full Satisfaction) मिलती है और कुल उपयोगिता भी अधिकतम होती है। इस प्रकार, अधिकतम इकाइयों के उपभोग से सन्तुष्टि बढ़ने की अपेक्षा घटती है।
3. **वैकल्पिक प्रयोग** (Alternative Uses)—प्रत्येक वस्तु के अनेक उपयोग होते हैं। कुछ प्रयोग (Uses) बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं तथा कुछ कम महत्त्वपूर्ण होते हैं। जैसे-जैसे किसी वस्तु विशेष के स्टॉक में वृद्धि होती जाती है उस वस्तु का उपभोग कम महत्त्व वाली जगह किया जाने लगता है।

## सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व
## (Importance of the Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के महत्त्व को निम्न दो शीर्षकों से स्पष्ट किया जा सकता है—

**( अ ) नियम का सैद्धान्तिक महत्त्व** (Theoretical Importance)—नियम का सैद्धान्तिक महत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **माँग के नियम का आधार** (Basis of Law of Demand)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम माँग के नियम का आधार है। यह नियम यह बताता है कि माँग वक्र क्यों दायीं ओर को झुका हुआ होता है। ज्यों-ज्यों उपभोक्ता किसी वस्तु का उपभोग करता है, त्यों-त्यों उसे उस वस्तु से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटते हुए क्रम में मिलती है। इसीलिए उपभोक्ता पहली वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु की कम कीमत देता है। यही बात माँग का नियम भी बताता है।
2. **कीमत सिद्धान्त में महत्त्व** (Importance in Price Theory)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम मूल्य सिद्धान्त के लिए आधारशिला का कार्य करता है, क्योंकि यह नियम स्पष्ट करता है कि वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होने पर कीमत में क्यों कमी आती है।
3. **उपभोक्ता की बचत में महत्त्व** (Importance in Consumer's Surplus)—उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व उपभोक्ता की बचत की धारणा के लिए है। कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु की इकाई को उस बिन्दु तक क्रय करता है, जहाँ पर उस वस्तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता उसके मूल्य के बराबर होती है। इस सीमान्त इकाई के पहले वाली इकाइयों से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता मिलती है, जबकि उसने सभी इकाइयों के लिए समान मूल्य दिया है। यही अतिरिक्त उपयोगिता उपभोक्ता की बचत है।

**( ब ) नियम का व्यावहारिक महत्त्व** (Practical Importance)—व्यावहारिक दृष्टिकोण से सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का निम्नलिखित महत्त्व है—

1. **सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का आधार** (Basis of the Law of Equi-Marginal Utility)—प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की सहायता ली जाती है। सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की प्रमुख मान्यता सीमान्त उपयोगिता ह्रास

TOUCH n PASS

नियम है। अधिकतम सन्तुष्टि के लिए उपभोक्ता अपनी मुद्रा की प्रथम इकाई उस आवश्यकता पर खर्च करता है जिससे उसे अधिक उपयोगिता मिलती है। इस प्रकार के खर्च से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है और उसकी कुल उपयोगिता भी बढ़ती है। इन तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह नियम सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का आधार है।

2. **कर प्रणाली का आधार** (Basis of Taxation System)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व राजस्व में भी है। यह नियम बताता है कि वस्तु की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उसकी उपयोगिता में कमी होती है। यही बात मुद्रा के सम्बन्ध में भी लागू होती है। मुद्रा की उपयोगिता एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा निर्धन व्यक्ति के लिए अधिक होती है। सरकार इस आधार पर धनी व्यक्ति पर प्रगतिशील दर (Progressive Taxes) पर कर लगाती है। धन के न्यायोचित वितरण के लिए इस नियम की सहायता ली जा सकती है।
3. **नये उत्पादन को प्रोत्साहित करना** (Aid to New Production)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व केवल उपभोग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका महत्त्व उत्पादन के क्षेत्र में भी है। यदि उपभोक्ता लगातार किसी वस्तु का उपभोग करता रहे, तो उसके लिए उस वस्तु की उपयोगिता घटेगी। अब उपभोक्ता की रुचि नयी वस्तु के प्रति बढ़ने लगती है। उपभोक्ता की इस रुचि को देखकर उत्पादक अपने उत्पादन के साधनों को नई वस्तुओं के उत्पादन में लगायेंगे, जिससे नई वस्तुओं का उत्पादन होगा।
4. **विनिमय मूल्य व प्रयोग मूल्य के अन्तर को स्पष्ट करना** (Explain the Difference of Value in Use and Value in Exchange)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम विनिमय मूल्य (Value in Exchange) तथा प्रयोग मूल्य (Value in Use) के अन्तर को भी स्पष्ट करता है। जिन वस्तुओं की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में होती है उनकी सीमान्त उपयोगिता उतनी ही कम होती है। इसलिए ऐसी वस्तुओं का विनिमय मूल्य कम अथवा शून्य होता है। उदाहरण के लिए, पानी, हवा व सूर्य की रोशनी आदि—यद्यपि इन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अर्थात् कुल उपयोगिता सर्वाधिक होती है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक महत्त्व है और नियम का क्षेत्र भी काफी व्यापक है। इस सम्बन्ध में **कैरेनक्रास** का कहना है कि "यह नियम केवल रोटी, मक्खन, रेल यात्रा व व्यक्ति की हैट आदि वस्तुओं पर ही क्रियाशील नहीं होता, बल्कि अर्थशास्त्रियों के व्याख्यानों, राजनीतिज्ञों के भाषणों तथा जासूसी कहानियों के अनेक संदिग्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी समान रूप से सत्य उतरता है।" इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सर्वव्यापक व सार्वभौमिक सत्य को लिये हुए है।

**प्र.9. माँग की लोच की माप की विभिन्न विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।**
**Explain in detail the various methods of measurement of elasticity of demand.**

**उत्तर**

## माँग की लोच की माप
## (Measurement of Elasticity of Demand)

माँग की लोच की व्याख्या में हमने केवल इस बात की जानकारी दी है कि कीमत अथवा आय में परिवर्तन के कारण माँग में कैसा परिवर्तन होता है, परन्तु यह नहीं बताया है कि माँग की मात्रा में कितना परिवर्तन होगा। अत: इस बात की जानकारी के लिए हम माँग की लोच के माप का अध्ययन करेंगे।

**माँग की कीमत लोच को मापने की विधियाँ** (Methods of measuring Price Elasticity of Demand)—प्रमुख विधियाँ निम्न हैं—

1. **आनुपातिक या प्रतिशत विधि** (Proportionate or Percentage Method)—इस विधि को प्रतिशत विधि भी कहा जाता है। इस विधि के अन्तर्गत वस्तु की माँग के आनुपातिक परिवर्तन को उसकी कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से विभाजित किया जाता है। आनुपातिक परिवर्तनों को 100 से गुणा करके उनका प्रतिशत निकाला जा सकता है लेकिन अंश (Numerator) तथा हर (Denominator) दोनों से गुणा होने के कारण स्थिति आनुपातिक ही रह जाती है। अत: आनुपातिक व प्रतिशत विधि एक ही है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग **प्रो० फ्लक्स** (Prof. Flux) ने किया था। इस विधि के अन्तर्गत माँग की कीमत लोच को ज्ञात करने का निम्न सूत्र होगा—

$$ed = (-)\frac{\text{माँग में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन}}$$

TOUCH 'n' PASS

$$= (-) \frac{\text{माँग में परिवर्तन / प्रारम्भिक माँग}}{\text{कीमत में परिवर्तन / प्रारम्भिक कीमत}}$$

$$= (-) \frac{(Q_1 - Q)/Q}{(P_1 - P)/P} = (-) \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P} = (-) \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

या $$ed = (-) \frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

यहाँ $Q$ = प्रारम्भिक माँग, $Q_1$ = नई माँग, $\Delta Q$ = माँग में परिवर्तन, $P$ = प्रारम्भिक कीमत, $P_1$ = नई कीमत, $\Delta P$ = कीमत में परिवर्तन, (–) चिह्न माँग तथा कीमत के ऋणात्मक सम्बन्ध को प्रकट करता है।

उपर्युक्त सूत्र से यह ज्ञात किया जा सकता है कि माँग की लोच इकाई के बराबर है अथवा इकाई से अधिक या इकाई से कम है।

2. **कुल व्यय विधि** (Total Expenditure Method)—इस विधि का प्रयोग **मार्शल** (Marshall) ने किया था। यहाँ माँग की लोच की तीन व्यावहारिक श्रेणियों को लिया गया है—

(i) **अधिक लोचपूर्ण माँग** (Highly elastic demand)—जब किसी वस्तु पर उपभोक्ता द्वारा किया जाने वाला कुल व्यय कीमत परिवर्तन के विपरीत बदलता है तो वह वस्तु अधिक लोचपूर्ण माँग वाली होगी। दूसरे शब्दों में, जब कीमत में कमी से कुल व्यय बढ़े तथा कीमत के बढ़ने से कुल व्यय घटे तो $ed > 1$। उदाहरण के लिए—

| कीमत | माँग | कुल व्यय | माँग की लोच |
|---|---|---|---|
| 6 | 1 | 6 | $ed > 1$ |
| 5 | 2 | 10 | |

उपर्युक्त तालिका में कीमत के ₹6 से घटकर ₹5 हो जाने पर कुल व्यय ₹6 से बढ़कर ₹10 हो जाता है। इसी उदाहरण को उलट कर देखें तो ₹5 कीमत पर कुल व्यय ₹10 है, जबकि कीमत के बढ़कर ₹6 हो जाने पर यह घटकर ₹6 रह जाता है।

(ii) **इकाई लोच माँग** (Unitary elastic demand)—जब किसी वस्तु की कीमत में कमी या वृद्धि कुल व्यय पर कोई प्रभाव न डाले तो उस वस्तु की माँग इकाई लोच वाली होगी ($ed = 1$)। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि कुल व्यय तभी स्थिर होगा, जबकि वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन कीमत के परिवर्तन के अनुपात में और विपरीत दिशा में हो। उदाहरण के लिए—

| कीमत | माँग | कुल व्यय | माँग की लोच |
|---|---|---|---|
| 4 | 3 | 12 | $ed = 1$ |
| 3 | 4 | 12 | |

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कीमत के घटने को देखें या उलट कर पढ़ें तो उपभोक्ता के द्वारा किए जाने वाले कुल व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(iii) **कम लोचपूर्ण माँग** (Less elastic demand)—जब किसी वस्तु पर किया जाने वाला व्यय उस वस्तु के कीमत के परिवर्तन की दिशा में ही बदले तब वस्तु कम लोचपूर्ण माँग होगी ($ed < 1$)। दूसरे शब्दों में, जब वस्तु की कीमत घटने से उपभोक्ता का उस वस्तु पर व्यय भी कम हो जाए तथा कीमत बढ़ने पर कुल व्यय भी बढ़ जाए तो $ed < 1$। इस स्थिति को समझने के लिए निम्न उदाहरण को समझना आवश्यक है—

| कीमत | माँग | कुल व्यय | माँग की लोच |
|---|---|---|---|
| 2 | 5 | 10 | $ed < 1$ |
| 1 | 6 | 6 | |

उपर्युक्त उदाहरण में कीमत ₹2 से घटकर ₹1 हो जाने पर कुल व्यय भी ₹10 से घटकर ₹6 रह गया है। इसी प्रकार उदाहरण को उलटने से कीमत के बढ़ने से कुल व्यय भी बढ़ जाता है।

TOUCH 'n PASS

उपर्युक्त तीनों लोचों के उदाहरणों को संयुक्त रूप से देखने से निम्नांकित तालिका तथा चित्र 1 की रचना की जा सकती है—

**तालिका**
**संयुक्त उदाहरण**

| कीमत | माँग | कुल व्यय | माँग की लोच |
|---|---|---|---|
| 6 | 1 | 6 | $ed > 1$ |
| 5 | 2 | 10 | |
| 4 | 3 | 12 | $ed = 1$ |
| 3 | 4 | 12 | |
| 2 | 5 | 10 | $ed < 1$ |
| 1 | 6 | 6 | |

तालिका से स्पष्ट है कि जब कीमत घटकर ₹4 तक पहुँच जाती है तब कीमत और कुल व्यय के बीच विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है जो $ed > 1$ का प्रतीक है। कीमत में ₹4 व ₹3 के बीच कुल व्यय स्थिर रहने के कारण $ed = 1$। लेकिन कीमत ₹3 से घटकर ₹1 हो जाने तक कुल व्यय भी घट रहा है इसलिए $ed < 1$। चित्र 1 भी इसी बात को स्पष्ट करता है। जब कीमत $OP$ से घटकर $OR$ हो जाती है, तो कुल व्यय $PA$ से बढ़कर $RB$ हो जाता है अत: $ed > 1$ है। कीमत के $R$ और $S$ के बीच कुल व्यय $RB$ और $SC$ के रूप में समान रहता है अत: $ed = 1$। बाद में $ST$ कीमत के मध्य कुल व्यय घटने लगता है। इसलिए इन दोनों बिन्दुओं के बीच $ed < 1$ लिखी गयी है।

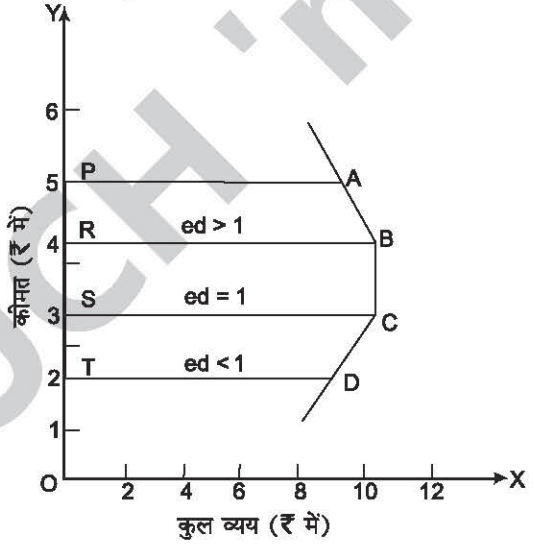


चित्र 1

3. **बिन्दु विधि** (Point method)—इस विधि का अर्थ यह है कि यदि कोई माँग रेखा rectangular hyperbola आकार की नहीं है तो उसके हर बिन्दु पर माँग की लोच की मात्रा अलग-अलग होगी। इसको रेखागणितीय ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है इसलिए यह विधि रेखागणितीय विधि (Geometrical method) भी कहलाती है। इस विधि को विकसित करने का श्रेय बोल्डिंग (Boulding) को है।

इस विधि के अन्तर्गत माँग की लोच को मापने के लिए माँग रेखा या माँग रेखा वक्राकार होने पर उसकी स्पर्श रेखा के नीचे के भाग को ऊपर के भाग से विभाजित किया जाता है अर्थात्

$$ed = \frac{\text{Lower sector of demand curve}}{\text{Upper sector of demand curve}}$$

TOUCH 'n PASS

चित्र 2 के माध्यम से बिन्दु विधि का सूत्र किस प्रकार प्राप्त किया गया है उसको निम्न प्रकार समझते हैं—

चित्र में $AB$ रेखा $DD$ माँग वक्र को $P$ बिन्दु पर स्पर्श करती है। यदि $P$ बिन्दु पर माँग की लोच ज्ञात करनी है तो $\delta D = NQ$; $\delta P = ST$, $P_0 = OS$ तथा $D_0 = ON$, इस प्रकार

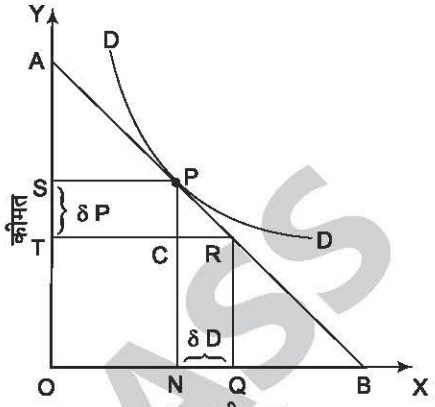

चित्र 2

$$ed = \frac{\delta D}{\delta P} \times \frac{P_0}{D_0}$$

या $$\frac{NQ}{PC} \times \frac{OS}{ON} \qquad (\because NQ = CR; ST = PC)$$

या $$\frac{CR}{CA} + \frac{OS}{ON}$$

या $$\frac{CR}{PC} \times \frac{PN}{SP} \qquad (\because OS = PN; ON = SP)$$

अब $\Delta PCR$ तथा $\Delta PNB$ समरूप त्रिभुज हैं; अत: इनकी भुजाओं के अनुपात भी समान होंगे। इसलिए $PC$ के स्थान पर $ON$ तथा $CR$ के स्थान पर $NB$ को लिखा जा सकता है। इस प्रकार,

$$\frac{NB}{PN} \times \frac{PN}{SP} \text{ या } \frac{NB}{SP}$$

अब $\Delta ASP$ तथा $\Delta PNB$ भी समरूप त्रिभुज हैं; इसलिए इनकी भुजाओं के अनुपात भी समान होंगे। परिणामस्वरूप $NB$ के स्थान पर $PB$ तथा $SP$ के स्थान पर $PA$ को लिखा जा सकता है—

अर्थात् $$\frac{BP}{PA}$$

ये दोनों हिस्से माँग रेखा $AB$ के ऊपर व नीचे के भाग हैं, इसलिए

$$ed = \frac{\text{Lower sector of demand curve}}{\text{Upper sector of demand curve}}$$

**प्र.10. माँग की कीमत लोच की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**

**Explain in detail the price elasticity of demand.**

**उत्तर**

## माँग की कीमत लोच या मूल्य सापेक्षता
## (Price Elasticity of Demand)

माँग की कीमत लोच की कुछ मुख्य अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **प्रो० मार्शल** (Prof. Marshall) के अनुसार, "किसी बाजार में माँग की लोच कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर है कि मूल्य में एक निश्चित कमी होने से माँग अधिक बढ़ती है या कम, और मूल्य में एक निश्चित वृद्धि होने से माँग कम घटती है या अधिक।"
2. **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. Joan Robinson) के अनुसार, "माँग की लोच, कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के परिणामस्वरूप खरीदी गयी मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की उपर्युक्त परिभाषा को हम निम्न सूत्र से व्यक्त कर सकते हैं—

$$ed = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$, जहाँ $ed$ का अभिप्राय माँग की कीमत लोच से है।

TOUCH 'n PASS

## माँग की कीमत लोच की श्रेणियाँ (Degrees of Price Elasticity of Demand)

माँग की लोच की परिभाषा व अर्थ जानने के पश्चात् यह बताना आवश्यक है कि कीमत के परिवर्तन का प्रभाव सभी वस्तुओं पर समान रूप में नहीं पड़ता है। कीमत के परिवर्तन से कुछ वस्तुएँ कम प्रभावित होती हैं, तो कुछ अधिक इसलिए उनकी माँग भी उसी के अनुरूप कम या अधिक होगी, इस बात को ध्यान में रखते हुए हम माँग की लोच को निम्न पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

1. पूर्णतया बेलोचपूर्ण माँग ($ed = 0$), 2. कम लोचपूर्ण माँग ($ed < 1$), 3. इकाई लोच वाली माँग ($ed = 1$), 4. अधिक लोचपूर्ण माँग ($ed > 1$) तथा 5. पूर्णतया लोचपूर्ण माँग ($ed = \infty$)।

1. **पूर्णतः बेलोचपूर्ण माँग या पूर्णतः मूल्य निरपेक्ष माँग** (Perfectly inelastic demand)—इस प्रकार की माँग की लोच उन वस्तुओं की होती है, जिनमें कीमत के परिवर्तन का माँग पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा कुछ व्यक्तियों के लिए जीवनदायक अनिवार्यताओं (Necessities to life) की दशा में हो सकता है। इस प्रकार की वस्तुओं की कीमत में परिवर्तन तो होगा (उदाहरण के लिए 10%) लेकिन माँग में परिवर्तन नहीं होगा (0%)। इस प्रकार की माँग की लोच शून्य ($ed = 0$) होगी। इस प्रकार की माँग की लोच को समझाने के लिए दिए गए चित्र को लिया जा सकता है। चित्र 1 से स्पष्ट है कि जब वस्तु की कीमत $OP_2$ है, तो वस्तु की माँग $P_2Q$ या ($ON$) है। कीमत के बढ़कर $OP_1$ हो जाने पर भी वस्तु की माँग $P_1Q_1$ पहले जितनी ($P_2Q$) ही रहती है। अतः वस्तु की माँग में कोई कीमत लोच नहीं है। चित्र में $DN$ माँग रेखा $Y$-अक्षांश के समानान्तर बनती है।

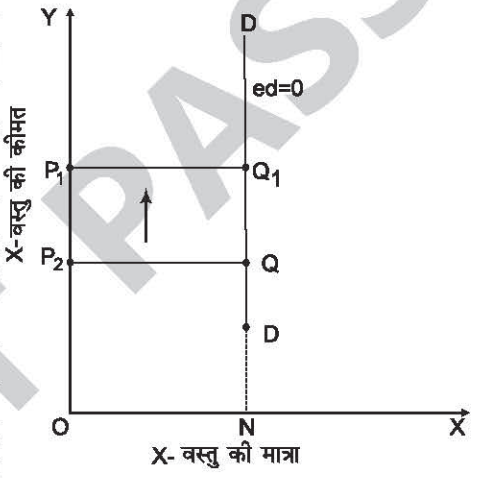

चित्र 1

2. **कम लोचपूर्ण माँग या इकाई से कम मूल्य सापेक्षिक माँग** (Less elastic or less than unitary elastic demand)—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर उस वस्तु की माँग में परिवर्तन तो हो, लेकिन वह कीमत के परिवर्तन से कम होता है। ऐसा साधारणतया आवश्यकताओं (Necessities) (जैसे—माचिस, गेहूँ आदि) की दशा में देखा जा सकता है। इनका गणितीय परिणाम इकाई से कम (<1) होगा। जैसे गेहूँ की कीमत 20% बढ़ने और घटने पर इसकी माँग केवल 10% घटे या बढ़े तो लोच इकाई से कम ($e_d < 1$) होगी। इस प्रकार की माँग की लोच के लिए चित्र 2 बनाया जा सकता है।

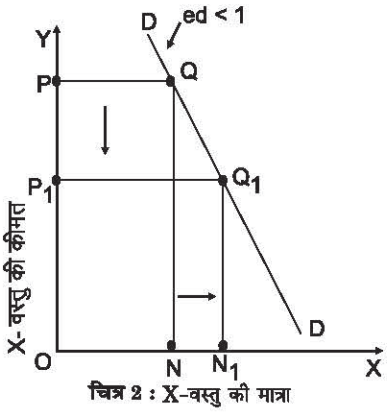

चित्र 2 : X-वस्तु की मात्रा

चित्र से स्पष्ट है कि जब वस्तु की कीमत $OP$ से घटकर $OP_1$ या 20% घट जाती है तो उस वस्तु की माँग $ON$ से बढ़कर $ON_1$ या 10% बढ़ जाती है। अतः $DD$ रेखा के $QQ_1$ बिन्दुओं के बीच माँग की लोच इकाई से कम है। इसी

TOUCH 'n' PASS

प्रकार कीमत के बढ़कर $P_1P$ हो जाने पर माँग घटकर $ON$ रह जाती है जो बढ़ी हुई कीमत की तुलना में बहुत कम घटती है।

3. **इकाई लोच वाली माँग या इकाई मूल्य सापेक्ष माँग** (Unitary elastic demand)—जब किसी वस्तु की माँग में होने वाला परिवर्तन कीमत के आनुपातिक परिवर्तन के समान हो तो यह स्थिति इकाई लोच माँग की होगी, क्योंकि इसकी लोच का गणितीय परिणाम इकाई के बराबर ($ed = 1$) होगा। ऐसा आरामदायक वस्तुओं (comforts) में होता है, जैसे यदि किसी व्यक्ति के लिए सेबों की कीमत 10 प्रतिशत कम होने पर सेबों की माँग 10% बढ़ जाये तो माँग की लोच इकाई ($ed = 1$) होगी। इस प्रकार की माँग की लोच को दिखाने वाली माँग की रेखा (rectangular hyperbola) के आकार की होगी, जैसा कि चित्र 3 में स्पष्ट किया गया है। चित्र के अनुसार जब वस्तु की कीमत $PR$ घट जाती है और उसकी माँग उसी अनुपात में अर्थात् $NQ$ बढ़ जाती है तो वस्तु की माँग की लोच इकाई के बराबर होगी।

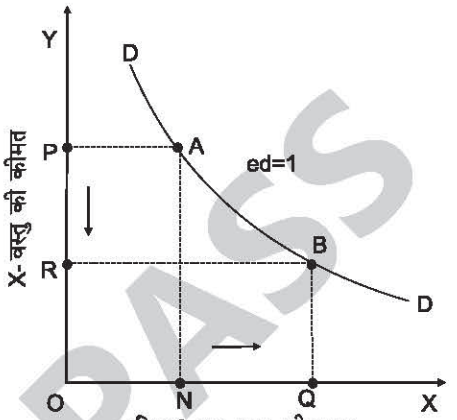

चित्र 3 : X- वस्तु की मात्रा

4. **अधिक लोचपूर्ण माँग या इकाई से अधिक मूल्य सापेक्ष माँग** (Highly elastic or more than unitary elastic demand)—इस प्रकार की माँग की लोच विलासिता की वस्तुओं (Luxuries) में देखी जा सकती है। जब किसी वस्तु की माँग उसकी कीमत से अधिक लोचपूर्ण होती है तब उसे अधिक लोचपूर्ण माँग कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु की कीमत 10% कम होने पर उस वस्तु की माँग में 20% की बढ़ोत्तरी हो जाय तो माँग की लोच इकाई से अधिक ($ed > 1$) होगी। इस स्थिति को चित्र 4 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चित्र में जब वस्तु की कीमत $OP$ से घटकर $OP_1$ अर्थात् 10% घट जाती है, तो वस्तु की माँग $ON$ से बढ़कर $ON_1$ अर्थात् 20% अधिक हो जाती है।

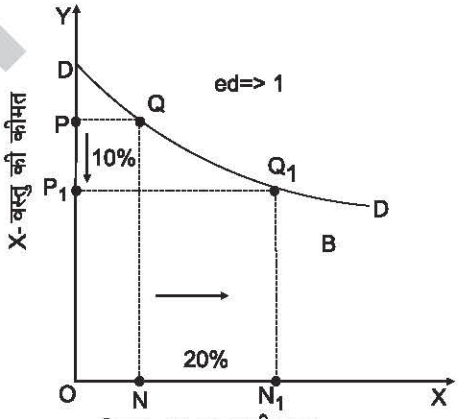

चित्र 4 : X- वस्तु की मात्रा

5. **पूर्णतः लोचपूर्ण माँग या पूर्णतः मूल्य सापेक्ष माँग** (Perfectly elastic demand)—जब किसी वस्तु की कीमत में इतना सूक्ष्म परिवर्तन हो कि उसे संख्या द्वारा प्रदर्शित न किया जा सके लेकिन माँग में स्पष्ट अन्तर आ जाय, तो ऐसी वस्तु पूर्णतः लोचपूर्ण माँग वाली वस्तु कहलायेगी। ऐसी माँग रेखा काल्पनिक है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु की कीमत में अति सूक्ष्म (जिसको शून्य माना जा रहा है) कमी हुई है और उसकी माँग 10% बढ़ गई है, तो माँग की लोच का गणितीय परिणाम अनन्त (infinity) होगा अर्थात् ($ed = \infty$)। इस प्रकार की स्थिति को चित्र 5 की सहायता से जाना जा सकता है। चित्र में माँग रेखा $PD$, $X$-अक्षांश के समानान्तर है जो बताती है कि वस्तु की माँग $NN_1$ के रूप में बदल रही है, वस्तु की कीमत का परिवर्तन इतना सूक्ष्म है कि वह नजर ही नहीं आ रहा है फिर भी माँग रेखा $X$-अक्षांश के समानान्तर बन रही है।

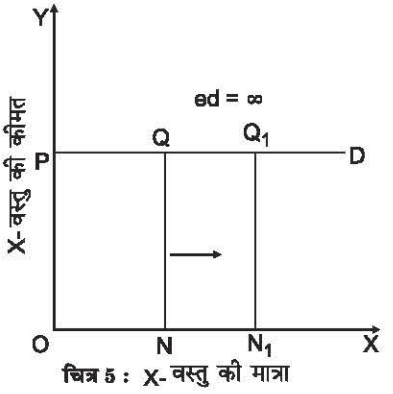

चित्र 5 : X- वस्तु की मात्रा

TOUCH 'n' PASS

**प्र.11. माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the factors affecting the elasticity of demand.**

**उत्तर**

## माँग की लोच को प्रभावित करने वाले तत्त्व
## (Factors Affecting the Elasticity of Demand)

माँग की लोच को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्त्व निम्न हैं—

1. **धन के वितरण का प्रभाव** (Distribution of wealth)—समाज में धन के वितरण की समानता होने पर माँग की लोच लोचदार और असमान वितरण पर बेलोच होती है। कीमत में थोड़ी-सी वृद्धि या कमी धनी वर्ग की माँग पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालती है, जबकि निर्धनों की लोच, सामान्यत: बेलोचदार ही रहती है, क्योंकि वे केवल आवश्यकता की वस्तुएँ ही खरीदते हैं। धन के समान वितरण में लगभग सभी व्यक्तियों की क्रय शक्ति बढ़ती है और कीमतों में वृद्धि या कमी का सब लोगों पर प्रभाव पड़ता है, अत: माँग लोचदार हो जाती है।
2. **संयुक्त माँग** (Joint demand)—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनकी माँग साथ-साथ की जाती है। उदाहरण के लिए, क्रिकेट का बल्ला व उसकी बॉल, मक्खन व डबलरोटी, स्याही व पेन। यदि इन वस्तुओं में से किसी एक वस्तु की कीमत बढ़ती है तो दूसरी वस्तु की माँग बेलोचदार हो जाती है। उदाहरण के लिए, बैट की कीमत तो वही रहती है, परन्तु बॉल की कीमत बढ़ जाय तो ऊँची कीमतों पर भी बॉल को क्रय कर लिया जायेगा। यहाँ बॉल की माँग बेलोच होगी।
3. **वस्तु की कीमत** (Price of Commodity)—वस्तु की कीमत का प्रभाव माँग की लोच पर पड़ता है। इस सम्बन्ध में **प्रो० मार्शल** का कहना है कि "माँग की लोच ऊँची कीमतों के सम्बन्ध में अधिक होती है, मध्य कीमतों के लिए पर्याप्त तथा ज्यों-ज्यों कीमत घटती है त्यों-त्यों माँग की लोच भी घटती है। यदि कीमतें इतनी गिरें कि तृप्ति की सीमा आ जाये, तो लोच धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।"
4. **वस्तु के प्रयोग** (Uses of Commodity)—एक से अनेक प्रयोग वाली वस्तुओं की माँग की लोच लोचदार होती है। उदाहरण के लिए, बिजली का उपयोग अनेक कामों में होता है, यदि बिजली की दरों में वृद्धि होती है तो लोग इसकी माँग कम और दरों में कमी होने पर माँग अधिक करेंगे। यदि बिजली का प्रयोग केवल रोशनी करने के लिए होता, तो मूल्य वृद्धि होने पर भी इसकी माँग में उतनी कमी नहीं की जाती। अत: जिन वस्तुओं के एक से अनेक प्रयोग किये जाते हैं उन वस्तुओं की माँग की लोच लोचदार जबकि एक ही प्रयोग में काम आने वाली वस्तु की माँग की लोच बेलोच होगी।
5. **वस्तु के गुण** (Quality of commodity)—वस्तु के गुणों का प्रभाव माँग की लोच पर पड़ता है। जो वस्तुएँ आवश्यक (necessary) अथवा जीवनरक्षक (life-giving) होती हैं उनकी माँग की लोच बेलोच होती है। आरामदेह (comfortable) वस्तुओं की माँग की लोच औसत दर्जे की होती है, क्योंकि वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन का प्रभाव माँग पर कुछ अधिक पड़ता है। विलासिता (luxuries) की वस्तुओं की माँग की लोच अत्यधिक लोचदार होती है। यदि इन वस्तुओं की कीमतों में थोड़ा भी परिवर्तन होता है, तो वस्तु की माँग में भारी परिवर्तन आ जाता है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि वस्तु की माँग की लोच पर वस्तु के गुणों का प्रभाव पड़ता है।
6. **वस्तु के भावी उपयोग की सम्भावना** (Possibility of Postponment of Consumption)—जिन वस्तुओं का उपभोग भविष्य के लिए टाला जा सकता है उन वस्तुओं की माँग की लोच लोचदार होती है, क्योंकि ये वस्तुएँ उतनी आवश्यक नहीं होती हैं, परन्तु जिन वस्तुओं के उपभोग को भविष्य के लिए नहीं टाला जा सकता है उन वस्तुओं की माँग की लोच बेलोच होती है।
7. **व्यक्ति के स्वभाव का प्रभाव** (Consumer's behaviour)—व्यक्ति के स्वभाव का प्रभाव भी माँग की लोच पर पड़ता है। व्यक्ति जिन वस्तुओं के उपभोग का आदी हो जाता है उसके लिए उन वस्तुओं की माँग की लोच बेलोच होती है और जिन वस्तुओं का उपभोग वह यदा-कदा शौकिया रूप में करता है उन वस्तुओं की माँग लोचदार होती है।
8. **समय का प्रभाव** (Time element)—माँग की लोच पर समय का भी प्रभाव पड़ता है। जब कभी किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन आता है, तो उस वस्तु की माँग पर तत्काल प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि कुछ समय के बाद कीमत के परिवर्तनों का प्रभाव माँग पर पड़ता है। सामान्यतया यह कहा जाता है कि समय जितना ही कम होगा वस्तुओं की माँग कम लोचदार होगी और समय जितना ही अधिक होगा माँग की लोच उतनी ही अधिक लोचदार होगी, क्योंकि लम्बे समय में

TOUCH 'n PASS

उपभोक्ता इस वस्तु के स्थानापन्न वस्तुओं को ढूँढ़ लेता है और इस वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तुओं का उपभोग करने लगता है।

9. **आय-स्तर** (Income level)—आय स्तर के बढ़ने पर माँग की लोच बेलोच व घटने पर लोचदार हो जाती है, उदाहरण के लिए, धनिकों की माँग की लोच बेलोच होती है।

**प्र.12. माँग की लोच का अर्थशास्त्र में क्या महत्त्व है?**
**What is the importance of elasticity of demand in economics?**

**उत्तर**

## माँग की लोच का महत्त्व
## (Importance of the Elasticity of Demand)

माँग की लोच का महत्त्व सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही है। आगे दोनों की व्याख्या दी जा रही है—

I. **सैद्धान्तिक महत्त्व** (Theoretical Importance)—प्राय: यह कहा जाता है कि माँग की लोच 'बहुतायत के बीच निर्धनता' की व्याख्या करती है।

यदि किसी वर्ष अनाज की फसल अच्छी होती है, तो सामान्यतया यह कहा जायेगा कि किसानों को लाभ होगा पर ऐसा होता नहीं है, क्योंकि यदि फसल की माँग लोचदार है तो उसकी कीमत में कमी आ जायेगी और किसानों को अच्छी कीमतें नहीं मिलेंगी। कभी-कभी तो किसानों को उत्पादन लागत के बराबर भी आय प्राप्त नहीं होती। इसके विपरीत, यदि किसी वर्ष फसल खराब होती है, परन्तु उस फसल की माँग बेलोच होती है, तो उत्पादकों को अच्छी आमदनी होगी, क्योंकि वे मूल्यों में पर्याप्त वृद्धि कर सकते हैं।

II. **व्यावहारिक महत्त्व** (Practical importance)—माँग की लोच का व्यावहारिक महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. **वित्त मन्त्री के लिए महत्त्व** (Importance to Finance Minister)—एक वित्त मन्त्री की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसे, उसके अनुमानों के अनुसार आय प्राप्त होती है अथवा नहीं। अत: एक वित्त मन्त्री करारोपण करते समय हमेशा माँग की लोच को ध्यान में रखता है, क्योंकि ऐसा करने पर ही वह अपने उद्देश्य में सफल हो सकता है। इसलिए एक वित्त मन्त्री हमेशा बेलोच माँग वाली वस्तुओं पर कर लगाकर अधिक आय प्राप्त करता है, जबकि लोचदार वस्तुओं पर कर की दरें कम रखी जाती हैं।

2. **मूल्य निर्धारण में महत्त्व** (Importance in Theory of Value)—मूल्य निर्धारण में भी माँग की लोच का महत्त्वपूर्ण स्थान है, उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु की माँग की लोच बेलोच हुई, तो पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी वस्तु के मूल्य को लगभग उसी अनुपात में बढ़ा या घटा सकती है, यदि माँग की लोच लोचदार हुई तो पूर्ति के परिवर्तन का प्रभाव कम पड़ेगा और यदि माँग वस्तु की मात्रा की लोच अधिक लोचदार हुई तो, मूल्य पर प्रभाव और भी कम पड़ेगा। इस स्थिति को दिए गए चित्र 1 से स्पष्ट किया जा सकता है।

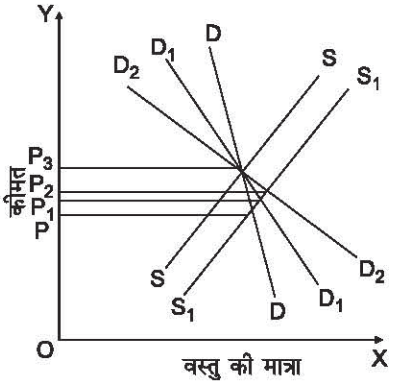

चित्र 1

चित्र में माँग रेखाएँ अलग-अलग माँग की लोच को बताती हैं। $SS$ प्रारम्भिक पूर्ति तथा $S_1S_1$ बढ़ी हुई पूर्ति रेखाएँ हैं। चित्र में $DD$ बेलोच, $D_1D_1$ लोचदार तथा $D_1D_2$ अधिक लोचदार माँग को बताती हैं। प्रारम्भ में वस्तु का मूल्य $OP_3$ तथा पूर्ति में वृद्धि होने पर यदि माँग $DD$ (बेलोच) है तो मूल्य गिरकर $OP$ हो जाता है। वस्तु की माँग लोचदार ($D_1D_1$) होने पर वस्तु का मूल्य प्रारम्भिक मूल्य $OP_3$ से कम $OP_1$ हो जाता है, परन्तु बेलोच माँग की स्थिति के $OP$ मूल्य से अधिक है। जब माँग की लोच लोचदार ($D_2D_2$) होती होती है तब मूल्य गिरकर $OP_2$ रह जाता है जो प्रारम्भिक मूल्य से बहुत कम गिरा है।

3. **एकाधिकारी के लिए महत्त्व** (Importance for Monopolist)—एकाधिकारी कीमत के निर्धारण में माँग की लोच को ध्यान में रखता है, क्योंकि ऐसा करने पर उसका लाभ बढ़ता है। प्राय: जिन वस्तुओं की लोच बेलोच होती है वह उन वस्तुओं की कीमत ऊँची रखता है, क्योंकि कीमत में वृद्धि होने पर भी माँग में उतनी कमी नहीं होती है और एकाधिकारी को असामान्य लाभ मिलता है। यदि वस्तुओं की माँग लोचदार है, तो कीमत में वृद्धि सम्भव नहीं होगी।

TOUCH 'n' PASS

4. **कीमत विभेद में महत्त्व** (Importance in Price Discrimination)—कीमत विभेद करते समय भी माँग की लोच को ध्यान में रखा जाता है। एकाधिकारी का कीमत-विभेद तभी सफल होता है, जबकि उसे क्रेताओं व बाजारों की माँग की लोच की जानकारी हो। वह उन बाजारों में वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचेगा जहाँ माँग की लोच बेलोच होती है और उन बाजारों में सस्ती बेचता है जहाँ माँग की लोच लोचदार होती है।
5. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्त्व** (Importance in International Trade)—माँग की लोच का महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी है। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की माँग की लोच बेलोच होती है, तो विदेशों में इन वस्तुओं को ऊँची कीमतों में बेचा जायेगा।

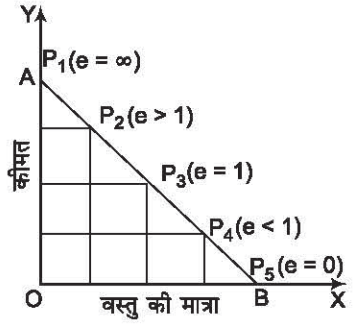

चित्र 2

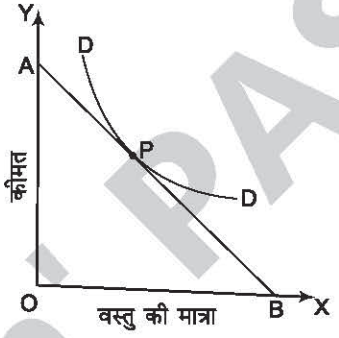

चित्र 3

❑

TOUCH 'n' PASS

# UNIT-II

# लागत का सिद्धान्त एवं उत्पादन फलन
# Theory of Cost and Production Function

## खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. मौद्रिक लागत के अन्तर्गत कितने प्रकार की लागत को सम्मिलित किया जाता है?**
**How many types of cost are included under money cost?**

**उत्तर** मौद्रिक लागत के अन्तर्गत तीन प्रकार की लागतों को सम्मिलित किया जाता है—

1. स्पष्ट लागतें (Explicit costs)
2. सन्निहित लागतें (Implicit costs) एवं
3. सामान्य लाभ (Normal profit)।

**प्र.2. वास्तविक लागत का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of real cost?**

**उत्तर** मार्शल के अनुसार, एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा किया गया प्रयत्न एवं त्याग (efforts and sacrifices) उत्पादन की वास्तविक लागत है।

**प्र.3. अवसर लागत से आपका क्या तात्पर्य है?**
**What do you mean by opportunity cost?**

**उत्तर** बेन्हम के शब्दों में, "किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन उन्हीं उत्पत्ति साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।"

**प्र.4. लागत व्यवहार के किन्हीं चार निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।**
**Mention any four determinants of cost behaviour.**

**उत्तर** लागत व्यवहार के निर्धारक तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. प्लाण्ट का आकार
2. उत्पादन की दर
3. उत्पादन साधनों की कीमतें एवं
4. कुशल प्रबन्धक एवं कर्मचारी।

**प्र.5. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र किसको व्यक्त करता है?**
**What does the long run average cost curve represent?**

**उत्तर** दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है।

**प्र.6. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की कोई दो विशेषताओं को लिखिए।**
**Write any two characteristics of long run average cost curve.**

**उत्तर** दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की विशेषताएँ—

1. LAC सदैव SAC की तुलना में कम होती है। यही कारण है कि सभी SAC वक्र LAC से ऊपर स्थित होते हैं।
2. LAC रेखा SAC वक्रों को केवल स्पर्श करती है, काटती नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.7. उत्पादन फलन की परिभाषा लिखिए।**
**Write the definition of production function.**

**उत्तर** प्रो० लेफ्टविच के शब्दों में, "उत्पादन फलन का अभिप्राय फर्म के उचित साधनों और प्रति समय इकाई वस्तुओं और सेवाओं के बीच का भौतिक सम्बन्ध है जबकि मूल्यों को छोड़ दिया जाये।"

**प्र.8. उत्पादन फलन की किन्हीं दो मान्यताओं को लिखिए।**
**Write any two assumptions of production functions.**

**उत्तर** उत्पादन फलन की मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. उत्पादन फलन का सम्बन्ध किसी निश्चित समयावधि से होता है।
2. दीर्घकाल में उत्पादन फलन के सभी उपादान परिवर्तनशील होते हैं।

**प्र.9. उत्पादन फलन की कोई एक विशेषता बताइए।**
**State any one characteristic of production function.**

**उत्तर** "उत्पादन फलन तकनीक अथवा अभियान्त्रिकी सारांश प्रस्तुत करता है।"

**प्र.10. उत्पत्ति के कितने नियम हैं?**
**How many laws of returns are there?**

**उत्तर** उत्पत्ति के तीन नियम होते हैं—

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम
2. उत्पत्ति समता नियम एवं
3. उत्पत्ति ह्रास नियम।

**प्र.11. उत्पत्ति वृद्धि नियम क्या है?**
**What is law of increasing returns.**

**उत्तर** जब उत्पत्ति के अधिकांश साधनों को स्थिर रखकर एक साधन की मात्रा को परिवर्तित किया जाता है तब यदि परिवर्तनशील साधन में वृद्धि करने के अनुपात में वृद्धि होती है तब इसे उत्पत्ति वृद्धि नियम कहा जाता है।

**प्र.12. औसत उत्पादकता को स्पष्ट कीजिए।**
**Explain average productivity.**

**उत्तर** औसत उत्पादकता विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादन-साधन अनुपात है।

दूसरे शब्दों में, $$\text{औसत उत्पादकता } (AP) = \frac{\text{कुल उत्पादकता } (TP)}{\text{कुल परिवर्तनशील साधन } (TVF)}$$

**प्र.13. उत्पत्ति ह्रास नियम के दो महत्त्व लिखिए।**
**Write two importance of law of diminishing returns.**

**उत्तर** उत्पत्ति ह्रास नियम के महत्त्व—

1. रिकार्डों के लागत सिद्धान्त का आधार।
2. माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार।

**प्र.14. उत्पादक के अधिकतम लाभ के बिन्दु का निर्धारण किन तत्त्वों पर निर्भर करता है?**
**On what factors determine the point of maximum profit of the producer?**

**उत्तर** उत्पादक के अधिकतम लाभ के बिन्दु का निर्धारण दो तत्त्वों पर निर्भर करता है—

1. साधनों की भौतिक उत्पादकता जिसको समोत्पाद वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, तथा
2. साधनों की कीमतें जिनका प्रदर्शन सम-लागत रेखा अथवा साधन कीमत रेखा द्वारा किया जाता है।

**प्र.15. पैमाने के प्रतिफल की कितनी अवस्थाएँ होती हैं?**
**How many stages of returns to scale are there?**

**उत्तर** पैमाने के प्रतिफल की तीन अवस्थाएँ होती हैं—

1. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल

TOUCH 'n' PASS

2. पैमाने के स्थिर प्रतिफल एवं
3. पैमाने के घटते प्रतिफल।

**प्र.16. पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के लागू होने के कारणों के किन्हीं दो तत्त्वों के नाम लिखिए।**
**Name any two elements that cause the application of increasing returns to scale.**

**उत्तर** पैमाने के बढ़ते प्रतिफल के लागू होने के कारण के तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. साधनों की अविभाज्यताएँ एवं
2. श्रम विभाजन।

## खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र को स्पष्ट कीजिए।**
**Explain long-run marginal cost curve.**

**उत्तर**

### दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र
### (Long-Run Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है। जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है। ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य भी उपस्थित होता है। दिए गए चित्र में इस सम्बन्ध को दर्शाया गया है। जहाँ कहीं भी *SAC* वक्र *LAC* वक्र को स्पर्श करता है वहाँ उससे सम्बन्धित क्रमशः *SMC* तथा *LMC* परस्पर बराबर होते हैं। जब तक *LAC* वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक *SMC* तथा *LMC* की यह समानता *SAC* तथा *LAC* वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है (देखें बिन्दु *K* तथा *T*)। **प्लाण्ट** के अनुकूलतम आकार (Optimum Scale of Plant) पर, जहाँ *LAC* तथा *SAC* दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहाँ *LMC* तथा *SMC* परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि $= LAC = SAC = LMC = SMC$ (देखें बिन्दु *Q*)। प्लाण्ट इस न्यूनतम आकार बिन्दु के बाद *SMC* तथा *LMC* की समानता का बिन्दु *SAC* और *LAC* के स्पर्श बिन्दु से ऊपर स्थित होता है (देखें बिन्दु *R* तथा *S*)। इस प्रकार *LAC* तथा *LMC* में वही सम्बन्ध पाया जाता है जो *SAC* तथा *SMC* में अर्थात्,

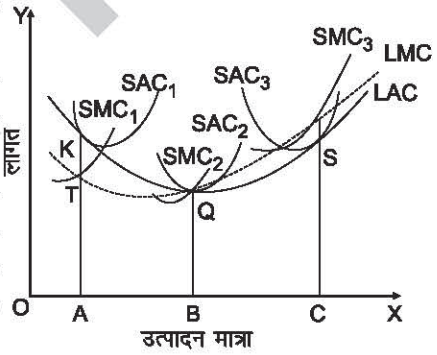

चित्र : दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति

1. यदि $LAC > LMC$ तब *LAC* नीचे गिरेगा।
2. यदि $LAC = LMC$ तब *LAC* स्थिर रहेगा। अर्थात्, *LMC* वक्र *LAC* वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है।
3. यदि $LMC > LAC$ तब *LAC* ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होगा।

**प्र.2. अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्रों के बीच सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए।**
**Explain the relationship between short-run and long-run average cost curves.**

**उत्तर**

### अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन औसत लागत वक्रों में सम्बन्ध
### (Relation between Short and Long Run Average Cost Curves)

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन औसत लागत वक्रों के सम्बन्ध को चित्र की सहायता से समझाया जा सकता है। इस चित्र से निम्न बातों का पता चलता है—

1. *SAC* का सम्बन्ध केवल एक प्लाण्ट की कीमत से है, जबकि *LAC* बहुत-से प्लाण्टों की *SAC*s के आधार पर बनाया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

2. यद्यपि दोनों का आकार $U$–अक्षर का होता है लेकिन $LAC$, $SAC$ की तुलना में चपटा (flatter) होता है। दूसरे शब्दों में, दीर्घकालीन लागतों में होने वाला परिवर्तन अल्पकालीन लागतों की तुलना में कम दर से घटते-बढ़ते है। दीर्घकालीन औसत लागत उत्पादन की बचतों व अबचतों के कारण तेजी से बढ़ती-घटती नहीं है, लेकिन $SAC$ में $AFC$ तथा $AVC$ का प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भ में दोनों घटते हैं और $AFC$ बड़ी तेजी से जिसमें $SAC$ बहुत तेजी से घटता है। बाद में $AFC$ के घटने की गति बहुत धीमी हो जाती है लेकिन $ABF$ बहुत तेजी से बढ़ता है। परिणाम यह होता है कि $SAC$ तेजी से बढ़ जाता है।

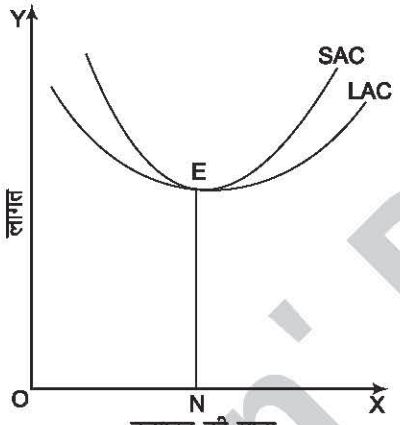


चित्र

3. $LAC$, $SAC$ वक्र को स्पर्श करता है इसलिए $LAC$ कभी भी $SAC$ से अधिक नहीं हो सकता है।
4. $LAC$, $SAC$ के निम्न बिन्दु पर स्पर्श करता है। चित्र में इसे $E$ बिन्दु से दिखाया गया है।

**प्र.3. लागत व्यवहार के निर्धारक तत्त्वों का उल्लेख कीजिए एवं लागत अवधारणा के व्यावसायिक उपयोग भी लिखिए।**
**State the determinants of cost behaviour and also write the business importance of cost concepts.**

**उत्तर**

## लागत व्यवहार के निर्धारक तत्त्व
## (Determinants of Cost Behaviour)

एक फर्म की लागत प्रवृत्ति निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करती है—

1. **प्लाण्ट का आकार** (Size of the Plant)—प्लाण्ट का आकार उत्पादन को निर्धारित करता है। प्लाण्ट का आकार बड़ा होने पर अनेक प्रकार की आन्तरिक एवं बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं जिनके कारण उत्पादन की औसत लागत घटती जाती है किन्तु जब प्लाण्ट का आकार बहुत बड़ा हो जाता है एवं उसकी संचालन व्यवस्था ठीक ढंग से नहीं हो पाती तब प्रबन्धकीय अमितव्ययिताओं के कारण लागतें बढ़ने लगती हैं।
2. **उत्पादन तकनीक** (Technique of Production)—उत्पादन तकनीक लागतों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सामान्यतया आधुनिक उत्पादन तकनीक को अपनाने से स्थिर साधनों की लागतें बहुत ऊँची होती हैं किन्तु अधिक उत्पादन होने पर प्रति इकाई लागत घटती जाती है।
3. **उत्पादन की दर** (Rate of Production)—जब तक प्लाण्ट की क्षमता का पूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता तब तक औसत लागत ऊँची होती है किन्तु जैसे-जैसे प्लाण्ट की क्षमता का उपयोग किया जाता है औसत उत्पादन लागत घटती जाती है और यदि अनुकूलतम क्षमता बिन्दु के बाद भी प्लाण्ट का प्रयोग जारी रहता है तब औसत लागतें पुन: बढ़ने लगती हैं।
4. **उत्पादन साधनों की कीमतें** (Prices of Inputs)—उत्पादन साधनों की कीमत लागत को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण घटक है। उत्पत्ति के साधनों की कीमत में वृद्धि उत्पादन लागत को बढ़ाती है तथा इसके विपरीत साधनों की कीमत में कमी लागत पक्ष को घटाती है।

TOUCH 'n' PASS

5. **उत्पादन का स्थायित्व** (Stability of Output)—उत्पादन प्रक्रिया का निरन्तर जारी रहना लागत के दृष्टिकोण से फर्म के लिए हितकारी है। यदि उत्पादन प्रक्रिया अनेक आकस्मिक बाधाओं; जैसे—हड़ताल, तालाबन्दी आदि जैसी बाधाओं से प्रभावित होती है तब औसत लागत में वृद्धि हो जाती है।
6. **कुशल प्रबन्धक एवं कर्मचारी** (Efficiency of Manager and Employees)—फर्म के प्रबन्धक एवं कर्मचारियों की कार्यकुशलता प्रति इकाई लागत को कम करती है। इसके विपरीत प्रबन्धक एवं कर्मचारियों के बीच का द्वेष उत्पादन प्रक्रिया में अनेक प्रकार की बाधाएँ डालकर औसत लागत को अधिक करता है।

## लागत अवधारणा का व्यावसायिक उपयोग
## (Business Importance of Cost Concepts)

लागत अवधारणा का प्रबन्धकीय निर्णय एवं व्यावसायिक मूल्यांकन करने में बहुत अधिक महत्त्व है।

1. फर्म को लाभ और हानि का मूल्यांकन कुल लागत एवं कुल आय के अन्तर के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार लागत अवधारणा फर्म की आय का सही आकलन करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
2. एक फर्म अपनी उत्पादित वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय उस वस्तु के उत्पादन में आई लागत को ध्यान में रखती है। एक फर्म वस्तु की कीमत निर्धारित करते समय व्यय की गयी लागत के ऊपर लाभ की मात्रा अवश्य प्राप्त करना चाहती है ताकि वह उत्पादन क्षेत्र में बनी रह सके। इस प्रकार फर्म का उत्पादन जारी रखने के लिए न्यूनतम आवश्यक कीमत निर्धारण लागत दशाओं के आधार पर किया जाता है।
3. विक्रय की नीति निर्धारित करने में भी लागत दशाओं को ध्यान में रखा जाता है। जिस बाजार में कम लागत पर अधिक विक्रय किया जा सकता है विक्रय की नीति में उस बाजार को वरीयता दी जाती है।
4. लागत विश्लेषण से उत्पादन प्रक्रिया में होने वाले अपव्ययों का मूल्यांकन किया जा सकता है और इस प्रकार उत्पादन लागत को न्यूनतम करके अपव्ययों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।
5. लागत विश्लेषण के आधार पर ही जनोपयोगी सेवाओं; जैसे—रेल का किराया, बस का किराया आदि को निर्धारित किया जाता है।

**प्र.4. उत्पादन फलन से आपका क्या अभिप्राय है?**
**What do you mean by production function?**

**उत्तर**

## उत्पादन फलन का अभिप्राय
## (Meaning of Production Function)

उपादानों (Inputs) एवं उत्पादनों (Outputs) के फलनात्मक सम्बन्ध (Functional Relationship) को उत्पादन फलन कहा जाता है। उत्पादन फलन हमें यह बतलाता है कि समय की एक निश्चित अवधि में उपादानों के परिवर्तन से उत्पादन आकार में किस प्रकार और कितनी मात्रा में परिवर्तन होता है। इस प्रकार उपादानों की मात्रा और उत्पादन की मात्रा के भौतिक सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहा जाता है। उत्पादन फलन केवल भौतिक मात्रात्मक सम्बन्ध पर आधारित है, इसमें मूल्यों का समावेश नहीं होता।

**प्रो० लेफ्टविच** के शब्दों में, "उत्पादन फलन का अभिप्राय फर्म के उचित साधनों और प्रति समय इकाई वस्तुओं और सेवाओं के बीच का भौतिक सम्बन्ध है जबकि मूल्यों को छोड़ दिया जाये।"

गणितीय रूप में, $X = f(A, B, C, D)$

जहाँ $X$ फर्म के उत्पादन तथा $A, B, C$ तथा $D$ विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को बता रहे हैं।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक आर्थिक नहीं वरन् तकनीकी समस्या है। किसी फर्म का उत्पादन फलन उत्पादन तकनीक (Technique of Production) पर आधारित होता है। एक फर्म उस उत्पादन तकनीक का चुनाव करेगी जिसकी सहायता से वह अपने पास उपलब्ध उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण विदोहन (Optimum Utilisation) करते हुए अपने उत्पादन को अधिकतम कर सके। उत्पादन तकनीक का सुधार निश्चित रूप से उत्पादन में वृद्धि करेगा। इस प्रकार सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि "उत्पादन फलन एक ऐसी सारणी है जो दी गयी उत्पादन तकनीक के अन्तर्गत उत्पत्ति के साधनों को एक निश्चित संयोग द्वारा उत्पादित अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करती है।"

उत्पादन फलन में यदि स्थिर तथा दी गयी तकनीक को सम्मिलित कर लिया जाये तब,

TOUCH 'n' PASS

$$X = f[A, B, C, D, T]$$

जहाँ $T$ उपलब्ध तकनीक का सूचक है।

प्रत्येक व्यावसायिक फर्म का अपना एक उत्पादन होता है जो मुख्यत: तकनीकी स्तर एवं प्रबन्धकीय और संगठन योग्यता से निर्धारित होता है। जब किसी फर्म के संगठन एवं तकनीकी स्तर में परिवर्तन होता है तब फर्म के उत्पादन फलन में तदनुसार परिवर्तन हो जाता है।

**प्र.5. उत्पादन फलन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the characteristics of production function.**

**उत्तर**

## उत्पादन फलन की विशेषताएँ
## (Characteristics of Production Function)

1. उत्पादन फलन उत्पत्ति के साधनों एवं उत्पादन के भौतिक मात्रात्मक सम्बन्ध को बताता है। वस्तुत: उत्पादन फलन एक अभियान्त्रिक धारणा (Engineering Concept) है।
2. उत्पादन फलन में उपादानों एवं उत्पादन की कीमतों का कोई समावेश नहीं होता। इस प्रकार उत्पादन फलन उपादानों एवं उत्पादन मूल्यों से पूर्ण स्वतन्त्र होता है।
3. उत्पादन फलन का सम्बन्ध एक समयावधि से होता है। एक समयावधि में एक उत्पादन फलन हो सकता है जो समय की अवधि परिवर्तित होने पर परिवर्तित हो सकता है।
4. उत्पादन फलन स्थिर तकनीकी दशा पर आधारित है। तकनीकी दशाओं के परिवर्तित हो जाने पर उत्पादन फलन भी परिवर्तित हो जाता है तथा फर्म को नवीन उत्पादन फलन प्राप्त होता है।
5. जब फर्म अपने उत्पादन फलन के कुछ उपादानों को स्थिर रखती है तथा कुछ को परिवर्तित करती है तब इसे अल्पकालीन उत्पादन फलन अथवा परिवर्तनशील अनुपात का नियम (Law of Variable Proportions) कहते हैं।
6. फर्म दीर्घकाल में जब सभी उपादानों को परिवर्तित कर लेती है तब ऐसे उत्पादन फलन को दीर्घकालीन उत्पादन फलन अथवा पैमाने के प्रतिफल (Returns to Scale) कहते हैं।
7. उत्पत्ति के साधनों में स्थानापन्नता का गुण होने के कारण एक ही उत्पादन फलन के लिए एक साधन के स्थान पर दूसरे साधन का कम-अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् उत्पादन की एक ही मात्रा उत्पत्ति साधनों के अनेक एवं भिन्न-भिन्न संयोगों से प्राप्त की जा सकती है।
8. उत्पादन फलन तकनीक अथवा अभियान्त्रिकी सारांश प्रस्तुत करता है।

**प्र.6. उत्पादन फलन को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है?**
**Into how many parts can the production function be classified?**

**उत्तर**

## उत्पादन फलन के प्रकार
## (Kinds of Production Function)

उत्पादन फलन को दो भागों में बाँटा जा सकता है—1. अल्पकालीन उत्पादन फलन, तथा 2. दीर्घकालीन उत्पादन फलन।

1. **अल्पकालीन उत्पादन फलन** (Short-term Production Function)—उत्पादन फलन में समय-तत्त्व (Time Element) एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्पादन फलन की प्रकृति अल्पकाल एवं दीर्घकाल में एकसमान नहीं रहती है। अल्पकालीन उत्पादन अवधि का अभिप्राय उस समयावधि से है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अल्पकाल में उत्पादन की सूक्ष्म समयावधि के कारण जिन उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता उन्हें स्थिर साधन (Fixed Factors) कहा जाता है। अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील (Variable Factors) हैं। मुख्यत: पूँजी, पूँजीगत उपकरण, भूमि, उत्पादन तकनीक आदि अल्पकाल में स्थिर हैं जबकि श्रम की इकाइयाँ परिवर्तनीय हो सकती हैं। अल्पकाल में उत्पादन के संयन्त्र अथवा प्लाण्ट का आकार (Size of the Plant) अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार अल्पकालीन उत्पादन फलन में कुछ उत्पत्ति के साधन स्थिर हैं तथा कुछ परिवर्तनीय । परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके उत्पादन स्तर में परिवर्तन प्राप्त किया जा सकता है। इसे परिवर्तनशील अनुपात नियम (Law of Variable Proportions) कहते हैं।

TOUCH 'n' PASS

2. **दीर्घकालीन उत्पादन फलन** (Long-term Production Function)—दीर्घकालीन उत्पादन अवधि का अभिप्राय उस लम्बी समयावधि से है जिसमें फर्म अपने उत्पादन-क्षेत्र में प्रयोग होने वाले सभी उत्पत्ति के साधनों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकती है। दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में कोई भी उत्पत्ति का साधन स्थिर नहीं रहता। अल्पकाल की भाँति दीर्घकाल में उत्पत्ति के साधनों को स्थिर एवं परिवर्तनीय साधनों के रूप में विभाजित नहीं किया जाता। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन परिवर्तनीय होता है। दूसरे शब्दों में, दीर्घकाल में उत्पादन पैमाने (Scale of Production) को पूर्णत: परिवर्तित किया जा सकता है। दीर्घकालीन उत्पादन फलन में फर्म के पास उत्पत्ति के साधनों के चुनाव का पर्याप्त समय होता है और फर्म जिस रूप में चाहे, उत्पत्ति के साधन को परिवर्तित कर सकती है। दीर्घकाल में एक फर्म अपने उत्पादन पैमाने को परिवर्तित करने के लिए उत्पत्ति के साधनों को सुविधा तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर सकती है। इसलिए दीर्घकालीन उत्पादन फलन को पैमाने के प्रतिफल (Returns of Scale) भी कहा जाता है।

**प्र.7. अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अन्तर कीजिए।**
**Differentiate between short-term and long-term production functions.**

**उत्तर**

## अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अन्तर
## (Difference between Short-term and Long-term Production Function)

सामान्यतया अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उत्पादन फलन के बीच निम्नलिखित अन्तर पाया जाता है—

1. अल्पकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत एक उत्पादक के पास इतना कम समय होता है कि वह एक साथ उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन नहीं कर सकता, अत: उत्पादन की प्रक्रिया में कुछ साधनों को स्थिर रखकर एक या एक से अधिक साधनों में ही परिवर्तन किया जाता है।
   दीर्घकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत उत्पादक के पास पर्याप्त समय रहता है, फलत: वह वांछित उत्पादन प्राप्त करने के लिए उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन कर सकता है, अर्थात् वह उत्पादन के पैमाने को ही बदल सकता है।
2. अल्पकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत एक उत्पादक अपनी वस्तु की पूर्ति को केवल एक सीमा तक ही परिवर्तित कर सकता है, जबकि दीर्घकालीन उत्पादन फलन में पूर्ति को माँग के अनुरूप बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है।
3. अल्पकालीन उत्पादन फलन में समय की कमी के कारण साधनों का आपसी संयोग-अनुपात बदल जाता है जबकि दीर्घकालीन उत्पादन फलन में साधनों में एक साथ समान अनुपात में वृद्धि अथवा कमी की जाती है।
4. अल्पकालीन उत्पादन फलन के अन्तर्गत उत्पादन के परिवर्तनशील साधनों की कीमतें स्थिर नहीं रहती हैं। माँग एवं पूर्ति के अनुसार कीमतें कम या अधिक हो सकती हैं। दीर्घकालीन उत्पादन-फलन में उत्पादित वस्तु की कीमत एवं उत्पादन के विभिन्न साधनों की कीमतों को स्थिर मानकर चला जाता है।
5. अल्पकालीन उत्पादन-फलन 'परिवर्तनशील अनुपातों का नियम' है जबकि दीर्घकालीन उत्पादन-फलन 'पैमाने के प्रतिफल का नियम' है।
6. अल्पकालीन उत्पादन-फलन वास्तविक है, इसे देखा जा सकता है जबकि दीर्घकालीन उत्पादन-फलन को किसी नियम के रूप में नहीं देखा जा सकता है।

**प्र.8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए-**
**(i) कुल उत्पादकता, (ii) औसत उत्पादकता, (iii) सीमान्त उत्पादकता।**
**Write a short note on the following :**
**(i) Total productivity, (ii) Average productivity, (iii) Marginal productivity.**

**उत्तर** परिवर्तनशील अनुपात के नियम को समझने के लिए *TP*, *AP* तथा *MP* को समझा जाना आवश्यक है—

(i) **कुल उत्पादकता** (Total Productivity or *TP*)—किसी परिवर्तनशील साधन की निश्चित इकाइयों के अन्य स्थिर साधन इकाइयों के साथ प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है, उसे कुल उत्पादकता कहते हैं। कुल उत्पादकता मुख्यत: परिवर्तनशील साधन की मात्रा पर निर्भर करती है,
अर्थात् $TP = f(TVF)$
जहाँ $TVF$ = कुल परिवर्तनशील साधन।

TOUCH 'n PASS

(ii) **औसत उत्पादकता** (Average Productivity or *AP*)—औसत उत्पादकता विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादन-साधन अनुपात (Output-Input ratio) है।

दूसरे शब्दों में, औसत उत्पादकता $(AP) = \frac{\text{कुल उत्पादकता } (TP)}{\text{कुल परिवर्तनशील साधन } (TVF)}$

(iii) **सीमान्त उत्पादकता** (Marginal Productivity or *MP*)—परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से, जबकि अन्य साधन स्थिर हैं कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

$$MP_n = TP_n - TP_{(n-1)}$$

जहाँ $MP_n = n$वें साधन की सीमान्त उत्पादकता

$TP_n = n$ साधनों की कुल उत्पादकता

$TP_{(n-1)} = (n-1)$ साधनों की कुल उत्पादकता

**प्र.9. उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the causes of operation of the law of diminishing returns.**

**उत्तर**

## उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के कारण
## (Causes of Operation of the Law of Diminishing Returns)

आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम के लागू होने के निम्न कारण मानते हैं—

1. **एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर होना** (Fixity of one or more than one Factors of Production)—जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए एक साधन (माना श्रम) की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन श्रम का स्थिर साधनों के साथ अनुपात परिवर्तित होता चला जाता है। दूसरे शब्दों में, बढ़ती हुई श्रम मात्रा को स्थिर साधनों की ओर कम मात्रा के साथ काम करना पड़ता है। ऐसी दशा में श्रम की उत्पादकता कम होती चली जाती है और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।
2. **साधनों की अविभाज्यता** (Indivisibility of Factors)—उत्पत्ति के अधिकांश साधन अविभाज्य होते हैं। ये अविभाज्य साधन अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति तक तो उत्पादकता को बढ़ाते हैं किन्तु जब अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति के बाद भी साधनों का निरन्तर उपयोग जारी रहता है तब साधन की उत्पादकता घटने लगती है और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।
3. **उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण स्थानापन्न न होना** (Factors of Production are not Perfect Substitutes to each other)—**श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का मुख्य कारण मानती हैं। उनके अनुसार उत्पादन प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। उनके अनुसार, उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं जिसके कारण सीमित साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, साधनों की स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं होती जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।
4. **साधनों की सीमितता** (Scarcity of Factors)—कुछ उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति स्थिर एवं सीमित होती है; जैसे-भूमि। अत: जब एक उत्पादक किसी साधन की पूर्ति को नहीं बढ़ा पाता तो उसे उस साधन की सीमित मात्रा से ही काम चलाना पड़ता है। परिणामस्वरूप सीमित साधन का अन्य परिवर्तनशील साधनों से प्रयोग अनुपात बदलता जाता है और उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

**प्र.10. उत्पत्ति ह्रास नियम के महत्त्व का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the importance of law of diminishing returns.**

**उत्तर**

## उत्पत्ति ह्रास नियम का महत्त्व
## (Importance of Law of Diminishing Returns)

1. **अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम** (Fundamental law of Economics)—यह नियम केवल कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, मछली पालन, उद्योग, मकान निर्माण आदि सभी उत्पादन क्षेत्रों में क्रियाशील होने के कारण इस नियम

TOUCH 'n' PASS

का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है। घटते प्रतिफल की व्यावहारिकता को देखते हुए **विकस्टीड** (Wickstead) ने कहा है कि घटते प्रतिफल का नियम "उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम" (as Universal as the Law of Life and Death)।

2. **माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार** (Basis of Malthusian Population Theory)—माल्थस का सिद्धान्त यह बताता है कि देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि से कम होती है। खाद्यान्नों में धीमी वृद्धि का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है।
3. **रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का आधार** (Basis of Recardian Rent Theory)-रिकार्डो के गहरी खेती व विस्तृत खेती दोनों में लगान उत्पन्न होने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम है। गहरी खेती में जब दिये गये भू-खण्ड पर श्रम व पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो उत्तरोत्तर इकाइयों की उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई की तुलना में पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसे रिकार्डो ने लगान कहा है। इस प्रकार यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का ही परिणाम है।
4. **सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार** (Basis of Marginal Productivity Theory)—इस सिद्धान्त में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।
5. **एक क्षेत्र के लोगों का जीवन-स्तर प्रभावित करता है** (Affects Standard of Living of People Residing in an Area)—एक क्षेत्र में जनसंख्या उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है तब वहाँ उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण उस क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन स्तर गिर जायेगा।
6. **आविष्कारों एवं खोजों के लिए प्रेरणादायक** (Incentive for Inventions)—उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए अनेक आविष्कार एवं खोज करने की प्रेरणा मिलती है।

इस प्रकार उत्पत्ति ह्रास नियम सैद्धान्तिक (Theoretical) एवं व्यावहारिक (Practical) दोनों दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है।

**प्र.11. विस्तार पथ से आपका क्या अभिप्राय है?**
**What do you mean by expansion path?**

**उत्तर**

## विस्तार पथ (Expansion Path)

विस्तार पथ उत्पादक के विभिन्न उत्पादन स्तरों को उत्पादित करने वाले न्यूनतम लागत संयोग बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जबकि साधनों की कीमतें स्थिर रहती हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पादक साधनों की स्थिर कीमतों की दशा में उत्पादन-स्तर में वृद्धि करने पर साधन संयोगों को किस प्रकार समायोजित करता है, इसका अध्ययन विस्तार पथ की सहायता से किया जा सकता है। चित्र में विस्तार पथ की व्याख्या दी गयी है। चित्र में $R_1S_1$, $R_2S_2$, $R_3S_3$ तथा $R_4S_4$ चार समानान्तर साधन कीमत रेखाएँ दी गयी हैं। ये रेखाएँ उत्पत्ति साधन $X$ तथा $Y$ की कीमतें दी हुई तथा स्थिर रहते हुए कुल व्यय अथवा लागत व्यय के विभिन्न स्तरों को व्यक्त करती हैं। न्यूनतम लागत संयोग $E_1$, $E_2$, $E_3$ तथा $E_4$ क्रमशः 100, 200, 300 तथा 400 इकाई उत्पादन न्यूनतम लागत पर कर रहे हैं। यदि विभिन्न उत्पादन स्तरों के उत्पादन की न्यूनतम लागत का बताने वाले संयोग बिन्दुओं क्रमशः $E_1$, $E_2$, $E_3$ तथा $E_4$ को मिलाती हुई रेखा खींची जाये तो इस रेखा को ही विस्तार पथ विस्तार पथ (Expansion Path) कहते हैं। इस विस्तार पथ को पैमाना रेखा (Scale Line) भी कहा जाता है क्योंकि उत्पादक इसी पैमाने के आधार पर अपने उत्पादन का विस्तार करता है। $E_1$ से $E_2$ अथवा $E_2$ से $E_3$ अथवा $E_3$ से $E_4$ तक गमन उत्पादन प्रभाव (Output Effect) कहलाता है।

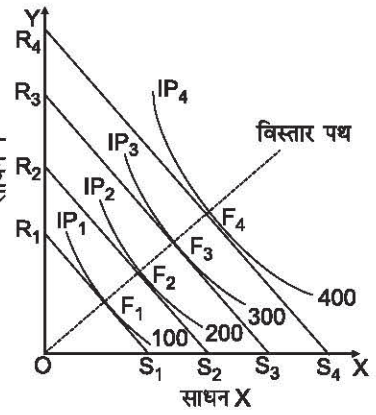

चित्र : विस्तार पथ

TOUCH 'n' PASS

**प्र.12. पैमाने के प्रतिफल के निर्धारक तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the determining elements of returns to scale.**

**उत्तर**

## पैमाने के प्रतिफल के निर्धारक तत्त्व
## (Determining Elements of Returns to Scale)

पैमाने के तीनों प्रतिफल के लागू होने के भिन्न-भिन्न कारण हैं—

(A) पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के लागू होने के कारणों में निम्नलिखित तत्त्व सम्मिलित हैं—

1. **साधनों की अविभाज्यताएँ** (Indivisibility of Factors)—कुछ उत्पत्ति के साधन निश्चित आकार के होते हैं जिसके कारण उनको विभाजित करके प्रयोग नहीं किया जा सकता। साधनों की अविभाज्यता के कारण प्रारम्भ में इन साधनों का पूर्ण विदोहन (Optimum Utilisation) सम्भव नहीं हो पाता। पैमाने के वृद्धि होने पर इन अविभाज्य साधनों का पूर्ण प्रयोग होने से पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।
2. **श्रम विभाजन** (Division of Labour)—**प्रो० चैम्बरलिन** श्रम विभाजन को वर्द्धमान प्रतिफल का मुख्य कारण मानते हैं। श्रम विभाजन से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिसके कारण पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।
3. **विशिष्टीकरण** (Specialisation)—श्रम विभाजन विशिष्टीकरण को जन्म देता है जिससे अधिक क्षमता वाले विशिष्ट साधन प्रयोग में लाए जा सकते हैं। फलतः उत्पादन में वृद्धि होती है और पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल मिलते हैं।

(B) **पैमाने के स्थिर प्रतिफल प्राप्त होते हैं क्योंकि**—पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल सदैव उपस्थित नहीं रहते। अविभाज्य साधनों के पूर्ण विदोहन की दशा में पैमाने के प्रतिफल प्राप्त होते हैं। इस दशा में फर्म के उत्पादन पैमाने में परिवर्तनों का साधनों के प्रयोग की कुशलता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पैमाने के स्थिर प्रतिफल केवल अल्पकाल के लिए उपस्थित होते हैं जिसके बाद पैमाने के हासमान प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

(C) **पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल मुख्यतः बढ़ते संगठन एवं प्रबन्ध** (Increasing Organisation & Management) **की** समस्याओं के कारण उत्पन्न होते हैं। निम्नलिखित बिन्दुओं को पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल का कारण कहा जा सकता है—

1. यद्यपि उत्पत्ति के साधनों को आनुपातिक रूप से बढ़ाया जाता है फिर भी संगठन एवं प्रबन्ध को उसी अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता। फलतः पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।
2. बड़े पैमाने पर कार्य जोखिमपूर्ण होता है।
3. पैमाने को एक सीमा के बाद बढ़ाने पर हानियाँ (Diseconomies) उत्पन्न होती हैं। पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल का यह मुख्य कारण है।
4. उत्पत्ति के साधन पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitutes) नहीं होते जिसके कारण सीमान्त उत्पादन में कमी होती है।

**प्र.13. बड़े पैमाने के उत्पादन से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों की अविभाज्यता सम्बन्धी बचत एवं प्रतियोगिता सम्बन्धी मितव्ययताओं को स्पष्ट कीजिए।**
**What do you mean by large scale production? Explain the economies due to indivisibility of factors and economies of competition.**

**उत्तर**

## बड़े पैमाने का उत्पादन
## (Large Scale Production)

बड़े पैमाने के उत्पादन के सम्बन्ध में **प्रो० मार्शल** ने लिखा है, "बड़े पैमाने पर उत्पादन आन्तरिक एवं बाह्य बचतों के कारण ही सम्भव हो पाता है।" बड़े पैमाने के उत्पादन में निम्न तीन आवश्यक तत्त्व होते हैं—

1. कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या का अधिक होना।
2. पूँजी का बड़ी मात्रा में लगाया जाना।
3. उत्पादन को बड़े पैमाने में प्राप्त किया जाना।

उपर्युक्त बातों के लागू होने पर ही उत्पादन करने वाली इकाई का आकार तथा उत्पादित मात्रा में वृद्धि होती है।

TOUCH 'n' PASS

## बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लाभ : आन्तरिक एवं बाह्य बचतें
## (Advantages of Large Scale Production : Internal and External Economies)

बड़े पैमाने के उत्पादन की प्रारम्भिक दशा में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, जिससे उत्पादन को प्रमुख रूप से निम्न प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं—

I. **साधनों की अविभाज्यता सम्बन्धी बचतें** (Economies due to Indivisibility of Factors)—साधनों की अविभाज्यता का अर्थ है कि साधन की ऐसी इकाइयाँ जिन्हें उत्पादन के विभिन्न पैमानों की उपयुक्तता के अनुसार, विभाजित नहीं किया जा सकता। अविभाज्यता की यह विशेषता मशीन, अनुसन्धान, विपणन तथा विज्ञापन आदि के रूप में होती है। इन सब विशेषताओं के कारण एक बड़े पैमाने के उद्योग को छोटे पैमाने के उद्योग की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, एक उद्योग में एक व्यवस्थापक की देख-रेख में 25 श्रमिक कार्य करते हैं। अब यदि इस उद्योग में 100 श्रमिकों को काम में लगाया जाता है, तो एक व्यवस्थापक इतने मजदूरों की देखभाल आसानी से कर सकता है, जबकि हमें 25 मजदूरों की देखभाल के लिए भी एक ही व्यवस्थापक लगाना था। अब वही व्यवस्थापक उतने ही पारिश्रमिक में 100 मजदूरों की देखभाल कर लेता है, तो दूसरी दशा में व्यवस्थापक की मजदूरी उद्योग के लिए काफी सस्ती हुई क्योंकि व्यवस्थापक एक अविभाज्य इकाई है। हम कम मजदूरों को लगाने पर व्यवस्थापक की कम इकाई का उपयोग नहीं करेंगे। यही बात एक मशीन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। संक्षेप में, ज्यों-ज्यों बड़े पैमाने के उत्पादन का आकार बढ़ता है, त्यों-त्यों साधनों की अविभाज्यता भी बढ़ती है और बड़े पैमाने के उत्पादन को अधिक लाभ मिलता है।

II. **प्रतियोगिता सम्बन्धी मितव्ययताएँ** (Economies of Competition)—बड़े पैमाने के उद्योगों को प्रतियोगिता सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त होते हैं। प्रतियोगिता सम्बन्धी लाभ या मितव्ययताएँ निम्नलिखित हैं—

1. बड़े पैमाने के उत्पादन की इकाई विज्ञापन में बड़ी भारी रकम व्यय करके लोगों का ध्यान अपनी वस्तु की तरफ आकर्षित कर लेती है। इससे वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। वस्तुओं की माँग बढ़ जाने से इन उद्योगों का लाभ भी बढ़ जाता है।
2. कच्चे तथा पक्के माल के क्रय-विक्रय में भी बड़े पैमाने के उद्योगों को छोटे पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा अधिक लाभ मिलता है, क्योंकि छोटे पैमाने के उद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ प्रतियोगिता में नहीं टिक सकते हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बड़े पैमानों के उद्योगों को अनेकानेक प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं। इन्हीं बचतों से इन उद्योगों को अधिकाधिक लाभ भी मिल जाता है। परिणामस्वरूप, वर्तमान समय में बड़े पैमाने के उद्योगों का विकास तेजी से हो रहा है।

## खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. लागत को कितने रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है? मौद्रिक लागत एवं वास्तविक लागत को विस्तार से समझाइए।**
**Into how many forms can costs be classified? Explain in detail money cost and real cost.**

**उत्तर**

### लागत का वर्गीकरण
### (Classification of Cost)

उत्पादक के दृष्टिकोण से लागत पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उत्पादक को उत्पादन करने से पूर्व उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। उत्पत्ति के साधनों-भूमि, पूँजी, श्रम, साहस—को उत्पादक क्रमशः लगान, ब्याज, मजदूरी एवं लाभ देकर अपने उत्पादन के क्षेत्र में आकर्षित करता है। उत्पत्ति के साधनों की कीमतें तथा स्वयं उत्पादक की उद्यमशीलता उत्पत्ति की लागत पर प्रभाव डालती हैं। उत्पत्ति के साधन एवं उत्पादन दोनों का सम्बन्ध अटूट है। उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को एक निश्चित संयोग में मिलाए बिना उत्पादन नहीं किया जा सकता। प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का अपना अलग मूल्य होता है तथा एक उत्पत्ति के साधन से दूसरे उत्पत्ति के साधन को एक सीमा तक प्रतिस्थापित भी किया जा सकता है। उत्पत्ति के साधनों में महँगे साधनों का प्रयोग निश्चित रूप से कुल उत्पादन लागत को बढ़ाएगा, साथ-ही-साथ सस्ते उत्पत्ति के साधन से उत्पादित की जा रही वस्तु की उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम होगी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले समस्त उत्पत्ति के साधनों को दिया जाने वाला भुगतान ही उत्पादन लागत है।

TOUCH 'n PASS

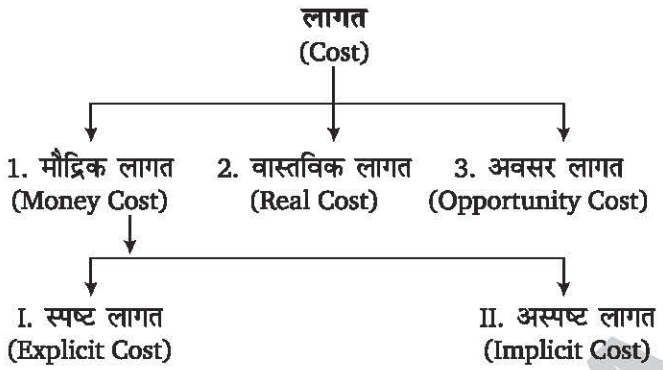


### 1. मौद्रिक लागत (Money Cost)

किसी फर्म द्वारा एक वस्तु के उत्पादन में किए गए कुल मुद्रा व्यय को मुद्रा लागत कहते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्पत्ति के समस्त साधनों के मूल्य को यदि मुद्रा में व्यक्त कर दिया जाए तो उत्पादक इन उत्पत्ति के साधन की सेवाओं को प्राप्त करने में जितना कुल व्यय करता है, मौद्रिक लागत कहलाती है।

मौद्रिक लागत में निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जा सकता है—

1. कच्चे माल पर व्यय
2. श्रम की मजदूरी एवं वेतन
3. अविभाज्य बड़े उपकरण एवं मशीन पर व्यय
4. पूँजी पर दिया जाने वाला ब्याज
5. भूमि का किराया अर्थात् लगान
6. मशीनों की टूट-फूट एवं घिसावट (Depreciation)
7. प्रबन्ध व्यय
8. विज्ञापन व्यय
9. यातायात व्यय
10. बीमा कम्पनियों को दी जाने वाली धनराशि
11. सामान्य लाभ
12. ईंधन-व्यय

उपर्युक्त बतायी गई मौद्रिक लागतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(I) स्पष्ट लागतें (Explicit Costs)

(II) अस्पष्ट अथवा सन्निहित लागतें (Implicit Costs)

(I) **स्पष्ट लागतें** वे लागतें हैं जो उत्पादक के द्वारा उत्पत्ति के अनेक साधनों को एकत्रित करने पर स्पष्ट रूप से व्यय की जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट लागतें उत्पादन का प्रत्यक्ष व्यय स्पष्ट करती हैं। स्पष्ट लागतों के अन्तर्गत निम्नलिखित मदों में किया जाने वाला व्यय सम्मिलित है—

(a) कच्चे माल पर व्यय
(b) श्रमिक की मजदूरी
(c) उधार ली गई पूँजी पर ब्याज
(d) भूमि और बिल्डिंग का किराया
(e) उपकरणों की टूट-फूट

TOUCH 'n' PASS

(f) विज्ञापन व्यय
(g) बीमा व्यय
(h) कर आदि के भुगतान में व्यय

(II) **अस्पष्ट अथवा सन्निहित लागतों** में उत्पादक के वे व्यय सम्मिलित होते हैं जिनका उत्पादक को प्रत्यक्ष रूप से भूगतान नहीं करना होता, किन्तु उत्पादक उन साधनों का उत्पादन-क्रिया में प्रयोग करता है क्योंकि साधन उत्पाद के द्वारा स्वयं एकत्रित किए जाते हैं। सन्निहित लागतों के अन्तर्गत निम्नलिखित मद सम्मिलित किए जाते हैं—

(a) स्वयं उत्पादक द्वारा प्रदान की गई सेवा की मजदूरी
(b) उत्पादक की अपनी स्वयं की पूँजी का ब्याज
(c) उस बिल्डिंग का किराया जो स्वयं उस उत्पादक की है, किन्तु उत्पादन में प्रयोग की जा रही है।
(d) प्रबन्ध एवं संगठन पर प्रदान की जाने वाली सेवाओं के ऊपर प्राप्त होने वाला सामान्य लाभ।

सन्निहित मौद्रिक लागत प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त मदों की **चालू बाजार मूल्य** (Current Market Price) पर गणना की जानी चाहिए। इन्हें सन्निहित मौद्रिक लागत इसलिए कहा जाता है क्योंकि उत्पादक द्वारा स्वयं प्रस्तुत की जा रही सेवाओं के भुगतानस्वरूप स्वयं उत्पादक को प्राप्त हो रही है। वस्तुत: यह उत्पादन का वह व्यय है जो रिकार्ड के रूप में उपलब्ध नहीं हो पाता, किन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से सन्निहित लागतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि ये लागतें भी कुल मौद्रिक लागतों का एक अंग हैं।

संक्षेप में,

**कुल मौद्रिक लागत = कुल स्पष्ट लागत + सन्निहित लागत + सामान्य लाभ**

Total Production Cost = Total Explicit Cost + Implicit Cost + Normal Profit

### 2. वास्तविक लागत (Real Cost)

**मार्शल** के अनुसार, एक वस्तु के उत्पादन में समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा किया गया प्रयत्न एवं त्याग (Efforts and Sacrifices) उत्पादन की वास्तविक लागत है। इस प्रकार किसी उत्पादन क्रिया के अन्तर्गत होने वाले कष्ट एवं त्याग वास्तविक लागत उत्पन्न करते हैं। वास्तविक लागतों को सामाजिक लागत भी कहा जा सकता है क्योंकि समाज को वस्तुओं के उत्पादन में कष्ट का सामना करना पड़ता है।

**मार्शल** के शब्दों में, "किसी वस्तु के उत्पादन में विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रयत्न करने पड़ते हैं अथवा साथ ही वस्तु के उत्पादन में प्रयोग की जाने वाली पूँजी को संचित करने में संयम अथवा प्रतीक्षा करनी पड़ती है, में सब प्रयत्न अथवा त्याग मिलकर वस्तु की वास्तविक लागत कहलाते हैं।"

वास्तविक लागत का तथ्य भले ही देश तथा समाज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो, व्यावहारिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। कष्ट, त्याग, आदि अनुभव तो किए जा सकते हैं किन्तु इन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, वास्तविक लागत का विचार मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत है क्योंकि एक ही कार्य करने में विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट अनुभव होते हैं। कोई निश्चित मापदण्ड कष्ट आदि के मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

**प्र.2. अवसर लागत से आप क्या समझते हैं? इसके महत्त्व पर भी प्रकाश डालिए।**
**What do you understand by opportunity cost? Also throw light on its importance.**

**उत्तर**

## अवसर लागत
## (Opportunity Cost)

आस्ट्रियन अर्थशास्त्रियों ने 'वास्तविक लागत' (Real Cost) के विचार में संशोधन किया क्योंकि उनका विचार था कि वास्तविक लागत के तथ्य में कष्ट, त्याग आदि मनोवैज्ञानिक तत्त्व भी शामिल हैं जिन्हें मुद्रा के मापदण्ड द्वारा नहीं मापा जा सकता है। इसी कारण इन्होंने वास्तविक लागत के स्थान पर अवसर लागत का प्रयोग किया। अर्थशास्त्र का मौलिक सिद्धान्त यह है कि आर्थिक साधन आवश्यकताओं की तुलना में सीमित होते हैं। अत: किसी वस्तु के उत्पादन का अर्थ है—दूसरी वस्तु या वस्तुओं के उत्पादन से वंचित होना।

TOUCH 'n' PASS

**बेन्हम** के शब्दों में, "किसी वस्तु की अवसर लागत वह सर्वश्रेष्ठ विकल्प है जिसका उत्पादन उन्हीं उत्पत्ति के साधनों द्वारा उसी लागत पर उस वस्तु के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।"

अवसर लागत के उपर्युक्त विचार को एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अपनी योग्यता तथा श्रम के आधार पर एक व्यक्ति को तीन नौकरियाँ मिल सकती हैं—डिग्री कॉलेज लेक्चरर (वेतन ₹ 15,000 मासिक), बैंक ऑफीसर (वेतन ₹ 14,000 मासिक) तथा सेल्स ऑफीसर (वेतन ₹ 13,000 मासिक)। स्वाभाविक है कि अन्य बातों के समान रहते हुए वह व्यक्ति डिग्री कॉलेज के प्रवक्ता पद को ही चुनेगा। इस चुनाव के दो विकल्प है—₹ 14,000 मासिक वेतन तथा ₹ 13,000 मासिक वेतन के अन्य दो पद। परन्तु दोनों पदों में श्रेष्ठ ₹ 14,000 मासिक वाला पद है तथा यही चुने गए पद की वैकल्पिक अथवा अवसर लागत कहलाएगी। वैकल्पिक अथवा अवसर लागत में वस्तु या सेवा के सर्वश्रेष्ठ विकल्प की लागत देखी जाती है और उत्पादन की दृष्टि से साधनों की मात्रा में अन्तर हो सकता है, परन्तु कुल लागत में अन्तर नहीं होना चाहिए।

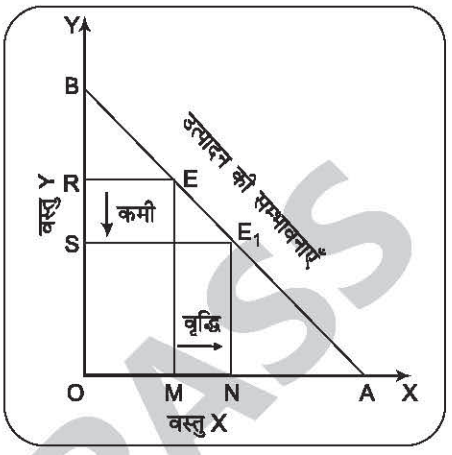

चित्र : अवसर लागत

अवसर लागत के तथ्य को हम उपर्युक्त चित्र द्वारा भी स्पष्ट कर सकते हैं। माना $AB$ रेखा दो वस्तुओं $X$ और $Y$ के उत्पादन की विभिन्न सम्भावनाओं को प्रदर्शित करती है। उत्पादक के पास साधनों की मात्रा निश्चित है जिनसे दो वस्तुओं $X$ और $Y$ का उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादक $X$ वस्तु का उत्पादन बढ़ाना चाहता है तो उसे $Y$ वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ेगी। चित्र से स्पष्ट है कि $X$ वस्तु की $MN$ मात्रा में वृद्धि करने के लिए $Y$ वस्तु की $RS$ मात्रा कम करनी पड़ती है, यही अवसर लागत है।

$X$ वस्तु की $MN$ मात्रा की अवसर लागत $= Y$ वस्तु की $RS$ मात्रा में कमी

### अवसर लागत का महत्त्व (Significance of Opportunity Cost)

1. लगान का आधुनिक सिद्धान्त इसी अवसर लागत के तथ्य पर आधारित है। लगान का आधुनिक सिद्धान्त यह बताता है कि लगान अवसर लागत के ऊपर अतिरेक (Surplus) है।
2. यह तथ्य उत्पत्ति के सीमित साधनों के वितरण में सहायक है। अवसर लागत के सिद्धान्त के अनुसार, सीमित साधन, जो अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में माँगा जाता है, को एक चुने गए प्रयोग में कम-से-कम इतना अवश्य मिलना चाहिए जितना उसे श्रेष्ठतम वैकल्पिक प्रयोग में मिल रहा है।
3. लागत के परिवर्तन पर प्रकाश डालता है। अवसर लागत के विचार से यह विश्लेषण किया जा सकता है कि फर्म की लागत किस सीमा तक अपने उत्पादन के साथ परिवर्तित हो सकती है।

**प्र.3. उत्पादन समयावधि के आधार पर लागतों को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है? अल्पकालीन लागत की व्याख्या कीजिए।**

**Into how many parts can costs be classified on the basis of time period of production? Explain short-run cost.**

**उत्तर**

## अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन लागतें
## (Short-Run and Long-Run Costs)

उत्पादन समयावधि के आधार पर लागतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. अल्पकालीन लागतें, 2. दीर्घकालीन लागतें

### अल्पकालीन लागतें (Short-Run Costs)

अल्पकाल में उत्पादक वस्तु की पूर्ति को परिवर्तित माँग की दशाओं के अनुसार पूर्णत: समायोजित नहीं कर सकता क्योंकि अल्पकाल में उत्पादक के पास इतना समय नहीं होता कि वह उत्पत्ति के सभी साधनों को समयानुसार परिवर्तित कर सके। अल्पकाल में उत्पत्ति के कुछ साधन स्थिर होते हैं तथा कुछ परिवर्तनशील। अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं

TOUCH 'n PASS

किया जा सकता। भूमि, बिल्डिंग, मशीन, संगठन एवं प्रबन्ध, ऊँचा तकनीकी श्रम आदि की मात्रा परिवर्तित नहीं की जा सकती। स्थिर साधनों को जो भुगतान दिया जाता है उसे स्थिर लागत कहा जाता है। स्थिर लागत उत्पादन की मात्रा के साथ परिवर्तित नहीं होती।

स्थिर साधन के अतिरिक्त अल्पकाल में कुछ परिवर्तनशील साधन होते हैं जिनकी पूर्ति को आवश्यकतानुसार समायोजित किया जा सकता है। इनके अन्तर्गत ईंधन, बिजली, कच्चा माल, श्रमिक आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। अल्पकाल में परिवर्तनशील साधन उत्पादन की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। परिवर्तनशील साधनों का किया जाने वाला भुगतान परिवर्तनशील लागत है। स्थिर लागतें उद्यमी को उत्पादन बन्द होने की दशा में भी वहन करनी पड़ती हैं जबकि अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देने पर परिवर्तनशील लागतों को पूर्णत: समाप्त किया जा सकता है। स्थिर लागतों को पूरक लागत (Supplementary Cost) तथा परिवर्तनशील लागतों को प्रमुख लागत (Prime Cost) भी कहा जाता है।

अल्पकाल में,

$$\text{कुल उत्पादन लागत} = \text{कुल स्थिर लागत} + \text{कुल परिवर्तनशील लागत}$$

$$\text{Total Production Cost} = \text{Total Fixed Cost} + \text{Total Variable Cost}$$

$$TPC = TFC + TVC$$

संलग्न चित्र में कुल लागत वक्र को TFC तथा TVC वक्रों के साथ स्पष्ट किया गया है। TFC रेखा X अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में दिखायी गई है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन कुल स्थिर लागत को प्रभावित नहीं करता। TFC रेखा Y अक्ष के एक बिन्दु से आरम्भ होती है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में भी उत्पादक को TFC के बराबर उत्पादन व्यय वहन करना पड़ेगा।

इसके दूसरी ओर TVC वक्र मूल बिन्दु से ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होता है जिसका अभिप्राय है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ कुल परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि हो रही है। TVC का आरम्भिक बिन्दु मूल बिन्दु O है जिसका अभिप्राय है कि शून्य उत्पादन होने की दशा में कुल परिवर्तन लागत शून्य हो जाती है। इस प्रकार कुल परिवर्तनशील लागत, उत्पादन की मात्रा का एक फलन होता है। अर्थात्,

$$TVC = f(q)$$

दूसरे शब्दों में, उत्पादन की मात्रा की वृद्धि TVC को बढ़ाएगी तथा उत्पादन की मात्रा की कमी TVC को घटाएगी।

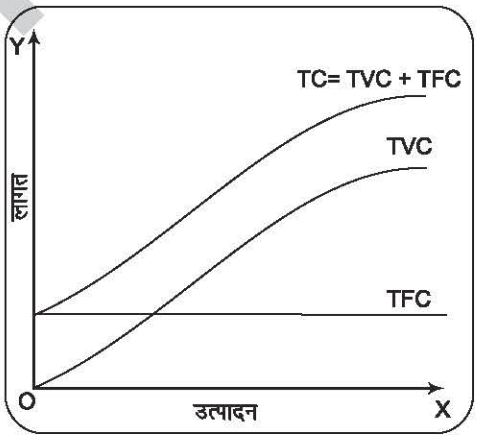

चित्र

TFC एवं TVC वक्रों के योग को प्रदर्शित करता हुआ वक्र चित्र में TC द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो कुल उत्पादन लागत को बताता है। भिन्न-भिन्न उत्पादन स्तरों पर कुल स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागतों का योग इस वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। TC वक्र का आरम्भ बिन्दु Y अक्ष का वह बिन्दु है जहाँ से TFC वक्र आरम्भ होता है। इसका अभिप्राय है कि उत्पादन शून्य होने की दशा में कुल लागत, कुल परिवर्तनशील लागत के बराबर होगी क्योंकि शून्य उत्पादन स्तर पर परिवर्तनशील लागत पूर्णत: समाप्त हो जाती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि TVC वक्र के बढ़ने की गति एवं TC वक्र के बढ़ने की गति एकसमान है क्योंकि TC वक्र के अनुसार विभिन्न उत्पादन स्तरों पर परिवर्तित होती हुई TVC अपने परिवर्तन के अनुपात में ही TC में परिवर्तन करती है। इसी प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन लागत भी उत्पादन मात्रा का फलन है। अर्थात्,

$$TC = f(q)$$

स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों से सम्बन्धित सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि दोनों प्रकार की लागतों का अन्तर अल्पकाल में ही लागू होता है दीर्घकाल में नहीं, क्योंकि दीर्घकाल में सभी साधन एवं लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। दूसरे, स्थिर तथा परिवर्तनशील लागतों में अन्तर केवल मात्रा (Degree) का है न कि किस्म का, क्योंकि स्थिर लागतें एक समयावधि के सन्दर्भ में ही स्थिर होती हैं।

TOUCH 'n PASS

**प्र.4. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का विस्तृत विवेचन कीजिए।**
**Discuss in detail the long-run average cost curve.**

**उत्तर**

## दीर्घकालीन औसत लागत वक्र
## (Long-run Average Cost Curve)

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र, दीर्घकालीन कुल लागत वक्र की सहायता से उत्पन्न किया जाता है।

$$\text{LAC} = \frac{LTC}{q}$$

जहाँ $LAC$ = दीर्घकालीन औसत लागत, $LTC$ = दीर्घकालीन कुल लागत, $q$ = उत्पादन की मात्रा।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन की विभिन्न उत्पादन मात्राओं की न्यूनतम सम्भव औसत लागत को व्यक्त करता है। यदि दीर्घकाल में किसी वस्तु की माँग बढ़ जाए तब ऐसी दशा में उत्पादक बढ़ी माँग को पूरा करने के लिए अपने वर्तमान प्लाण्ट का विस्तार कर सकते हैं अथवा प्लाण्ट को ही बदल सकते हैं। प्रत्येक प्लाण्ट उत्पादन की एक निश्चित सीमा तक ही उपयोगी है। ऐसी दशा में फर्म किसी प्लाण्ट विशेष का उसी अवस्था तक प्रयोग करेगी जहाँ तक उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन लागत में कमी होती जाए।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC Curve) की व्याख्या सबसे सरल परिस्थिति में करने के लिए हम यह मान लेते हैं कि किसी उद्योग में प्लाण्ट केवल तीन भिन्न आकारों—सूक्ष्म (Small), मध्यम (Medium) तथा बृहत् (Large) में उद्योग में विद्यमान है। चित्र में इस स्थिति की व्याख्या दिखाई गई है। सबसे कम आकार वाले प्लाण्ट का अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SAC_1$, मध्यम आकार वाले प्लाण्ट का $SAC_2$ तथा दीर्घ आकार वाले प्लाण्ट का $SAC_3$ दिखाया गया है।

दीर्घकाल में एक उद्यमी तीन वैकल्पिक विनियोगों (Three Investment Alternatives) में से किसी एक को चुन सकता है। चित्र में तीनों विकल्पों को तीन अल्पकालीन लागत वक्रों द्वारा दिखाया गया है। उद्यमी तीनों प्लाण्टों में से किसका चुनाव करेगा यह उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि फर्म उत्पादन की $OX_1$ मात्रा उत्पादित करती है तब न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट का चुनाव किया जाएगा। यदि उत्पादन मात्रा $OX_2$ हो जाए तब उत्पादक पहले प्लाण्ट को छोड़कर मध्यम आकार वाले प्लाण्ट पर पहुँच जाएग क्योंकि $OX_2$ उत्पादन यदि उद्यमी पहले प्लाण्ट पर ही करता है तो औसत लागत $OC_1$ आती है जबकि उतनी ही मात्रा का उत्पादन उद्यमी दूसरे मध्यम आकार वाले प्लाण्ट के साथ $OC_2$ औसत लागत पर कर सकता है। अत: उद्यमी के लिए ऊँचे लागत वाले प्लाण्ट से कम लागत वाले प्लाण्ट पर स्थानान्तरित होना हितकर रहेगा।

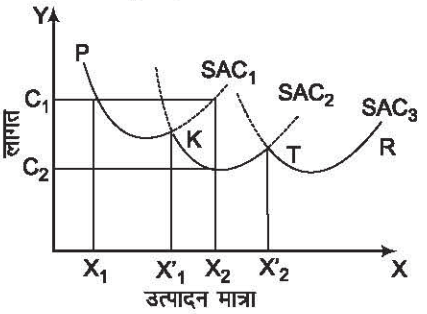


**चित्र 1 : दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (तीन उपलब्ध प्लाण्टों की दशा में)**

उत्पादन स्तर $OX'_1$ तक उद्यमी न्यूनतम आकार वाले प्लाण्ट के साथ उत्पादन करेगा, क्योंकि इस उत्पादन स्तर तक पहले प्लाण्ट से न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। जब उत्पादन स्तर $OX'_1$ हो जाता है तब न्यूनतम एवं मध्यम दोनों आकार वाले प्लाण्ट एक समान लागत $KX'_1$ देते हैं, इस बिन्दु पर उद्यम उदासीन रहेगा कि वह किसका चुनाव करे। किन्तु जैसे ही उत्पादन $OX'_1$ से अधिक होगा न्यूनतम आकार वाला प्लाण्ट ऊँची लागत वाला प्लाण्ट बन जाएगा तथा उद्यमी कम लागत वाले प्लाण्ट $SAC_2$ पर स्थानान्तरित हो जाएगा। इसी प्रकार उद्यमी $OX'_2$ मात्रा तक मध्य आकार वाले प्लाण्ट का उपयोग करेगा किन्तु $OX'_2$ से अधिक उत्पादन स्तर पर उद्यमी बृहत् आकार वाले प्लाण्ट $SAC_3$ पर स्थानान्तरित कर दिया जाएगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में फर्म को प्लाण्ट के आकार को बदलने की स्वतन्त्रता होती है तथा दीर्घकाल में फर्म किसी उत्पादन स्तर को उत्पादित करने के लिए उस प्लाण्ट का प्रयोग करेगी जो न्यूनतम और लागत पर उत्पादन कर सके। ऐसा दीर्घकालीन औसत लागत वक्र चित्र में $PKTR$ द्वारा दिखाया गया है। $SAC_1$, $SAC_2$ तथा $SAC_3$ के बिन्दुकित (Dotted) रेखाओं का दीर्घकालीन औसत लागत विश्लेषण में कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि प्लाण्टों के इन भागों पर उत्पादन करने के बजाय उद्यमी प्लाण्ट के आकार को ही बदल देता है। ऐसी दशा में, जिसमें उद्यमी को दीर्घकाल में तीन (अथवा बहुत कम) प्लाण्ट उपलब्ध होते हैं, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र सीधा न होकर उतार-चढ़ाव वाला होता है। देखें चित्र में $PKTR$ वक्र। किन्तु वास्तव में उद्यमी का दीर्घकाल में चुनाव तीन प्लाण्टों तक ही केन्द्रित नहीं होता बल्कि उसके समय बड़ी संख्या में विभिन्न आकार वाले प्लाण्ट उपस्थित हैं तथा उसे उनमें से किसी एक का चुनाव करना है इसी स्थिति की व्याख्या चित्र 2 में की गई है।

TOUCH 'n' PASS

चित्र 2 में अनेक प्लाण्ट दिखाए गए हैं। उत्पादन की $OX_1$ मात्रा के उत्पादन के लिए फर्म $SAC_1$ के बिन्दु $H$ का चुनाव करेगी क्योंकि इस प्लाण्ट से इसी मात्रा पर न्यूनतम लागत प्राप्त हो रही है। यह $SAC_2$ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को बिन्दु $H$ पर स्पर्श करता है। उत्पादन की $OX'_1$ मात्रा होने पर $SAC_1$ लागत वाला प्लाण्ट $NX'_1$ लागत देता है जबकि $SAC_2$ पर उत्पादन की समान मात्रा $PX'_1$ की लागत पर प्राप्त की जा सकती है। अत: $OX'_1$ उत्पादन मात्रा के लिए उत्पादक $SAC_2$ पर स्थानान्तरित हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार $OX''_1$, $OX_0$, $OX_2$, $OX_3$ तथा $OX_4$ उत्पादन स्तरों के लिए उत्पादक क्रमश: $SAC_3$, $SAC_4$, $SAC_5$, $SAC_6$ तथा $SAC_7$ लागत वाले प्लाण्टों से उत्पादन करेगा। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र $LAC$ इन विभिन्न प्लाण्टों को दर्शाने वाले अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को कहीं न कहीं एक बिन्दु पर स्पर्श अवश्य करेगा। इसलिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण (Envelope) भी कहा जाता है क्योंकि यह अनेक अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को घेरता है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि $LAC$ वक्र $SAC$ को केवल स्पर्श करता है, $SAC$ वक्र को किसी भी बिन्दु पर काटता नहीं है। इसका कारण यह है कि किसी भी उत्पादन मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत, अल्पकालीन औसत लागत से अधिक नहीं हो सकती। दीर्घकाल में उत्पादक प्लाण्ट का समायोजन एवं चुनाव इस प्रकार करता है कि उत्पादन लागत को घटाया जा सके। दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई भी दशा नहीं हो सकती जिसमें अल्पकालीन औसत लागत दीर्घकालीन औसत लागत से कम हो अर्थात् सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्र $LAC$ से ऊपर ही होंगे। दीर्घकालीन में उत्पादन करते समय उत्पादक वस्तुत: किसी अल्पकालीन प्लाण्ट पर ही क्रियाशील होता है। अत: प्रत्येक उत्पादन स्तर पर उससे सम्बन्धित अल्पकालीन औसत लागत वक्र किसी-न-किसी बिन्दु पर $LAC$ को अवश्य स्पर्श करेगा।

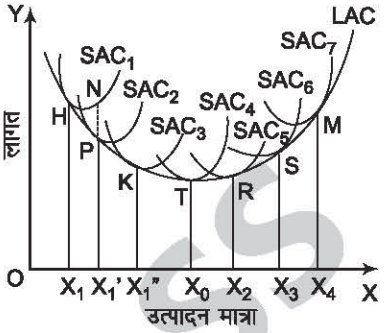

चित्र 2 : दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

$LAC$ वक्र की दूसरी विशेषता दीर्घकालीन पैमाने के प्रतिफलों (Returns to Scale) के कारण उपस्थित होती है। पैमाने के प्रतिफलों की मान्यता की दशा में दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ($LAC$ वक्र) अंग्रेजी के अक्षर $U$ आकार का होता है। चित्र में $LAC$ को $U$ आकार का दिखाया गया है। $LAC$ अपने न्यूनतम बिन्दु $T$ पर $SAC_4$ को उसके निम्नतम बिन्दु पर स्पर्श करता है। यह स्थिर पैमाने के प्रतिफल (Constant Returns to Scale) की दशा है। यह स्थिति प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार (Optimum Size of Plant) को बताती है। $LAC$ वक्र बिन्दु $H$ से $T$ तक बाएँ से दाएँ नीचे गिर रहा है। इस गिरते हुए भाग पर $LAC$ सम्बन्धित $SAC$ वक्रों को उनके गिरते हुए भाग पर ही स्पर्श करता है। चित्र में जब तक उत्पादन की मात्रा $OX_0$ से कम है तब तक $LAC$ अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को गिरते भागों (Falling Portion) के किसी बिन्दु पर स्पर्श कर रहा है। दूसरे शब्दों में, जब उत्पादन मात्रा $OX_0$ से कम हो तब प्लाण्ट को न्यूनतम लागत से कम पर संचालित करना लाभप्रद होगा। इसके विपरीत, जब $LAC$ बढ़ता है तब यह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को बढ़ते भागों (Rising Portions) के किसी बिन्दु पर स्पर्श करेगा। दूसरे शब्दों में, यदि उत्पादन मात्रा $OX_0$ से अधिक है तब प्लाण्ट को अनुकूलतम क्षमता से अधिक प्रयोग करना लाभप्रद होगा। देखें चित्र 2 में बिन्दु $R$, $S$ तथा $M$ की दशा। इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का प्रत्येक बिन्दु सम्बन्धित अल्पकालीन वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर स्पर्श नहीं करता, केवल अनुकूलतम प्लाण्ट (Optimum Plant) पर वह SAC के न्यूनतम बिन्दु पर उसे स्पर्श करता है। यही कारण है कि $LAC$ वक्र $U$ आकार का होता है।

**प्र.5. दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत के बीच क्या सम्बन्ध है?**

**What is the relation between long-run marginal cost and long-run average cost?**

## उत्तर दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत के बीच सम्बन्ध

### (Relation between Long-Run Marginal Cost and Long-Run Average Cost)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत ($LMC$) रेखा अंग्रेजी के $U$-अक्षर के आकार की होती है। जैसाकि हम जानते हैं दीर्घकाल में स्थिर लागत ($FC$) तथा परिवर्तनशील लागत ($VC$) का अन्तर समाप्त हो जाता है, सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। अत: दीर्घकाल में सीमान्त लागत ($MC$) को परिवर्तनशील लागत ($VC$) के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता है। दीर्घकाल में एक इकाई के उत्पादन के कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे दीर्घकालीन सीमान्त लागत ($LMC$) कहते हैं। दीर्घकालीन सीमान्त लागत ($LMC$) और दीर्घकालीन औसत लागत ($LAC$) में ठीक उसी प्रकार का सम्बन्ध है, जैसा कि अल्पकालीन सीमान्त लागत ($SMC$) और अल्पकालीन औसत लागत ($SAC$) में होता है।

चित्र 1 में तीन संयन्त्रों से सम्बन्धित तीन अल्पकालीन औसत लागत वक्र क्रमशः $SAC_1$, $SAC_2$ तथा $SAC_3$ व दीर्घकालीन औसत लागत वक्र $LAC$ प्रदर्शित किए गए हैं। $LAC$ वक्र, $SAC_1$, $SAC_2$ तथा $SAC_3$ वक्रों को क्रमशः $P$, $P_1$ तथा $P_2$ पर स्पर्श करता है। यदि फर्म दीर्घकाल में $ON$ मात्रा का उत्पादन करती है तथा $LAC$ वक्र $SAC_1$ वक्र को बिन्दु $P$ पर स्पर्श करता है तो $LMC$ वक्र द्वारा $SMC_1$ को बिन्दु $P$ के तत्सम्बन्धी बिन्दु (corresponding point) $P$ पर काटा जाएगा। वह बिन्दु, जिस पर $LAC$ वक्र $SAC$ वक्र को स्पर्श करता है, का तत्सम्बन्धी बिन्दु वह है जहाँ $LMC = SMC$, इस प्रकार—

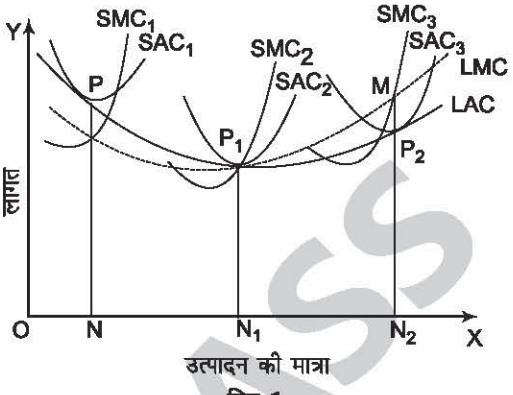

चित्र 1

1. $ON$ मात्रा के उत्पादन हेतु $LAC = NP$ तथा $LMC = AN$,
2. $ON_1$ मात्रा के उत्पादन हेतु $LAC = P_1N_1$ तथा $LMC = P_1N_1$,
3. $ON_2$ मात्रा के उत्पादन हेतु $LAC = P_2N_2$ तथा $LMC = MN_2$।

सभी अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र $SMC$ अपने सम्बन्धित अल्पकालीन औसत लागत वक्रों $SAC$ को उनके निम्नतम बिन्दुओं पर काटते हैं। इसी प्रकार दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र $LMC$ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसके निम्नतम बिन्दु पर काटता है।

चित्र 2 से स्पष्ट है कि जब $LAC$ गिरता है, तो $LMC$ उससे कम होता है। $LAC$ के न्यूनतम बिन्दु $E$ पर $LMC$, $LAC$ के बराबर हो जाता है तथा उसके बाद $LAC$ बढ़ता है और $LMC$ उससे भी अधिक तेजी से बढ़ता रहता है। चित्र में $SAC$ तथा $SMC$ अल्पकालीन सीमान्त रेखाएँ हैं। चित्र से स्पष्ट हो जाता है कि $E$ बिन्दु पर $LAC = LMC = SAC = SMC$।

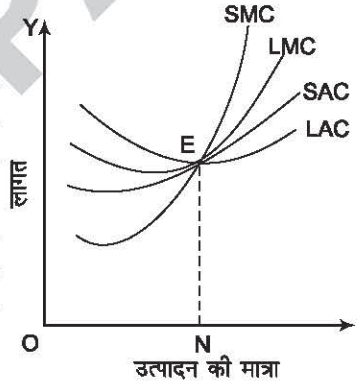

चित्र 2

**प्र.6. व्यावसायिक दृष्टिकोण से लागतों के वर्गीकरण की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**Explain in detail the classification of costs from business point of view.**

**उत्तर**

## व्यावसायिक दृष्टिकोण से लागतों का वर्गीकरण
## (Classification of Costs : Commercial Viewpoint)

व्यावसायिक दृष्टिकोण से लागत अवधारणाओं को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. **वृद्धिशील एवं डूबती लागतें** (Incremental Costs and Sunk Costs)—एक फर्म जब अपनी व्यावसायिक क्रियाओं के स्तर अथवा प्रकृति में परिवर्तन करती है तब फर्म जो अतिरिक्त लागतें वहन करती है उन्हें वृद्धिशील लागतें कहा जाता है।

   दूसरे शब्दों में, उत्पादन क्षेत्र में नई वस्तु सम्मिलित करने, पुरानी मशीन के स्थान पर नई आधुनिक मशीन लगाने अथवा प्रचलित वितरण के माध्यम को बदलने आदि के कारण वर्तमान लागत में आयी वृद्धि को वृद्धिशील लागत कहा जाता है। इस लागत का एक नई फर्म की स्थापना की दशाओं में उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

   ऐसी लागतें जो व्यावसायिक क्रियाओं के स्तर या प्रकृति में परिवर्तन होने से किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं होती, डूबती लागतें (Sunk Costs) कहलाती हैं।

   वृद्धिशील लागत और डूबती लागत में भेद करना प्रबन्धकीय निर्णयों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। वैकल्पिक प्रयोगों के मूल्यांकन में वृद्धिशील एवं डूबती लागतों के अन्तर का अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि भिन्न-भिन्न विकल्पों के लिए वृद्धिशील लागतें भिन्न-भिन्न होती हैं जबकि डूबती लागतों को विभिन्न विकल्प प्रभावित नहीं करते।

TOUCH 'n PASS

2. **विगत एवं भावी लागतें** (Past Costs and Future Costs)—ऐसे सभी व्ययों को जो वास्तविक हों, जिनका भुगतान कर दिया गया हो तथा जिनकी वित्तीय लेखों में प्रविष्टियाँ कर दी गयी हों, विगत लागत कहते हैं। एक फर्म के उत्पादन सम्बन्धी भविष्य के फैसले करने में ऐसी लागतों का विश्लेषण फर्म के संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन लागतों के विश्लेषण से यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि ये लागतें अनुमानित लागतों से कम हैं अथवा अधिक। इन लागतों के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये लागतें वास्तविक होती हैं तथा इनको कम अथवा अधिक नहीं किया जा सकता।

   इसके विपरीत भावी लागतें पूर्वानुमानित लागतें हैं जो फर्म द्वारा भविष्य की किसी अवधि में वहन की जानी हैं। इन लागतों का प्रबन्धकीय निर्णयों में अत्यन्त महत्त्व होता है क्योंकि फर्म का संगठन इन लागतों का पूर्वानुमान करके इन लागतों को कम करने का प्रयास करता है। इन लागतों का प्रयोग लागत नियन्त्रण, आय पूर्वानुमान, लाभ पूर्वानुमान, पूँजीगत व्ययों के मूल्यांकन, नये उत्पादों एवं विस्तार कार्यक्रम पर निर्णय कीमत सम्बन्धी फैसले आदि क्षेत्रों में किया जाता है।

3. **प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लागतें** (Direct and Indirect Costs)—प्रत्यक्ष लागतें वे लागतें होती हैं जो निर्विवाद रूप से किसी एक उत्पादन अथवा एक भाग अथवा एक प्रक्रिया से सम्बद्ध होती हैं। ऐसी लागतों को सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है और इनमें बँटवारे की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि ये लागतें वस्तु, विधि अथवा उत्पादन विभाग से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं। उदाहरण के लिए, यदि क्षेत्र के आधार पर लागतों की गणना होती है तो एक क्षेत्रीय मैनेजर का वेतन प्रत्यक्ष लागत कहा जायेगा।

   इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष लागतें वे लागतें होती हैं जो प्रत्यक्ष रूप में किसी विभाग, प्रक्रिया अथवा वस्तु से सम्बन्धित नहीं होतीं बल्कि इनका भुगतान एक साथ चुकाया जाता है। इन लागतों में प्रमुख रूप से अनेक वस्तुओं के सामूहिक विज्ञापन का व्यय, संगठनात्मक व्यय आदि सम्मिलित होते हैं।

   प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लागतों में अन्तर करना एक संगठन के लिए इसलिए आवश्यक है क्योंकि इन लागतों के विश्लेषण से संगठन किसी विभाग, प्रक्रिया अथवा वस्तु के उत्पादन के सम्बन्ध में लाभ-हानि का अलग-अलग मूल्यांकन करके यह निर्णय ले सकता है कि किसी विभाग अथवा प्रक्रिया को जारी रखा जाये अथवा बन्द कर दिया जाये, प्रक्रिया का विस्तार किया जाये अथवा संकुचन किया जाये।

4. **सामूहिक उत्पादन लागतें** (Collective Production Costs)—कुछ उद्योगों में एक ही कच्चे माल तथा एक ही उत्पादन प्रक्रिया से एक ही साथ दो या दो से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है। वस्तुओं के उत्पादन को सामूहिक प्रक्रिया की समाप्ति पर ही इन वस्तुओं को अलग-अलग पहचाना जा सकता है। जिस बिन्दु पर सामूहिक उत्पादन से उत्पादित वस्तुएँ पृथक् रूप से पहचानी जाने लगती हैं उस बिन्दु को विच्छेद बिन्दु (Split of Point) कहा जाता है। विच्छेद बिन्दु तक वहन की गई लागतें सामूहिक लागतें कहलाती हैं।

5. **रोकड़ी एवं पुस्तकीय लागतें** (Out-off Pocket Costs and Book Costs)—ऐसी लागतें जिनके लिए वर्तमान में नकद अथवा रोकड़ी भुगतान करना आवश्यक होता है, रोकड़ी लागतें कहलाती हैं। कच्चे माल के खरीदने में होने वाला व्यय, मजदूरी का भुगतान, बिल्डिंग का किराया आदि रोकड़ी लागत के उदाहरण हैं।

   इसके विपरीत, पुस्तकीय लागतें वे होती हैं जिनका फर्म को वर्तमान में नकद भुगतान नहीं करना पड़ता। उदाहरण के लिए, घिसावट (Depreciation) एक पुस्तकीय लागत है जिसे केवल बहीखातों में दिखाया जाता है।

   रोकड़ी एवं पुस्तकीय लागतों का अन्तर फर्म की नकद स्थिति जानने के लिए और व्यवसाय में कोषों की तरलता पर प्रबन्धकीय निर्णय लेने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

6. **नियन्त्रणीय एवं अनियन्त्रणीय लागतें** (Controllable and Uncontrollable Costs)—ऐसी लागतें जो प्रबन्ध एवं संगठन के नियन्त्रण में रहती हैं नियन्त्रणीय लागतें कहलाती हैं। सामान्यत: प्रत्यक्ष अथवा परिवर्तनशील लागतें नियन्त्रणीय होती हैं।

   इसके विपरीत, वे लागतें जिन पर संगठन का अल्पकाल में नियन्त्रण नहीं होता अनियन्त्रणीय लागतें कहलाती हैं। सामान्यत: स्थिर लागतें अनियन्त्रणीय होती हैं।

TOUCH 'n' PASS

7. **प्रतिस्थापन एवं ऐतिहासिक लागतें** (Replacement and Historical Costs)—किसी सम्पत्ति अथवा प्लाण्ट के स्थान पर उसी प्रकार की सम्पत्ति का वर्तमान में क्रय करने के लिए जितने अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है उसे पुरानी सम्पत्ति की प्रतिस्थापन लागतें कहते हैं।
इसके विपरीत, किसी सम्पत्ति की मूल लागत को उसकी ऐतिहासिक लागत कहते हैं। ऐतिहासिक लागत पर ही सम्पत्ति के ह्रास की गणना की जाती है। मुद्रा-स्फीति के युग में प्रतिस्थापन लागत एवं ऐतिहासिक लागत का विचार प्रबन्धकीय निर्णयों की दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है।
8. **अत्यावश्यक एवं स्थगन योग्य लागतें** (Urgent and Postponable Costs)—ऐसी लागतें जो फर्म में उत्पादन कार्य जारी रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक होती हैं और जिनका प्रयोग स्थगन सम्भव नहीं होता, अत्यावश्यक लागतें कहलाती हैं। कच्चा माल, श्रम, ईंधन आदि पर किया जाने वाला व्यय अत्यावश्यक लागतों की सूचना देता है। इसके विपरीत, जिन लोगों को कुछ समय के लिए स्थापित किया जा सकता है के स्थगन योग्य लागतें कहलाती हैं जैसे—फर्म की बिल्डिंग की रंगाई-पुताई, मैनेजर के कमरे के लिए फर्नीचर का क्रय आदि स्थगन योग्य लागों के अंग हैं।
9. **डूबती, तालाबन्दी एवं परित्याग लागतें** (Sunk, Shutdown and Abondonment Costs)—भूतकाल में किया गया ऐसा व्यय जिसे वर्तमान में बदला नहीं जा सकता, डूबती लागत कहा जा सकता है। ये लागतें भूतकाल में लिए गए निर्णयों का परिणाम होती हैं। उदाहरण के लिए, भूतकाल में यदि एक ऐसा प्लाण्ट खरीद लिया गया हो, जिसकी वर्तमान में अथवा भविष्य में कोई आवश्यकता न हो तब उस प्लाण्ट पर व्यय की गई धनराशि को डूबती लागत कहा जायेगा।
तालाबन्दी लागतें वे लागतें हैं जो कुछ समय के लिए उत्पादन को बन्द कर देने की दशा में फर्म को वहन करनी पड़ती हैं। यदि उत्पादन जारी रहता है तब तालाबन्दी लागतें उत्पन्न नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, प्लाण्ट एवं मशीनरी को सुरक्षित रखने में किया जाने वाला व्यय, उत्पादित माल के भण्डार करने पर व्यय आदि तालाबन्दी लागतों के अंग हैं।
यदि किसी उत्पादन प्लाण्ट को सदैव के लिए बन्द कर दिया जाय तो ऐसे प्लाण्ट को हटाने अथवा स्थानान्तरित करने की लागत को परित्याग लागत कहा जाता है। इस प्रकार की लागतें उत्पादन कार्य के स्थायी तौर पर बन्द करने की स्थिति में उपस्थित होती हैं। फर्म के प्रबन्ध में इन लागतों का महत्त्व तब अधिक होता है जब प्लाण्ट को चालू रखने अथवा कुछ समय के लिए बन्द रखने अथवा बिल्कुल ही बन्द कर देने के सम्बन्ध में प्रबन्धकीय निर्णय करने की आवश्यकता हो।
10. **लेखा एवं आर्थिक लागतें** (Accounting and Economic Costs)—फर्म के लाभ-हानि खातों से जिन लागतों का पता चलता है, उसे लेखा लागत कहते हैं। लेखा लागतों का सम्बन्ध भूतकाल से होता है। आर्थिक लागतें वे होती हैं जो अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से उपयोगी होती हैं; जैसे—स्वयं की बिल्डिंग का किराया आर्थिक लागत है लेकिन लेखा लागत नहीं है। इसी तरह से स्वयं की पूँजी का ब्याज आर्थिक लागत है, लेखा लागत नहीं।

**प्र.7. परिवर्तनशील अनुपात के नियम से आप क्या समझते हैं? इस नियम की कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता एवं सीमान्त उत्पादकता की सहायता से व्याख्या कीजिए।**

**What do you understand by law of variable proportions? Explain this law with the help of total productivity, average productivity and marginal productivity.**

**उत्तर**

## उत्पत्ति ह्रास नियम अथवा परिवर्तनशील अनुपात का नियम
## (Law of Diminishing Returns or Law of Variable Proportions)

उत्पत्ति ह्रास नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन का तीसरा नियम है किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री अल्पकालीन उत्पादन फलन के इन तीनों नियमों को उत्पत्ति का एक ही नियम मानते हैं तथा जिसे परिवर्तनशील अनुपात के नियम (Law of Variable Proportion) के नाम से जाना जाता है। आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति के तीनों नियमों को परिवर्तनशील अनुपात के नियम की तीन विभिन्न अवस्थाएँ (Three Different Stages) मानते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने इसी नियम को उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) के नाम से पुकारा था किन्तु **प्रो० मार्शल** द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति ह्रास नियम को केवल कृषि क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया। आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम की क्रियाशीलता को केवल कृषि तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र में इस नियम की क्रियाशीलता को स्वीकार करते हैं।

TOUCH 'n' PASS

## नियम की परिभाषा (Definitions of the Law)

**प्रो० स्टिगलर** (Stigler) के अनुसार, "जब कुछ उत्पत्ति साधनों को स्थिर रखकर एक उत्पत्ति साधन की इकाइयों में समान वृद्धि की जाये तब एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन की उत्पन्न होने वाली वृद्धियाँ कम हो जायेंगी अर्थात् सीमान्त उत्पादन घट जायेगा।"

**श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "उत्पत्ति ह्रास नियम यह बताता है कि यदि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाये तो एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होती है।"

**प्रो० बेन्हम** के अनुसार, "उत्पादन के साधनों के संयोग में एक साधन का अनुपात जैसे-जैसे बढ़ाया जाता है, वैसे-वैसे एक बिन्दु के बाद उस साधन का सीमान्त और औसत उत्पादन घटता जाता है।"

## नियम की व्याख्या (Explanation of Law)

परिवर्तनशील अनुपात नियम को कुल उत्पादकता (TP), औसत उत्पादकता (AP) तथा सीमान्त उत्पादकता (MP) की सहायता से स्पष्ट किया जाता है।

**तालिका**

| स्थिर साधन | परिवर्तनशील साधन TVF | कुल उत्पादकता TP | औसत उत्पादकता $AP = \frac{TP}{TVF}$ | सीमान्त उत्पादकता *MP* | अवस्थाएँ (Stages) |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 1 | 6 | 6 | 6 | I Stage |
| 1 | 2 | 16 | 8 | 10 | (उत्पादन की पहली अवस्था) |
| 1 | 3 | 30 | 10 | 14 | → मोड़ का बिन्दु |
| 1 | 4 | 40 | 10 | 10 | |
| 1 | 5 | 45 | 9 | 5 | II Stage |
| 1 | 6 | 48 | 8 | 3 | (उत्पादन की दूसरी अवस्था) |
| 1 | 7 | 48 | 6.8 | 0 | |
| 1 | 8 | 44 | 5.5 | – 4 | III Stages |
| 1 | 9 | 38 | 4.2 | – 6 | (उत्पादन की तीसरी अवस्था) |

उपर्युक्त तालिका उत्पादन की तीनों अवस्थाओं का स्पष्टीकरण देती है—

**प्रथम अवस्था** में स्थिर साधन के साथ जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की इकाइयाँ प्रयोग में बढ़ायी जाती हैं हमें बढ़ता हुआ उत्पादन प्राप्त होता है जिसका प्रमुख कारण है कि परिवर्तनशील साधन बढ़ने पर स्थिर साधनों का पूर्ण विदोहन (Perfect Utilisation) सम्भव हो पाता है। इसी कारण आरम्भ में कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता तथा सीमान्त उत्पादकता तीनों बढ़ते हैं।

**प्रथम अवस्था** में दो भाग हैं। प्रथम भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता बढ़ती है। परिवर्तनशील साधन की तीसरी इकाई पर सीमान्त उत्पादकता (MP) अधिकतम है। चौथी इकाई के लिए सीमान्त उत्पादकता घट जाती है किन्तु औसत उत्पादकता (AP) बढ़ती ही रहती है। प्रथम अवस्था के आरम्भिक भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं किन्तु द्वितीय चरण में सीमान्त उत्पादकता (MP) घटते हुए होने पर भी औसत उत्पादकता (AP) बढ़ती है। उत्पादन की पहली अवस्था में प्रथम चरण और द्वितीय चरण के बीच के बिन्दु को मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) कहते हैं। प्रथम अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ औसत उत्पादकता (AP) अधिकतम हो जाये। प्रथम अवस्था में आरम्भ से अन्त तक औसत उत्पादकता (AP) निरन्तर बढ़ती हुई है इसलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Increasing Average Returns) अथवा उत्पत्ति के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns Stage) कहा जाता है।

**द्वितीय अवस्था** में औसत उत्पादन (AP) तथा सीमान्त उत्पादन (MP) दोनों घट रहे हैं। इस अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ सीमान्त उत्पादकता (MP) शून्य हो जाती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन (TP) भी बढ़ता है किन्तु घटती दर से बढ़ता है क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन (MP) घट रहा है किन्तु धनात्मक है देखें उपर्युक्त तालिका।

TOUCH 'n' PASS

इस अवस्था में औसत उत्पादन (AP) घटता हुआ होने के कारण इस अवस्था को 'घटते औसत उत्पादन की अवस्था' (Stage of Decreasing Average Product) भी कहा जाता है।

**तृतीय अवस्था** में सीमान्त उत्पादकता शून्य से कम अर्थात् ऋणात्मक हो जाती है।

इसमें सीमान्त उत्पादकता (MP) के ऋणात्मक (Negative) हो जाने के कारण कुछ उत्पादकता (TP) घटने लगती है। तालिका में यह अवस्था प्रदर्शित की गयी है। घटती कुल उत्पादकता तथा ऋणात्मक सीमान्त उत्पादकता के कारण इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' (Stage of Negative Returns) कहा जाता है।

**प्र.8. साधन कीमत रेखा से आपका क्या तात्पर्य है? साधन कीमत रेखा के परिवर्तित रूपों का भी वर्णन कीजिए।**
**What do you mean by factor price line? Also describe the modified forms of the factor price line.**

**उत्तर**

## सम लागत रेखा ( अथवा साधन कीमत रेखा )
## [Iso-Cost Line or (Factor Price Line)]

एक दी हुई सम लागत रेखा एक दिये गये लागत-व्यय (Cost-outlay) के अन्तर्गत उपलब्ध दो उत्पत्ति साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है।

दिए गए चित्र 1 में $RS$, $R_1S_1$ तथा $R_2S_2$ उत्पादक के तीन लागत व्ययों (Cost outlays) को स्पष्ट करती है। $RS$ लागत व्यय ₹200 को बताती है। यदि साधन $X$ की प्रति इकाई कीमत $P_x$ है तो उत्पादक साधन $X$ की अधिकतम $\frac{200}{P_x}$ अर्थात् $OS$ इकाइयाँ खरीद सकेगा। इसी लागत व्यय ₹200 होने पर यदि साधन $Y$ की प्रति इकाई कीमत $P_y$ होने की दशा में वह साधन $Y$ की होने की दशा में वह साधन $Y$ की अधिकतम $\frac{200}{P_y}$ अर्थात् $OR$ इकाइयाँ खरीद सकेगा। इस प्रकार उत्पादक के पास बिन्दु $R$ तथा $S$ के रूप में दो उच्चतम साधन उपलब्धताएँ हैं। यदि इन दोनों बिन्दुओं को मिला दिया जाय तो रेखा $RS$ के रूप में हमें साधन कीमत रेखा अथवा सम लागत रेखा प्राप्त होती है। यदि साधन $X$ तथा साधन $Y$ की कीमतें $P_x$ तथा $P_y$ स्थिर रहें तो लागत व्यय ₹400 हो जाने पर साधन कीमत रेखा $R_1S_1$ तथा लागत व्यय ₹600 हो जाने पर साधन कीमत रेखा $R_2S_2$ हो जाती है। यह सभी साधन कीमत रेखाएँ परस्पर समानान्तर होंगी क्योंकि साधनों की कीमत स्थिर रहते हुए लागत व्यय में परिवर्तन हो रहा है। लागत व्यय जितना अधिक होगा, साधन कीमत रेखा उतनी ही ऊँची होगी अर्थात् साधन कीमत रेखा साधन कीमत स्थिर रहने पर लागत व्यय में वृद्धि के साथ मूल बिन्दु से दूर होती जायेगी (समानान्तर रूप से) तथा लागत व्यय में कमी होने पर समानान्तर रूप से मूल बिन्दु की ओर स्थानान्तरित होती जायेगी। दूसरे शब्दों में, साधन कीमत-स्थिर रहने पर लागत व्यय का परिवर्तन, साधन-कीमत रेखा के ढाल (Slope) में कोई परिवर्तन नहीं करता।

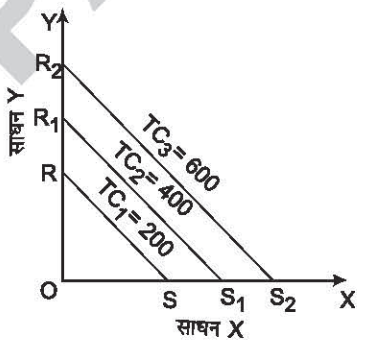

चित्र 1 : सम लागत रेखाएँ

साधन कीमत रेखा $RS$ का ढाल

$$= \text{Tangent of } (180 - \angle OSR)$$
$$= -\text{Tangent of } \angle OSR$$
$$= -\frac{OR}{OS}$$
$$= -\frac{TC_1 / P_y}{TC_1 / P_x}$$

यदि $RS$ रेखा का कुल लागत व्यय $TC_1$ है तब

$$OS = \frac{TC_1}{P_x} \text{ तथा } OR = \frac{TC_1}{P_y}$$

साधन कीमत रेखा का ढाल $= \frac{P_x}{P_y}$ (ऋणात्मक चिह्न केवल घटते-ढाल का सूचक है, अत: हटाया जा सकता है।)

इस प्रकार, साधन कीमत रेखा का ढाल उत्पत्ति साधनों की कीमतों के अनुपात को बताता है (Slope of an Iso-cost line indicates the ratio of the prices of the inputs)।

TOUCH 'n' PASS

साधन कीमत रेखा के दो अन्य परिवर्तित रूप हो सकते हैं जो निम्नलिखित हैं—

**1. लागत व्यय तथा साधन $Y$ की कीमत स्थिर रहें, किन्तु साधन $X$ की कीमत में परिवर्तन ( वृद्धि या कमी ) हो जाये।**

ऐसी दशा में यदि अन्य घटकों (लागत व्यय एवं साधन $Y$ की कीमत) के स्थिर रहने पर साधन $X$ की कीमत में वृद्धि हो जाती है तब साधन कीमत रेखा का $X$-अक्ष का बिन्दु $S$ मूल बिन्दु की ओर बिन्दु $S_1$ पर स्थानान्तरित होगा जबकि $Y$-अक्ष वाला बिन्दु $R$ अपनी जगह स्थिर रहेगा क्योंकि साधन $X$ महँगा (Costly) हो जाने पर उत्पादक उसी लागत व्यय से अब साधन $X$ की कम मात्रा खरीद पायेगा। [देखें चित्र 2(A)]।

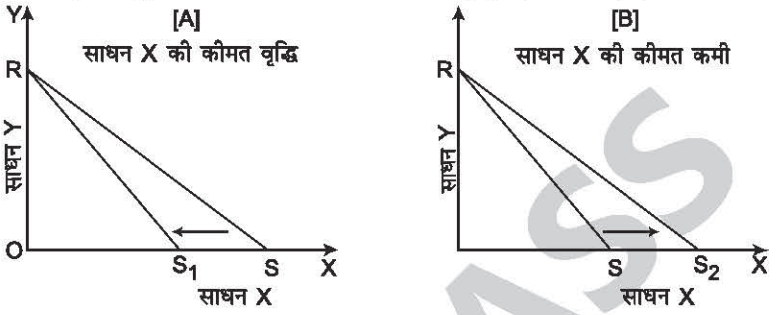


**चित्र 2 : साधन X की कीमत में परिवर्तन**

अन्य घटकों के स्थिर रहते हुए साधन $X$ की कीमत में कमी की दशा में साधन की कीमत रेखा का $X$-अक्ष का बिन्दु $S$ मूल बिन्दु से दूर बिन्दु $S_2$ पर स्थानान्तरित हो जायेगा क्योंकि साधन $X$ के सस्ता होने पर उत्पादक उतने ही लागत व्यय से अब अधिक साधन $X$ की मात्रा खरीद पायेगा [देखें चित्र 2(B)]।

**2. लागत व्यय तथा साधन $X$ की कीमत स्थिर रहें किन्तु साधन $Y$ की कीमत में परिवर्तन ( वृद्धि या कमी ) हो जाये।**

ऐसी दशा में साधन $Y$ की कीमत में वृद्धि होने पर साधन कीमत रेखा का $Y$-अक्ष का बिन्दु $R$ मूल बिन्दु की ओर $R_1$ बिन्दु पर स्थानान्तरित हो जायेगा जबकि साधन कीमत रेखा का $X$-अक्ष का बिन्दु स्थिर रहेगा [देखें चित्र 3(A)]।

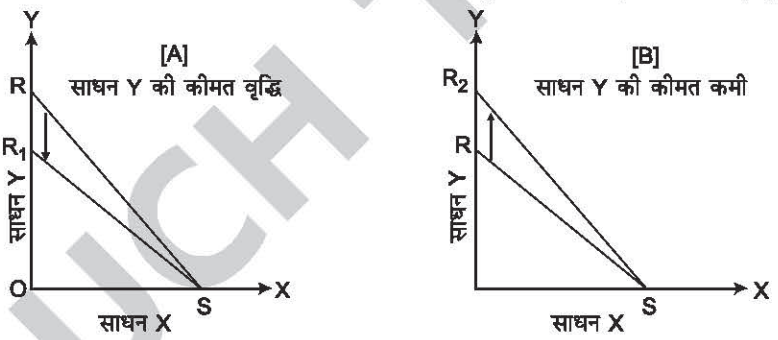


**चित्र 3 : साधन Y की कीमत में परिवर्तन**

साधन $Y$ की कीमत में कमी होने पर साधन कीमत रेखा का $Y$-अक्ष का बिन्दु $R$ मूल बिन्दु से दूर $R_2$ पर स्थानान्तरित हो जायेगा जबकि $X$-अक्ष का बिन्दु अपनी जगह स्थिर रहेगा। [देखें चित्र 3(B)]

**प्र.9. अनुकूलतम साधन संयोग का क्या अर्थ है? अनुकूलतम साधन संयोग को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?**
**What is meant by optimum means combination? How optimum means combination can be achieved?**

**उत्तर**

## साधनों का अनुकूलतम संयोग *अथवा* साधनों का न्यूनतम लागत संयोग *अथवा* उत्पादक का सन्तुलन

## (Optimum Combination of Inputs *Or* Least Cost Combination of Inputs *Or* Producer's Equilibrium)

साधनों का अनुकूलतम संयोग अथवा साधनों का न्यूनतम लागत संयोग से अभिप्राय है कि दिये गये लागत व्यय (Cost Outlay) से किस प्रकार एक उत्पादक उत्पादन की अधिकतम मात्रा प्राप्त करता है। जिस प्रकार उपभोक्ता अपनी सीमित आय की सहायता से दी गयी वस्तु कीमतों के अन्तर्गत अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करता है, ठीक उसी प्रकार एक उत्पादक अपने सीमित लागत व्यय की सहायता से उत्पत्ति साधनों की दी गई कीमतों के साथ अपने उत्पादन को अधिकतम करने का प्रयास करता

TOUCH 'n' PASS

है। एक उत्पादक साधनों का प्रयोग करते हुए साम्य की स्थिति में तब होगा जब वह उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम प्रयोग (Optimum Utilisation) करते हुए अथवा दूसरे शब्दों में, न्यूनतम लागत संयोग (Least Cost Combination) का प्रयोग करते हुए अपने लाभ को अधिकतम करने की स्थिति में हो जाये। उत्पादक के अधिकतम लाभ के बिन्दु का निर्धारण दो तत्त्वों पर निर्भर करता है—

1. साधनों की भौतिक उत्पादकता (Physical Productivity) जिसको समोत्पाद वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, तथा
2. साधनों की कीमतें जिसका प्रदर्शन सम-लागत रेखा अथवा साधन कीमत रेखा द्वारा किया जाता है।

उत्पादक अपने लाभ को निम्नलिखित दो उपायों से अधिकतम कर सकता है—

(A) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो (Minimizing Cost when Output is Given),

(B) उत्पादन अधिकतम करना जबकि उत्पादन व्यय दिया हुआ हो (Maximizing Cost when Outlay is Given)

**(A) लागत को न्यूनतम करना जबकि उत्पादन की मात्रा दी हुई हो**—उत्पादक आपने लाभ को उस स्थिति में अधिकतम कर सकता है जब वह एक निश्चित उत्पादन स्तर प्राप्त करने के लिए साधों के एक ऐसे संयोग का चुनाव करे जिससे उसकी उत्पादन लागत सबसे कम हो सके। ऐसा संयोग ही न्यूनतम लागत संयोग कहा जाता है। चित्र में न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त करने की विधि का वर्णन किया गया है। IP एक समोत्पाद वक्र है जो 200 इकाई के बराबर उत्पादन स्तर को बताता है। यदि उत्पादक 200 इकाई उत्पादन प्राप्त करते हुए अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है तब उसे एक ऐसे साधन संयोग का चुनाव करना पड़ेगा जो उस उत्पादन विशेष को न्यूनतम लागत (Minimum Cost) पर उत्पादित कर सके। समोत्पाद वक्र IP पर साधन संयोग बिन्दु *A, B, E, D* तथा *C* प्रदर्शित किये गये हैं जो एकसमान उत्पादन 200 इकाई उत्पादित करते हैं। संयोग *A* तथा *C* साधन कीमत रेखा $R_3S_3$ पर स्थित हैं जबकि संयोग *B* तथा *D* साधन कीमत रेखा $R_2S_2$ पर स्थित हैं। साधन कीमत रेखा $R_3S_3$ साधन कीमत रेखा $R_2S_2$ की तुलना में ऊँची उत्पादन लागत को स्पष्ट करती है। उत्पादक न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त करने के लिए ऊँची लागत वाली साधन कीमत रेखा $R_3S_3$ को छोड़कर अपेक्षाकृत कम लागत वाली साधन कीमत रेखा $R_2S_2$ पर चला आयेगा क्योंकि दोनों लागत स्तर पर एकसमान उत्पादन मात्रा 200 इकाई का उत्पादन कर रहे हैं। इसी प्रकार उपभोक्ता साधन कीमत रेखा $R_2S_2$ को छोड़कर नीची लागत वाली साधन कीमत रेखा $RS$ पर स्थानान्तरित होगा क्योंकि संयोग बिन्दु *E* भी 200 इकाई उत्पादन दे रहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्पादन न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त करने के लिए ऊँची लागत वाली साधन कीमत रेखा से नीची लागत वाली साधन कीमत रेखा पर तब तक स्थानान्तरित होता रहेगा जब तक समोत्पाद वक्र साधन कीमत रेखा को एक बिन्दु पर स्पर्श न कर ले। चित्र 2 में, यह बिन्दु *E* द्वारा प्रदर्शित किया गया है। उत्पादक बिन्दु *E* पर न्यूनतम लागत पर दिया गया उत्पादन स्तर प्राप्त कर रहा है। उत्पादन स्तर 200 इकाई साधन कीमत रेखा $R_1S_1$ द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता।

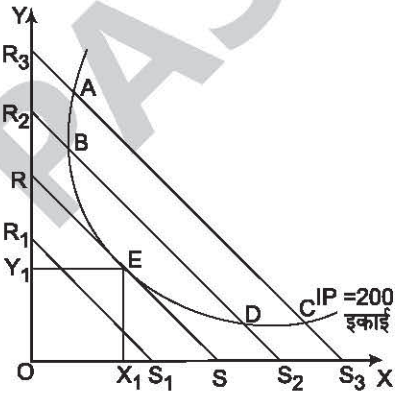

चित्र 1 : न्यूनतम लागत (उत्पादन सन्तुलन)

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि साधन कीमत रेखा तथा समोत्पाद वक्र का स्पर्श बिन्दु ही न्यूनतम लागत संयोग अथवा साधनों के अनुकूलतम संयोग को बताता है जिस पर उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।

**(B) उत्पादन अधिकतम करना जबकि उत्पादन व्यय दिया हुआ हो**—साधन की कीमत रेखा दी होने पर उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से उत्पादन के उच्चतम स्तर पर पहुँचने का प्रयास करता है। ऐसी स्थिति में उत्पादक अपने समोत्पाद मानचित्र के निचले समोत्पाद वक्र से ऊपर के समोत्पाद वक्र पर तब तक बढ़ता जायेगा जब तक साधन कीमत रेखा उसकी अनुमति दे। यह उच्चतम उत्पादन बिन्दु दी गई साधन कीमत रेखा के साथ तब प्राप्त होगा जब दी गई साधन कीमत रेखा समोत्याद वक्र को एक बिन्दु पर स्पर्श करे। चित्र 2 में इस स्थिति का

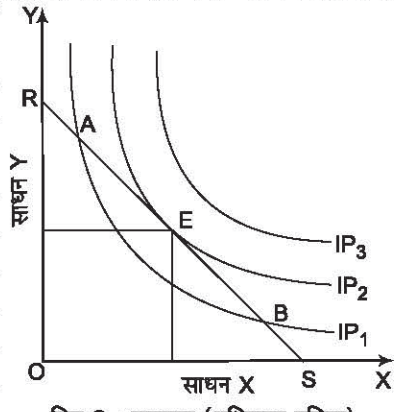

चित्र 2 : उत्पादन (अधिकतम प्रक्रिया)

TOUCH 'n' PASS

वर्णन किया गया है। चित्र में उच्चतम उत्पादन बिन्दु $E$ प्रदर्शित किया गया है। बिन्दु $E$ समोत्पाद वक्र $IP_2$ तथा साधन कीमत रेखा $RS$ का स्पर्श बिन्दु है। कीमत रेखा $RS$ पर दो संयोग बिन्दु $A$ तथा $B$ भी उपलब्ध हैं किन्तु इन संयोग बिन्दु की सहायता से समोत्पाद वक्र $IP_1$ ही प्राप्त कर पाते हैं जो $IP_2$ की तुलना में नीचे उत्पादन स्तर को बताता है। अत: उत्पादक दी गई साधन कीमत रेखा $RS$ के साथ $IP_1$ समोत्पाद वक्र को छोड़कर ऊँचे समोत्पाद वक्र $IP_2$ पर पहुँच जाता है। समोत्पाद वक्र $IP_3$ और ऊँचे उत्पादन स्तर को बताता है किन्तु दी गई साधन कीमत रेखा $RS$ की सहायता से इस उत्पादन स्तर को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

संक्षेप में, सन्तुलन बिन्दु $E$ पर समोत्पाद वक्र को दी गयी साधन कीमत रेखा को स्पर्श करना चाहिए।

दूसरे शब्दों में, सन्तुलन बिन्दु $E$ पर, मात्रात्मक रूप में,

समोत्पाद वक्र का ढाल = साधन कीमत रेखा का ढाल

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

अर्थात् न्यूनतम लागत संयोग उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ साधन $X$ की $Y$ के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर साधन $X$ तथा $Y$ की कीमतों के अनुपात के बराबर होगी।

हम इसी अध्याय में पहले यह बता चुके हैं कि

$$MRTS_{xy} = \frac{MP_x}{MP_y}$$

अत; न्यूनतम लागत संयोग के लिए,

$$MRTS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} = \frac{MP_x}{MP_y}$$

अर्थात्

$$\frac{MP_x}{P_x} = \frac{MP_y}{P_y}$$

दूसरे शब्दों में, न्यूनतम लागत संयोग अथवा अनुकूलतम लागत संयोग उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ साधन $X$ की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन $Y$ की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी कीमत के अनुपात के बराबर हो जाये।

इस प्रकार उत्पादक के सन्तुलन की दशा को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया जा सकता है—

1. सन्तुलन के बिन्दु पर न्यूनतम लागत संयोग प्राप्त होना चाहिए अर्थात् सन्तुलन बिन्दु पर समोत्पाद वक्र द्वारा साधन कीमत रेखा को स्पर्श किया जाना चाहिए।
2. सन्तुलन के बिन्दु पर तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर साधनों की कीमत अनुपात के बराबर होनी चाहिए।
3. सन्तुलन के बिन्दु पर एक साधन की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी कीमत का अनुपात दूसरे साधन की सीमान्त उत्पादकता एवं उसकी कीमत के अनुपात के बराबर होता है।

सन्तुलन की दशा के उपर्युक्त स्पष्टीकरण वस्तुत: सन्तुलन की एक दशा के विभिन्न रूपों को बताते हैं।

**प्र.10. 'अनुपात' एवं 'पैमाने' की अवधारणाओं की व्याख्या कीजिए।**

**Explain the concepts of 'Proportion' and 'Scale'.**

**उत्तर**

## 'अनुपात' एवं 'पैमाने' की अवधारणाएँ
## (Concepts of 'Proportion' and 'Scale')

अनुपात का विचार अल्पकालीन है क्योंकि अल्पकाल में उत्पत्ति के स्थिर साधनों का परिवर्तनशील साधन के साथ अनुपात बदलता रहता है। **उत्पत्ति ह्रास नियम** (Law of Diminishing Returns) इसी 'अनुपात' की विचारधारा पर आधारित है। इस प्रकार, स्थिर साधनों के साथ परिवर्तनशील साधन के निश्चित सहयोग अथवा संयोग को 'अनुपात' कहते हैं।

TOUCH 'n' PASS

'पैमाने' का विचार दीर्घकालीन है क्योंकि दीर्घकाल में स्थिर साधन भी परिवर्तनशील हो जाते हैं तथा उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को आवश्यकतानुसार एवं इच्छानुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

जब उत्पत्ति के साधनों के प्रयोग अनुपात को स्थिर रखकर सभी साधनों में वृद्धि की जाती है अर्थात् जब सभी साधनों को एक ही अनुपात में इस प्रकार बढ़ाया जाता है कि साधनों का प्रयोग अनुपात स्थिर रहता है तब इसे 'पैमाने की वृद्धि' कहा जाता है।

इसी प्रकार, जब उत्पत्ति के साधनों के प्रयोग अनुपात को स्थिर रखकर सभी साधनों में कमी की जाती है तब इसे 'पैमाने की कमी' कहा जाता है।

'अनुपात' एवं 'पैमाने' की अवधारणाओं को चित्रों की सहायता से भी स्पष्ट किया जा सकता है।

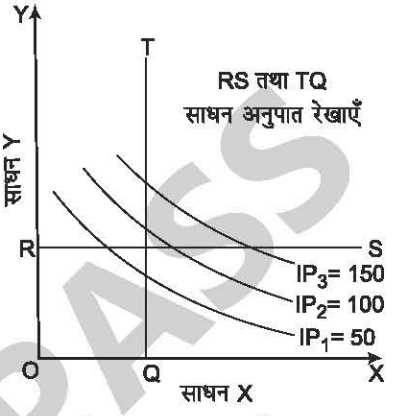

चित्र 1 : अनुपात का विचार

चित्र 1 में, अनुपात की विचारधारा स्पष्ट की गयी है। चित्र में $RS$ रेखा $X$-अक्ष के समानान्तर है जिसमें साधन $Y$ स्थिर है तथा साधन $X$ परिवर्तनशील। यदि उत्पादक उत्पादन को 50 इकाइयों से 150 इकाइयों तक बढ़ाना चाहता है तब उसे $RS$ रेखा पर दायीं ओर चलना पड़ेगा। जैसे-जैसे उत्पादक $RS$ रेखा पर दायीं ओर चलता जाता है वैसे-वैसे साधन $Y$ तथा साधन $X$ का प्रयोग अनुपात बदलता जाता है क्योंकि साधन $Y$ स्थिर रहता है तथा साधन $X$ की मात्रा बढ़ती जाती है। इस प्रकार $RS$ रेखा के विभिन्न बिन्दु साधन $X$ तथा $Y$ के विभिन्न प्रयोग अनुपातों को बतलाते हैं।

इसी प्रकार, $TQ$ रेखा $Y$-अक्ष के समानान्तर एक खड़ी रेखा है जो साधन $X$ की स्थिर मात्रा तथा साधन $Y$ की परिवर्तनशील मात्रा के बदलते अनुपातों को स्पष्ट करती है।

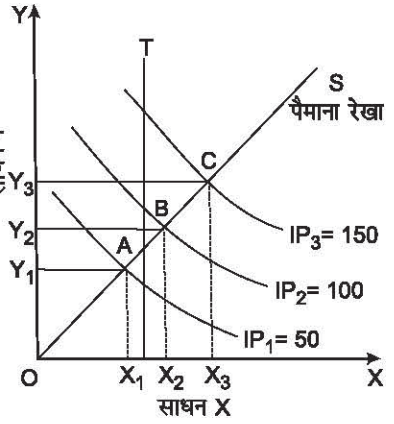

चित्र 2 : पैमाने का विचार

चित्र 2 में पैमाने (Scale) की विचारधारा को स्पष्ट किया गया है। चित्र में $OS$ एक पैमाना रेखा है जो अपने विभिन्न बिन्दुओं पर साधन $X$ तथा साधन $Y$ के एक निश्चित एवं स्थिर प्रयोग अनुपात को बताती है। यदि उत्पादक में 50 इकाइयों से 150 इकाइयों तक वृद्धि करना चाहता है तो साधनों के प्रयोग अनुपात को स्थिर रखते हुए दोनों साधनों की मात्रा में वृद्धि करके अर्थात् पैमाने में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि कर सकता है।

अर्थात् पैमाने में परिवर्तन (कमी अथवा वृद्धि) की दशा में,

$$\frac{OX_1}{OY_1} = \frac{OX_2}{OY_2} = \frac{OX_3}{OY_3} = \text{स्थिर अनुपात}$$

इस प्रकार, मूलबिन्दु से खींची गयी कोई भी रेखा पैमाने (Scale) को बताती है।

**प्र.11. पैमाने के प्रतिफल से आपका क्या तात्पर्य है? पैमाने के प्रतिफल के विभिन्न नियमों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**What do you mean by returns to scale? Explain in detail the various laws of returns to scale.**

**उत्तर**

## पैमाने के प्रतिफल
## (Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल उत्पादन फलन की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को सूचित करते हैं। दीर्घकाल में कोई उत्पत्ति का साधन स्थिर नहीं रहता। सभी उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं तथा उन्हें आवश्यकतानुसार परिवर्तित भी किया जा सकता है। सभी उत्पत्ति साधनों के परिवर्तनशील होने के कारण उत्पादन का पैमाना (Scale of Production) परिवर्तित किया जा सकता है। उत्पादन तकनीक में सुधार, श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण आदि के कारण उत्पादन में आन्तरिक एवं बाह्य बचतें (Internal & External Economies) प्राप्त होती हैं। किन्तु ये आन्तरिक और बाह्य बचतें सदैव स्थायी नहीं रहतीं बल्कि कुछ समय के बाद में बचतें हानियों (Diseconomies) का रूप ले लेती हैं। आरम्भ में ये आन्तरिक एवं बाह्य बचतें पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

TOUCH n PASS

(Increasing Returns to Scale) देती हैं, किन्तु ये बचतें जब हानियों में बदल जाती हैं तो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale) उत्पन्न होते हैं। इन दोनों प्रतिफलों के बीच की कड़ी पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) की है।

## I. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

जब सभी उत्पत्ति के साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढ़ाया जाता है तब पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन उस निश्चित अनुपात से अधिक अनुपात में बढ़ जाता है। इस प्रकार यदि उत्पत्ति साधनों को 10% बढ़ाया जाता है तो उत्पादन में 10% से अधिक की वृद्धि होती है। पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल उत्पादन पैमाने में वृद्धि, श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण उत्पन्न होते हैं। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करता है। पैमाने के आकार में वृद्धि के कारण विशिष्ट एवं अधिक क्षमता वाली मशीनरी का प्रयोग किया जा सकता है। ये सभी घटक पैमाने में वर्द्धमान प्रतिफल उत्पन्न करते है।

इस प्रकार पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल में, उत्पादन में, आनुपातिक वृद्धि > साधनों की मात्रा में आनुपातिक वृद्धि; पैमाने के वर्द्धमान नियम को दूसरे शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। इस नियमानुसार साधनों की निश्चित वृद्धि से क्रमश: अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है अथवा उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए क्रमश: साधनों की घटती मात्रा में वृद्धि की आवश्यकता पड़ेगी, इस कथन को सम उत्पाद वक्र (Iso product Curve) की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 1 में पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल को सम उत्पाद वक्र $IP_1$, $IP_2$, $IP_3$ तथा $IP_4$ की सहायता से प्रदर्शित किया गया है। ये सम उत्पाद वक्र उत्पादन में एक समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) को प्रदर्शित करती है। $OS$ पैमाने (Scale) को प्रदर्शित कर रही है जिस पर उत्पादन किया जा रहा है। सम उत्पादन वक्र पैमाना रेखा $OS$ को क्रमश:

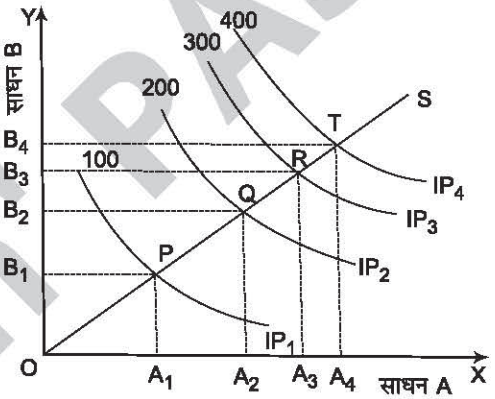

चित्र 1 : पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

बिन्दु $P, Q, R$ तथा $T$ बिन्दु पर काट रहे हैं। ये सभी बिन्दु $P, Q, R$ तथा $T$ दिए गए पैमाने पर क्रमश: 100, 200, 300 तथा 400 इकाई उत्पादन करने के लिए आवश्यक दो उत्पत्ति साधन $A$ तथा $B$ के संयोगों को प्रदर्शित कर रहे हैं। चित्र में $PQ > QR > RT$ है अर्थात् उत्पादन में एक समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) प्राप्त करने के लिए दो साधनों की क्रमश: कम मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी। यही पैमाने का वर्द्धमान नियम है।

## II. पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

इसके अनुसार यदि उत्पत्ति के समस्त साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढ़ाया जाए तो उत्पादन भी उसी निश्चित अनुपात से बढ़ता है। इस प्रकार यदि उत्पत्ति साधनों में 10% वृद्धि की जाती है तो उत्पादन भी 10% बढ़ता है। इसी प्रकार जिस अनुपात में उत्पत्ति साधनों में कमी की जाती है, ठीक उसी अनुपात में उत्पादन में भी कमी हो जाती है।

दूसरे शब्दों में, पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एक समान वृद्धि करने के लिए क्रमश: साधनों की समान मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी। चित्र 2 से स्पष्ट है कि, उत्पादन में समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) के लिए स्थिर अनुपात वाले दो साधनों $A$ तथा $B$ की मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी।

चित्र में, $$PQ = QR = RT$$

जो स्थिर पैमाने के प्रतिफल को स्पष्ट करता है।

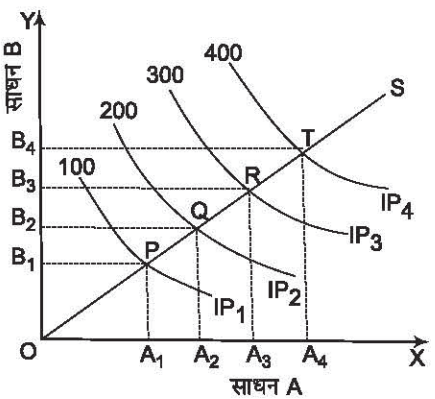

चित्र 2 : पैमाने के स्थिर प्रतिफल

TOUCH 'n' PASS

### III. पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

इसके अनुसार उत्पत्ति के साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया जाता है उससे कम अनुपात में उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन में एक समान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की क्रमशः अधिकाधिक मात्राओं की आवश्यकता होगी। पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल उत्पन्न होने का मुख्य कारण यह है कि पैमाने का आकार बहुत बड़ा हो जाने के कारण उत्पादन कार्य में कठिनाई अनुभव करता है और आन्तरिक एवं बाह्य बचतें इस दशा में आन्तरिक एवं बाह्य हानियों में परिवर्तित हो जाती हैं जिसके कारण पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

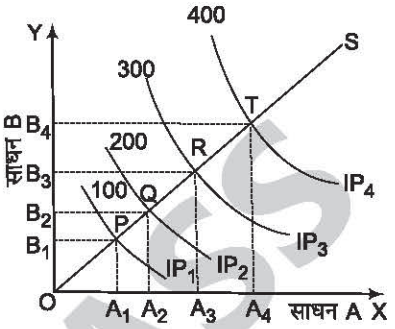

चित्र 3 : पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

चित्र 3 में, स्पष्ट किया गया है कि उत्पादन में समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) के लिए बढ़ते अनुपात में उत्पत्ति के साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। चित्र में,

$$PQ < QR < RT$$

जो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल को स्पष्ट करता है।

**पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल में,**

**उत्पादन में आनुपातिक परिवर्तन < साधनों की मात्रा में आनुपातिक वृद्धि**

तीनों पैमाने के प्रतिफलों को सम उत्पाद वक्रों की सहायता से एक ही चित्र में प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें चित्र 4)। चित्र में $OS$ पैमाना रेखा है। इस रेखा को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(i) बिन्दु $P$ से बिन्दु $S$ तक →

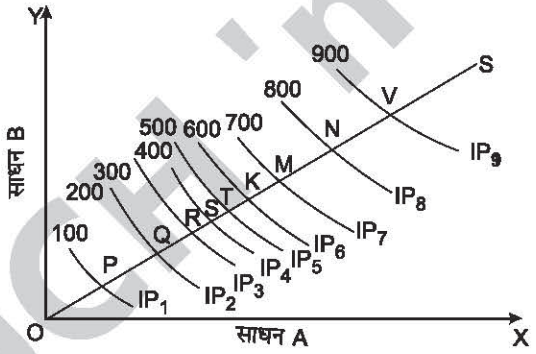

चित्र 4 : पैमाने के प्रतिफल

$$PQ > QR > RS$$

अर्थात् पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

(ii) बिन्दु $S$ से बिन्दु $K$ तक →

$$ST = TK$$

अर्थात् पैमाने के स्थिर प्रतिफल

(iii) बिन्दु $K$ से बिन्दु $V$ तक →

$$KM < MN < NV$$

अर्थात् पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

**प्र.12. उद्योग को प्राप्त होने वाली उत्पादन मितव्ययताओं को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है?**
**Into how many parts can be production economy classified?**

**उत्तर**

## उत्पादन मितव्ययताएँ
## (Production Economies)

उद्योग को प्राप्त होने वाली उत्पादन सम्बन्धी मितव्ययताओं को अग्र दो भागों में बाँटा जा सकता है—

TOUCH 'n PASS

## आन्तरिक मितव्ययताएँ ( अथवा बचतें ) (Internal Economies)

बड़े पैमाने के उत्पादन की आन्तरिक मितव्ययताएँ उद्योग के भीतर ही प्राप्त होती हैं। इन बचतों के बारे में **मार्शल** का कहना है कि "आन्तरिक मितव्ययताएँ वे हैं जो किसी एक फर्म को उसकी आन्तरिक कुशलता तथा व्यवस्था आदि की श्रेष्ठता के कारण होती हैं।" उद्योग की आन्तरिक बचतें निम्नलिखित हैं—

**( अ ) तकनीकी बचतें**—एक उद्योग की तकनीकी बचतों को निम्न चार भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **श्रेष्ठ तकनीकी बचतें** (Technical Economies)—छोटे पैमाने के उत्पादन की अपेक्षा बड़े पैमाने के उत्पादन को श्रेष्ठ तकनीकी बचतें प्राप्त होती हैं, क्योंकि उद्योग में उच्चकोटि की मशीनों व उपकरणों का उपयोग किया जाता है। भले ही ऐसे उत्पादन में मशीनों की लागत ऊँची होती है, परन्तु इनके द्वारा जो उत्पादन किया जाता है, वह आकार में बहुत अधिक होता है। यहाँ 'महँगी मजदूरी सस्ती मजदूरी' के कथन को चरितार्थ करता है। उदाहरणार्थ, बड़े उद्योग में लगाई जाने वाली स्वचालित मशीनों, इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटिंग मशीनों आदि से बड़े पैमाने का उद्योग ही लाभ कमा सकता है।
2. **बड़े आयाम की बचतें** (Economies of Increased Dimension)—उद्योग में कुछ ऐसी दशाएँ होती हैं जिसमें केवल बड़ी मशीनों का प्रयोग किया जाता है, जिनके प्रयोग से उद्योग को बचतें प्राप्त होती हैं।
3. **विशिष्टीकरण की बचतें** (Economies of Specialisation)—एक छोटी फर्म की अपेक्षा बड़ी फर्म में श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण की अधिकाधिक सम्भावनाएँ होती हैं। जिस कारखाने का विस्तार जितना बड़ा होगा, उसमें श्रम-विभाजन की उतनी ही अधिक सम्भावनाएँ होंगी। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में कमी आएगी और उद्योग को लाभ होगा।
4. **सह-क्रियाओं का प्रयोग** (Use of Linked Processes)—बड़े पैमाने के उत्पादन में सह-क्रियाओं के लिए किसी दूसरी फर्म पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। उदाहरणार्थ, चीनी के उद्योग में अनेकानेक प्रकार की सह-क्रियाओं को स्वयं कर लिया जाता है। जैसे, मिलों के द्वारा गन्ने की फसल बोना तथा काटना, ताकि मिलों को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध हो सके।

**( ब ) प्रबन्ध सम्बन्धी बचतें** (Managerial Economies)—बड़े पैमाने के उद्योग में प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था को अनेक भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक विभाग को वह काम दिया जाता है, जिसमें उसे दक्षता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, लेखा-विभाग, विज्ञापन व प्रसारण विभाग, बिक्री और खरीद विभाग आदि। इसे कार्यात्मक विशिष्टीकरण भी कहा जाता है। इस विभाजन से प्रत्येक विभाग की कार्यकुशलता बढ़ती है और उत्पादन भी बढ़ने लगता है।

**( स ) बाजार सम्बन्धी मितव्ययताएँ** (Marketing Economies)—बाजार सम्बन्धी मितव्ययताएँ सामान की खरीद-फरोख्त से प्राप्त होती हैं। जब एक फर्म बड़े पैमाने पर कच्चे माल को क्रय करती है, तब वह उस माल को थोक में कुछ कम कीमत पर क्रय कर लेती है। इसके अतिरिक्त, वस्तु की बिक्री के लिए अनेक प्रकार के अनुसन्धान आदि किए जाते हैं, जिससे बिक्री काफी बढ़ जाती है।

**( द ) वित्तीय मितव्ययताएँ** (Financial Economies)—एक बड़े उद्योग को अनेक प्रकार से वित्तीय बचतें प्राप्त हो सकती हैं। बड़े पैमाने के उद्योग में बड़े पैमाने की पूँजी भी लगाई जाती है। बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से जब ये उद्योग ऋण प्राप्त करते हैं, तो इन्हें कम ब्याज पर ऋण प्राप्त हो जाता है। इसलिए इन उद्योगों में लगाई जाने वाली पूँजी की सीमान्त-उत्पादकता अधिक होती है, जिसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने के उत्पादन को छोटे पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त होता है।

**( य ) जोखिम सम्बन्धी मितव्ययताएँ** (Risk-bearing Economies)—छोटे उद्योग की अपेक्षा बड़े उद्योगों में जोखिम झेलने की क्षमता अधिक होती है। इसका मुख्य कारण है जोखिम का अनेकानेक भागों में बँटा रहना, इसके अतिरिक्त इन उद्योगों के द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को विभिन्न प्रकार के बाजारों में बेचकर हानि को कम कर लिया जाता है।

## बाह्य मितव्ययताएँ ( अथवा बचतें ) (External Economies)

बाह्य मितव्ययताएँ वे हैं जो प्राय: समान रूप से किसी उद्योग की सभी फर्मों को उपलब्ध होती हैं। इन बचतों के सम्बन्ध में **प्रो० चैपमैन** (Chapman) का कहना है कि "बाह्य बचतें वे होती हैं जिनमें उद्योग विशेष के सभी व्यवसायियों का भाग होता है।" इस सम्बन्ध में **प्रो० केरनक्रास** (Cairncrass) का कहना है कि "बाह्य मितव्ययताएँ वे मितव्ययताएँ हैं, जो अनेक फर्मों या उद्योग को प्राप्त होती हैं, जबकि एक उद्योग में या उद्योगों के समूह में उत्पादन का पैमाना बढ़ता है।"

जब कभी किसी क्षेत्र-विशेष में बैंक, पोस्ट ऑफिस, तारघर, रेल लाइन तथा यातायात के साधनों को खोला जाता है, तो इससे सभी इकाइयों को बाह्य मितव्ययताएँ प्राप्त हो जाती हैं। ये लाभ उस क्षेत्र-विशेष की लगभग सभी फर्मों को मिलते रहते हैं। इस सन्दर्भ में **मार्शल** का कहना है कि "बाह्य मितव्ययताएँ उद्योगों के समान विकास पर निर्भर होती हैं। जैसे-जैसे किसी उद्योग-विशेष का विकास होता है, वैसे-वैसे वे मितव्ययताएँ भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगती हैं।"

बाह्य मितव्ययता के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

**( अ ) केन्द्रीकरण की बचतें** (Economies of Concentration)—बड़े पैमाने के उत्पादन में उद्योग-धन्धों को केन्द्रीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं। किसी स्थान विशेष पर जब अनेकानेक उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं, तब वहाँ लगभग सभी उद्योगों को यातायात व परिवहन की सुविधाएँ, सस्ता श्रम, कच्चे माल की उपलब्धता, श्रमिकों को प्रशिक्षित करने सम्बन्धी सुविधाएँ आदि मिलने लगती हैं।

**( ब ) सूचना एवं सन्देश सम्बन्धी लाभ** (Economies of Information)—बड़े पैमाने के उत्पादन में व्यापार सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगती हैं, जिससे लोगों को बाजार की जानकारी, कच्चे माल की उपलब्धि तथा उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले नए-नए प्रयोगों का ज्ञान होता है।

**( स ) कच्चे माल सम्बन्धी लाभ** (Economies of Material)—यदि कोई उद्योग अन्य उद्योगों से अलग स्थापित होता है, तब उसे कच्चे माल का भारी स्टॉक रखना होता है, क्योंकि उसे भय रहता है कि आवश्यकता के समय उसे कच्चा माल उपलब्ध नहीं हो सकता है, इसके विपरीत, जब एक साथ कई उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं, तब वहाँ कच्चे माल की उपलब्धता अधिक होती है। कच्चे माल की माँग बढ़ जाने से इन स्थानों में कच्चा माल कोने-कोने से आने लगता है। प्राय: इन उद्योगों को आसानी से सस्ते दामों पर कच्चा माल उपलब्ध होने लगता है।

**( द ) विशेषज्ञों की सेवा का लाभ** (Economies of Specialisation)—जब एक स्थान विशेष पर बहुत सारी फर्में केन्द्रित होती हैं, तब वहाँ उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित विशिष्ट कार्य को किसी विशेष संस्था या व्यक्ति को सौंप दिया जाता है। जैसे, मशीनों की मरम्मत का कार्य फर्म के द्वारा न करके किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना, जो इसका विशेषज्ञ हो और वह अपनी विशिष्टता के आधार पर केवल मशीनों को सुधारने का ही कार्य करेगा। अत: उद्योगों को आसानी से विशेषज्ञों का लाभ मिल जाता है।

❑

TOUCH 'n PASS

# UNIT-III

# बाजार संरचना एवं कीमत
# Market Structure and Price

## खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. बाजार से आपका क्या तात्पर्य है?**
**What do you mean by market?**

**उत्तर** एक ऐसा स्थान जहाँ वस्तु के क्रेता और विक्रेता भौतिक रूप में उपस्थित होकर वस्तुओं का आदान-प्रदान करते हैं, बाजार कहलाता है।

**प्र.2. प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।**
**Classify the market on the basis of competition.**

**उत्तर** प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का वर्गीकरण निम्न रूप में किया जा सकता है—

**प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का वर्गीकरण**

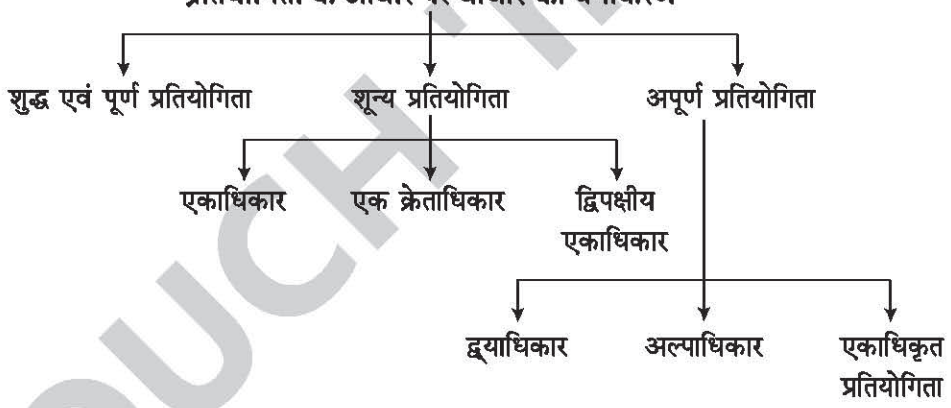


**प्र.3. कीमत से आप क्या समझते हैं?**
**What do you understand by price?**

**उत्तर** किसी वस्तु अथवा सेवा की एक निश्चित मात्रा तथा गुणवत्ता के लिए जो धनराशि देनी पड़ती है वह उसकी कीमत कहलाती है।

**प्र.4. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की परिभाषा लिखिए।**
**Write the definition of perfect competition market.**

**उत्तर** **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "जब प्रत्येक उत्पादक की वस्तु की माँग पूर्णत: लोचदार होती है तो वह बाजार पूर्ण प्रतियोगी बाजार कहलाता है।"

**प्र.5. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention any four characteristics of perfect competition market.**

**उत्तर** पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. क्रेताओं और विक्रेताओं की अधिक संख्या।

TOUCH 'n PASS

2. वस्तु की समान इकाइयाँ।
3. बाजार दशाओं का पूर्ण ज्ञान एवं
4. स्वतन्त्र व्यापार नीति।

**प्र.6. मार्शल के अनुसार, समय को कितनी अवधियों में वर्गीकृत किया जा सकता है?**
**According to Marshall, time can be classified into how many periods?**

**उत्तर** मार्शल ने समय को तीन अवधियों में वर्गीकृत किया है—
1. अति अल्पकाल अथवा बाजार काल
2. अल्पकाल
3. दीर्घकाल।

**प्र.7. सुरक्षित कीमत का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of reserve price?**

**उत्तर** प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु की एक न्यूनतम कीमत (minimum price) तय करता है तथा इस कम कीमत पर वह पूर्ति रोक देता है। यही न्यूनतम कीमत सुरक्षित कीमत कहलाती है।

**प्र.8. बाजार कीमत एवं सामान्य कीमत के मध्य कोई दो अन्तर लिखिए।**
**Write any two differences between market price and normal price.**

**उत्तर** बाजार कीमत एवं सामान्य कीमत के मध्य अन्तर—
1. बाजार कीमत पूर्ण प्रतियोगी बाजार दशा में अति अल्पकाल में निर्धारित होती है जबकि सामान्य कीमत पूर्ण प्रतियोगी बाजार में दीर्घकाल में निर्धारित होती है।
2. बाजार कीमत वास्तव में बाजार में प्रचलित होती है जबकि सामान्य कीमत काल्पनिक होती है।

**प्र.9. एकाधिकार की कोई एक परिभाषा लिखिए।**
**Write any one definition of monopoly.**

**उत्तर** **प्रो० मैक्कॉनल** के अनुसार, "शुद्ध एकाधिकार की स्थिति उस समय होती है जब एक अकेली फर्म एक वस्तु की एकमात्र उत्पादक होती है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं होता।"

**प्र.10. एकाधिकार की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention any four characteristics of monopoly.**

**उत्तर** एकाधिकार की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—
1. एक विक्रेता और अधिक क्रेता।
2. अधिकतम लाभ अर्जन की प्रवृत्ति।
3. माँग चक्र का ऋणात्मक ढाल एवं
4. एकाधिकारी स्वयं कीमत निर्धारक।

**प्र.11. एकाधिकार के कितने प्रकार हो सकते हैं?**
**How many types of monopoly can be there?**

**उत्तर** एकाधिकार के प्रकार—
1. कानूनी एकाधिकार।
2. प्राकृतिक एकाधिकार।
3. पूर्ण एकाधिकार एवं अपूर्ण एकाधिकार।
4. सामाजिक एकाधिकार।
5. औद्योगिक ऐच्छिक एकाधिकार एवं
6. लागत/बाजार एकाधिकार।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.12. कीमत विभेद की परिभाषा लिखिए।**
**Write the definition of price discrimination.**

**उत्तर** प्रो० स्टिगलर के शब्दों में, "एक ही वस्तु को दो या दो से अधिक कीमतों पर बेचे जाने की क्रिया को कीमत विभेद कहा जाता है।"

**प्र.13. कीमत विभेद की सफलता की शर्तों को लिखिए।**
**Write the conditions for success of price discrimination.**

**उत्तर** कीमत विभेद की सफलता की दो शर्तें निम्नलिखित हैं—

1. बाजारों को पृथक् रखा जाये।
2. बाजारों में माँग की लोच एकसमान नहीं होनी चाहिए।

**प्र.14. अल्पाधिकार से आपका क्या तात्पर्य है?**
**What do you mean by oligopoly?**

**उत्तर** जब उद्योग में कुछ फर्में एक समान वस्तुएँ (जो पूर्ण स्थानापन्न न होकर निकट स्थानापन्न होती हैं) उत्पादित करती हैं तो अपूर्ण प्रतियोगिता की इस स्थिति को अल्पाधिकार कहा जाता है।

**प्र.15. अल्पाधिकार की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the characteristics of oligopoly.**

**उत्तर** अल्पाधिकार की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. अल्प विक्रेता,
2. परस्पर निर्भरता,
3. विज्ञापन,
4. प्रतियोगिता एवं
5. माँग वक्र की अनिश्चितता।

## खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. बाजार की परिभाषा देते हुए बाजार की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Giving definition of market state the characteristics of market.**

**उत्तर**

### बाजार की परिभाषा
### (Definition of Market)

बाजार शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गयी हैं, इनमें से प्रमुख परिभाषाओं को नीचे दिया जा रहा है—

1. **प्रो० सिजविक** (Prof. Sidgwick) के अनुसार, "बाजार व्यक्तियों के समूह या समुदाय को कहते हैं जिनके बीच इस प्रकार के पारस्परिक वाणिज्यिक सम्बन्ध हों कि प्रत्येक व्यक्ति को सुगमता से इस बात का पूर्ण ज्ञान हो जाय कि दूसरे व्यक्ति समय-समय पर कुछ वस्तुओं व सेवाओं का विनिमय किन मूल्यों पर करते हैं।"
2. **कूर्नो** (Cournot) के अनुसार, "अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का अर्थ किसी एक ऐसे स्थान विशेष से नहीं लगाया जाता है जहाँ वस्तुओं का क्रय-विक्रय किया जाता है वरन् उस समस्त क्षेत्र से होता है, जिसमें वस्तु के समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार स्वतन्त्र सम्पर्क होता है कि वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति शीघ्रता व सुगमता से समान होने की पायी जाती है।"
3. **प्रो० जेवन्स** के अनुसार, "बाजार शब्द का इस प्रकार सामान्यीकरण किया गया है कि इसका आशय व्यक्तियों के उस समूह से लिया जाता है जिसका परस्पर व्यापारिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो और जो वस्तु के बहुत-से सौदे करे।"

### बाजार की विशेषताएँ (Characteristics of Market)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बाजार की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **एक मूल्य** (One Price)—बाजार में जब क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता होती है. तब वस्तु के मूल्य में समानता होने की प्रवृत्ति होती है।
2. **स्वतन्त्र प्रतियोगिता** (Competition)—बाजार के लिए यह आवश्यक है कि क्रेता और विक्रेता के बीच स्वतन्त्र प्रतियोगिता होनी चाहिए। अर्थात् सौदा करते समय किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।
3. **क्रेता एवं विक्रेता** (Buyers and Sellers)—क्रेता तथा विक्रेता दोनों ही बाजार के अभिन्न अंग होते हैं, चाहे उनकी संख्या कितनी ही क्यों न हो। अत: क्रेता अथवा विक्रेता में से किसी एक की अनुपस्थिति में बाजार की कल्पना नहीं की जा सकती है।
4. **एक वस्तु** (One Commodity)—यद्यपि व्यवहार में कई वस्तुओं का एक ही बाजार होता है, लेकिन अर्थशास्त्र में एक वस्तु का एक ही बाजार होता है। उदाहरण के लिए, अनाज मण्डी, सब्जी मण्डी, लोहा मण्डी आदि। दूसरे शब्दों में, जितनी वस्तुएँ होती हैं, अर्थशास्त्र में उतने ही बाजार होते हैं।
5. **एक क्षेत्र** (One Area)—अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र विशेष के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि उस क्षेत्र से है जहाँ क्रेता और विक्रेता फैले हुए होते हैं तथा उनमें आपस में प्रतियोगिता होती है।

**प्र.2. कार्य, वैधानिकता एवं वस्तु की प्रकृति के आधार पर बाजार का वर्णन कीजिए।**
**Describe the market on the basis of work, legality and nature of the commodity.**

**उत्तर**

## बाजार का वर्गीकरण
## (Classification of Market)

**I. कार्य के आधार पर बाजार का वर्गीकरण** (Classification of Market on the basis of Function)—कार्य के आधार पर बाजार को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **श्रेणियों के आधार पर बाजार** (Marketing by Grades)—वर्तमान समय में ग्रेड के द्वारा वस्तु के क्रय-विक्रय को बहुत अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। इस व्यवस्था में वस्तु को कई वर्गों या ग्रेडों में बाँट दिया जाता है और इन्हीं ग्रेडों के आधार पर वस्तु का सौदा किया जाता है। उदाहरण के लिए, बहुत-से देशों में गेहूँ, कपास, टिन आदि का व्यापार ग्रेडिंग प्रणाली के आधार पर सम्पन्न किया जाने लगा है।
2. **नमूनों द्वारा बाजार** (Marketing by Sampling)—वर्तमान समय में बड़े पैमाने का क्रय-विक्रय नमूनों के आधार पर किया जाने लगा है। माल बेचने वाली मिलों व फर्मों के द्वारा अपने प्रतिनिधियों को वस्तुओं के नमूने दे दिये जाते हैं, और वे उन नमूनों को दिखाकर माल का ऑर्डर बुक कर लेते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था कपड़े, ऊन तथा रंग-पेण्ट आदि में अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है।
3. **मिश्रित बाजार** (Mixed Market)—जब एक ही बाजार में एक से अधिक वस्तुओं या मिली-जुली वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है, तब उस बाजार को मिश्रित बाजार या सामान्य बाजार (General Market) कहा जाता है।
4. **विशिष्ट बाजार** (Specialised Market)—कभी-कभी किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण कुछ वस्तुओं का बाजार एक साथ कुछ क्षेत्रों में या स्थानों में केन्द्रित हो जाता है, इसे विशिष्ट बाजार कहा जाता है। उदाहरण के लिए, जहाँ सभी दुकानें सुनारों की होंगी उसे जौहरी बाजार, सर्राफों के क्रय-विक्रय वाले बाजार को सर्राफा कहा जायेगा। विशिष्ट बाजार में केवल एक ही वस्तु का क्रय-विक्रय होता है।

**II. वैधानिकता के आधार पर वर्गीकरण** (Classification on the basis of Legality)—वैधानिकता के आधार पर बाजार को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **अवैध बाजार** (Illegal Market)—जब किसी वस्तु का क्रय-विक्रय सरकार द्वारा निर्धारित कीमत से कम या अधिक होता है, तब उस बाजार को अवैध बाजार कहा जाता है।
2. **उचित बाजार** (Fair Market)—जब किसी बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय सरकारी हस्तक्षेप से किया जाता है और उपभोक्ताओं को वस्तुएँ उचित कीमत पर मिल जाती हैं, तो उसे उचित बाजार कहा जाता है।

**III. वस्तु की प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण** (Classification on the basis of Nature of the Commodity)—वस्तु की प्रकृति के आधार पर बाजार को तीन भागों में बाँटा जाता है—

1. **धातु बाजार** (Bullion Market)—जिस बाजार में सोने-चाँदी के क्रय-विक्रय के सौदे होते हैं, उसे धातु बाजार कहते हैं।

TOUCH 'n PASS

2. **स्कन्ध बाजार** (Stock Market)—जिस बाजार में अंश, प्रतिभूतियों तथा स्टॉक आदि के सौदे होते हैं, उसे स्कन्ध बाजार कहते हैं।
3. **उपज बाजार** (Produce Market)—जिस बाजार में उत्पादित वस्तुओं के क्रय-विक्रय के सौदे होते हैं, उसे उपज बाजार कहा जाता है।

**प्र.3. विशुद्ध एकाधिकार से आप क्या समझते हैं? इसकी दशाओं का भी उल्लेख कीजिए।**
**What do you understand by pure monopoly? Also mention its conditions.**

**उत्तर**

## विशुद्ध एकाधिकार
## (Pure Monopoly)

विशुद्ध प्रतियोगिता की विपरीत स्थिति को विशुद्ध एकाधिकार कहा जाता है। विशुद्ध एकाधिकार की दशा तब होती है, जब बाजार में प्रतियोगिता का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। विशुद्ध एकाधिकार की स्थिति को स्पष्ट करते हुए **फर्गुसन** ने लिखा है कि "विशुद्ध एकाधिकार तब होता है जब वस्तु को एक और केवल एक ही फर्म के द्वारा पैदा किया जाता हो या बेचा जाता हो।" दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि "विशुद्ध एकाधिकार एक फर्म वाला उद्योग है, जहाँ एकाधिकार फर्म की वस्तु तथा अर्थव्यवस्था में किसी अन्य वस्तु के बीच आड़ी माँग की लोच (Cross Elasticity of Demand) शून्य होती है।"

### विशुद्ध एकाधिकार की दशाएँ (Conditions for Pure Monopoly)

विशुद्ध एकाधिकार में निम्न बातें प्रमुख रूप से पायी जाती हैं—

1. एकाधिकारी फर्म के द्वारा उत्पादित वस्तु की आड़ी माँग की लोच (Cross Elasticity of Demand) शून्य होती है। अत: एकाधिकारी के द्वारा उत्पादित वस्तु की अन्य कोई भी वस्तु 'निकट स्थानापन्न' नहीं होती है।
2. वस्तु का केवल एक ही विक्रेता होता है अथवा वस्तु एक ही फर्म द्वारा तैयार की जाती है। उस वस्तु के उत्पादन में शेष फर्मों का कोई योगदान नहीं होता है अत: एकाकी फर्म विशुद्ध एकाधिकारी का उदाहरण हो सकती है।
3. एकाधिकारी उद्योग के असामान्य लाभ को देखते हुए भी बाहर से कोई नयी फर्म उद्योग में प्रवेश नहीं करती है। अत: एकाधिकारी की स्थिति पूर्णतया सुरक्षित रहती है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त एकाधिकार के सम्बन्ध में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

1. एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।
2. एकाधिकारी की माँग वक्र ऋणात्मक ढाल का होता है।
3. एकाधिकारी को प्रतियोगिता का भय न होने तथा उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की स्थानापन्न वस्तुओं के न होने के कारण विज्ञापन व्यय नहीं होता है।
4. एकाधिकारी को भविष्य की सम्भावित प्रतियोगिता का भय अवश्य रहता है।
5. एकाधिकारी को प्रत्यक्ष प्रतियोगिता का भय नहीं रहता है, पर उसे परोक्ष प्रतियोगिता का भय अवश्य होता है।
6. एकाधिकार में उद्योग तथा फर्म का माँग तथा पूर्ति वक्र एक होता है, क्योंकि फर्म ही उद्योग की स्थिति होती है।

**प्र.4. पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग एवं फर्म के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।**
**Explain the relationship between industry and under perfect competition.**

**उत्तर**

## पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग एवं फर्म का सम्बन्ध
## (Relation between Industry and Firm under Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता में एक उत्पादक के लिए वस्तु की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। फर्म की अपनी कोई मूल्य नीति नहीं होती है। कोई भी फर्म मूल्य निर्धारण करने वाली (Price-maker) नहीं होती है, बल्कि वह मूल्य ग्रहण करने वाली (Price-taker) होती है। प्रत्येक फर्म एक दिये हुए मूल्य पर वस्तु की मात्रा की संयोजनकर्त्ता (Quantity adjuster) होती है। बाजार में वस्तु का मूल्य निर्धारण उद्योग में सामूहिक रूप में माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा होता है और प्रत्येक फर्म उस मूल्य को दिया हुआ मानकर अपनी बेची जाने वाली मात्रा का निर्धारण करती है। इस व्याख्या को चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र के पैनल (अ) में $DD$ और $SS$ उद्योग की माँग और पूर्ति रेखाएँ हैं। माँग और पूर्ति का साम्य $E$ बिन्दु पर होता है जहाँ वस्तु की कीमत $OP$ व वस्तु की मात्रा $ON$ है। पैनल (ब) में $P'D$ प्रतियोगी फर्म का व्यक्तिगत माँग वक्र है जो एक क्षैतिज रेखा है। यही

सीमान्त आय रेखा भी है *OP'* कीमत पर एक फर्म वस्तु की जितनी चाहे उतनी मात्रा बेच सकती है। इस प्रकार कीमत का निर्धारण उद्योग में होता है और एक फर्म उस निर्धारित कीमत पर अपनी उत्पादित वस्तुओं को बेचती है।

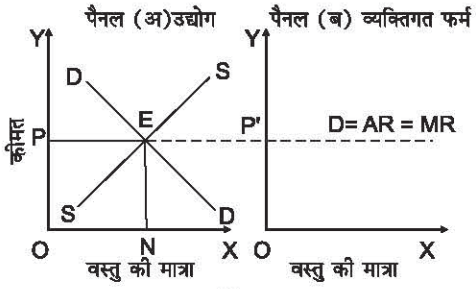


चित्र

**प्र.5. वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता का क्या स्थान है?**
**What is the place of perfect competition in real life?**

**उत्तर**

## वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता का स्थान
## (Place of Perfect Competition in Real Life)

पूर्ण प्रतियोगिता का वास्तविक जगत् में कोई स्थान नहीं है। यह बाजार संरचना व्यावहारिकता से बहुत दूर है। पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें इसे अव्यावहारिक और अवास्तविक बनाती हैं—

1. पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तों के अनुसार वस्तुएँ एकसमान (Homogeneous Product) होती हैं। वस्तुत: फर्में वास्तविक जगत् में एकसमान वस्तुएँ नहीं बल्कि निकट स्थानापन्न वस्तुएँ (Closely Substitute Goods) बनाती हैं। इस प्रकार वास्तविक जीवन में वस्तु विभेद (Product Discrimination) की दशा उत्पन्न होती है।
2. क्रेता एवं विक्रेताओं को सदैव बाजार का पूर्ण ज्ञान होगा, यह आवश्यक नहीं। यह मान्यता भी अव्यावहारिक है।
3. 'उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण गतिशील होना' यह मान्यता भी पूर्ण प्रतियोगिता को काल्पनिक बनाती है।
4. वास्तविक जगत् में एक वस्तु के अनेक उत्पादक नहीं होते वरन् थोड़े उत्पादक होते हैं। प्रत्येक उत्पादक वास्तविकता में कीमत प्रभावित कर सकता है।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता को काल्पनिक कहा जा सकता है। दैनिक एवं आधुनिक जगत् में यह दुर्लभ (Rare) बाजार दशा है। इसे काल्पनिक की संज्ञा देने पर भी हम निम्नलिखित तीन कारणों से इसका अध्ययन करते हैं—

1. पूर्ण प्रतियोगिता अध्ययन की हमें आरम्भिक कड़ी देती है। बाजार के अन्य रूप; जैसे-अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का ज्ञान होना आवश्यक है।
2. पूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त हमें ऐसा मापदण्ड (Norm) देता है जिसकी सहायता से हम अर्थव्यवस्था की प्रगति का मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता सबसे सफल एवं निपुण स्थिति के रूप में एक मापदण्ड का कार्य करती है।
3. अभी भी संसार में अनेक पूँजीवादी देश अपने उत्पादन क्षेत्रों में पूर्ण प्रतियोगिता को अपनाये हुए हैं।

**प्र.6. सामान्य मूल्य से आपका क्या तात्पर्य है? इसके निर्धारण में कौन-सी बातों का उल्लेख आवश्यक है?**
**What do you mean by normal price? What are the things that need to be mentioned in its determination?**

**उत्तर**

## सामान्य मूल्य का अर्थ और इसका निर्धारण
## (Meaning and Determination of Normal Price)

दीर्घकाल में माँग और पूर्ति के बीच सन्तुलन द्वारा जो मूल्य निर्धारित होता है उसे सामान्य मूल्य कहते हैं।
सामान्य मूल्य के निर्धारण में तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं—

1. **समय की पर्याप्तता**—उत्पादकों के पास इतना समय होता है कि वे वस्तु की पूर्ति को वस्तु की माँग के अनुकूल कर सकते हैं। दीर्घकाल में उत्पत्ति का प्रत्येक साधन अविशिष्ट (Non-specific) हो जाता है। वस्तु की माँग बढ़ने के साथ

TOUCH 'n PASS

उद्योग में नयी-नयी फर्में प्रवेश करती हैं और माँग के घटने पर फर्में उद्योग से बाहर हो जाती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि माँग के बढ़ने-घटने पर वस्तु की पूर्ति को बढ़ाया और घटाया जा सकता है।

2. **सामान्य व टिकाऊ प्रभावों की पर्याप्तता**—अति अल्पकालीन व अल्पकालीन बाजार में वस्तु के मूल्य निर्धारण में अस्थायी शक्तियाँ कार्य करती हैं, इसलिए बाजार मूल्य स्थायी नहीं होता है। सामान्य मूल्य स्थायी व टिकाऊ प्रभाव कार्य करते हैं इसलिए इसमें परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती है। दीर्घकाल में अस्थायी शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रभाव को नष्ट (neutralise) कर देती हैं और मूल्य निर्धारण में केवल स्थायी शक्तियाँ ही कार्य करती हैं।
3. **पूर्ति का प्रभाव अधिक**—दीर्घकालीन मूल्य निर्धारण में माँग की अपेक्षा उत्पादन लागत (पूर्ति) का प्रभाव अधिक होता है, इसीलिए वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत के बराबर तय होता है। इस व्याख्या को दिए गए चित्र से स्पष्ट किया गया है।

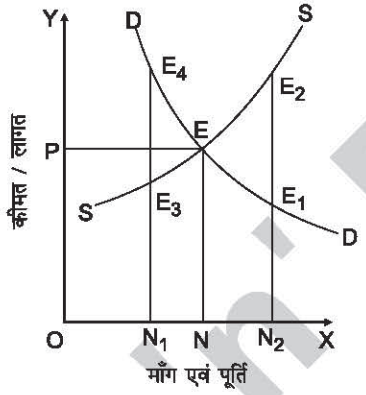


चित्र

दीर्घकाल में माँग पूर्ति का सन्तुलन $E$ बिन्दु पर है। यहाँ वस्तु का मूल्य $OP$ या $NE$ है। इस मूल्य पर वस्तु की माँग ($ON$) = वस्तु की पूर्ति ($ON$) है। बिन्दु $E$ माँग रेखा पर है, इसलिए $EN$ सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) है। चूँकि $E$ बिन्दु पूर्ति रेखा पर भी है इसलिए $EN$ सीमान्त लागत (Marginal cost) को भी बताता है। स्पष्ट है कि सामान्य मूल्य $EN$ सीमान्त उपयोगिता व लागत दोनों के बराबर है। अत: सामान्य मूल्य = सीमान्त लागत = सीमान्त उपयोगिता।

माना वस्तु का मूल्य बढ़कर $N_1E_4$ है तो यह $N_1E_3$ सीमान्त लागत से अधिक है। इससे विक्रेताओं को लाभ अधिक होगा और वे पूर्ति को बढ़ाएँगे, अत: वस्तु की पूर्ति $ON_1$ से बढ़ जायेगी। उत्पादन के बढ़ने से वस्तु का मूल्य घटेगा और वह घटकर फिर से सामान्य मूल $NE$ के बराबर हो जायेगा। यदि मूल्य $N_2E_1$ है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह मूल्य सीमान्त लागत $N_2E_2$ से कम हुआ। अत: विक्रेताओं को हानि होगी और वे उत्पादन को घटायेंगे। उत्पादन अथवा पूर्ति के घट जाने से मूल्य में वृद्धि होगी और मूल्य बढ़कर फिर से $NE$ 'सामान्य मूल्य' के बराबर हो जायेगा।

**प्र.7. बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य के बीच तुलना कीजिए।**
**Compare market price and normal price.**

**उत्तर**

## बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य की तुलना
## (Comparison between Market Price and Normal Price)

बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य की तुलना निम्नलिखित है—

| | बाजार मूल्य (Market Price) | सामान्य मूल्य (Normal Price) |
|---|---|---|
| 1. | बाजार मूल्य किसी समय विशेष में बाजार में प्रचलित रहता है। | सामान्य मूल्य में अमूर्तता (abstraction) होती है, फिर भी इस मूल्य में इस दृष्टि से वास्तविकता है कि यह एक केन्द्र-बिन्दु (focal) की भाँति होता है जिसके चारों ओर बाजार मूल्य घूमता है। |
| 2. | बाजार मूल्य अति अल्पकालीन मूल्य है। | सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य है। |

TOUCH 'n' PASS

| | | |
|---|---|---|
| 3. | बाजार मूल्य में असामान्य लाभ और असामान्य हानि हो सकती है। | सामान्य मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है। समय की अधिकता के कारण इसमें असामान्य लाभ व हानि नहीं होती है। |
| 4. | बाजार मूल्य माँग एवं पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन है। अस्थायी सन्तुलन के कारण यह दिन में कई बार बदलता है। माँग और पूर्ति के सन्तुलन बनते-बिगड़ते रहते हैं जिसके कारण बाजार मूल्य में भी काफी उतार-चढ़ाव आते हैं। | सामान्य मूल्य के निर्धारण में लम्बा समय लगता है। दीर्घकाल में पूर्ति को माँग के अनुकूल बढ़ाया-घटाया जा सकता है। इस प्रकार माँग-पूर्ति की स्थायी शक्तियों से अन्तिम सन्तुलन (final equilibrium) प्राप्त होता है। यही कारण है कि सामान्य मूल्य में एकाएक परिवर्तन नहीं आते हैं। |
| 5. | बाजार मूल्य पुनरुत्पादनीय (Reproducible) और निरुत्पादनीय (Non-Reproducible) दोनों ही प्रकार की वस्तुओं का होता है। | सामान्य मूल्य केवल पुनरुत्पादनीय वस्तुओं का होता है। निरुत्पादनीय वस्तुओं की पूर्ति स्थिर होती है जिनका मूल्य 'भावुकता' से तय होता है, न कि उत्पादन लागत से। |
| 6. | बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य के बराबर रहने की होती है। वह हमेशा सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर लगाता है और अन्त में उसी में मिल जाता है। | सामान्य मूल्य लम्बे समय तक घटता-बढ़ता नहीं है। इसकी प्रवृत्ति उत्पादन लागत के बराबर होने की होती है। |

**प्र.8. बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य में क्या सम्बन्ध है?**
**What is the relation between market price and normal price?**

**उत्तर**

## बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य में सम्बन्ध
## (Relation between Market Price and Normal Price)

बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य में अन्तर होते हुए भी इन दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर काटता है और अन्त में उसी में मिल जाता है। यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से ऊँचा होता है तो उत्पादकों का लाभ बढ़ेगा वे पूर्ति को बढ़ायेंगे। पूर्ति के बढ़ने से मूल्य में कमी होगी और यह सामान्य मूल्य के बराबर हो जायेगा। इसके विपरीत यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से कम है तब उत्पादकों को हानि होगी। वे पूर्ति को घटा देंगे जिससे मूल्य बढ़ेगा और अब मूल्य बढ़कर सामान्य मूल्य के बराबर हो जायेगा। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि बाजार मूल्य सदा सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर लगाता है और अन्त में इसकी प्रवृत्ति सामान्य मूल्य के बराबर होने की होती है।

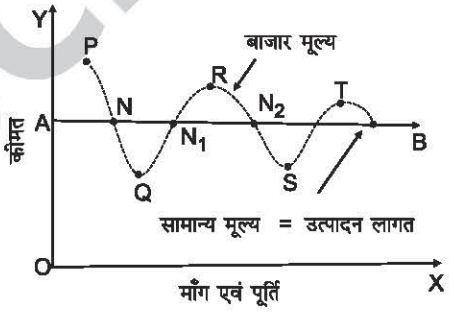


चित्र

उपर्युक्त व्याख्या को चित्र द्वारा से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में $AB$ एक पड़ी हुई रेखा है जो सामान्य मूल्य को बताती है। सामान्य मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है, इसलिए $AB$ रेखा उत्पादन लागत की भी रेखा हुई। $PQRST$ वक्र रेखा बाजार मूल्य की है, जो $AB$ रेखा के ऊपर-नीचे घूमती है। यह $N$, $N_1$, $N_2$ तथा $N_3$ बिन्दुओं पर $AB$ रेखा को काटती है और अन्त में उसी में मिल जाती है।

यदि $P$ बाजार मूल्य $N$ सामान्य मूल्य से अधिक है, तो उत्पादकों को लाभ होगा जिनके द्वारा पूर्ति बढ़ायी जायेगी। पूर्ति के बढ़ने से बाजार मूल्य में कमी होगी और वह $N$ सामान्य मूल्य के बराबर हो जायेगा। यदि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य से कम है, जैसा कि चित्र में $Q$ बिन्दु से दिखाया गया है, तो उत्पादकों को हानि होगी, हानि से बचने के लिए उत्पादक अपने उत्पादन में कमी करेंगे

TOUCH 'n' PASS

जिससे मूल्य बढ़ेगा और वह बढ़कर सामान्य मूल्य के बराबर हो जायेगा जिसे चित्र में $N_1$ बिन्दु से दिखाया गया है। स्पष्ट है कि बाजार मूल्य सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर लगाता है, और लम्बे समय तक सामान्य मूल्य से ऊँचा या नीचा नहीं हो सकता है। बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव सामान्य मूल्य की ओर आने की होती है।

**प्र.9. एकाधिकार के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the various forms of monopoly.**

**उत्तर**

## एकाधिकार के प्रकार
## (Types of Monopoly)

1. **पूर्ण एकाधिकार एवं अपूर्ण एकाधिकार** (Perfect Monopoly and Imperfect Monopoly)—एकाधिकारी शक्ति की मात्रा (Degree) के आधार पर एकाधिकार को शुद्ध अथवा पूर्ण तथा अपूर्ण एकाधिकार में विभाजित किया जा सकता है। शुद्ध एकाधिकार वह स्थिति है जिसमें एक अकेली फर्म वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण अधिकार रखती है तथा वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न तक उपलब्ध नहीं होता है। इस प्रकार का एकाधिकार दैनिक जीवन में दुर्लभ होता है। अपूर्ण एकाधिकार में एकाधिकारी शक्ति की मात्रा न्यून होती है किन्तु शून्य नहीं।
2. **सामाजिक एकाधिकार** (Social Monopoly)—लोक-कल्याण की दृष्टि से अति आवश्यक सेवाओं को सरकार अपने अधिकार में रखती है, जैसे-डाक, रेलवे आदि। इसे सामाजिक एकाधिकार कहते हैं।
3. **कानूनी एकाधिकार** (Legal Monopoly)—कुछ एकाधिकार कानूनी स्वीकृति द्वारा स्थापित किये जाते हैं। जैसे हरियाणा में बिजली की पूर्ति एक फर्म 'हरियाण राज्य विद्युत मण्डल' (HSEB) द्वारा की जाती है। इस क्षेत्र में किसी अन्य का प्रवेश कानून के संरक्षण से प्रतिबन्धित है।
4. **प्राकृतिक एकाधिकार** (Natural Monopoly)—जब जलवायु, वातावरण तथा अन्य प्राकृतिक कारणों से किसी देश या किसी क्षेत्र विशेष में एकाधिकार उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें प्राकृतिक एकाधिकार कहा जाता है। उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका की हीरे तथा सोने की खानों पर एकाधिकार एवं अरब देशों द्वारा तेल पर एकाधिकार आदि प्राकृतिक एकाधिकार के अन्तर्गत आते हैं।
5. **औद्योगिक ऐच्छिक एकाधिकार** (Industrial Voluntary Monopoly)—कुछ उत्पादक जब अपने संघ बनाकर परस्पर होने वाली प्रतियोगिता को समाप्त कर देते हैं तो इसे औद्योगिक संघ अथवा ऐच्छिक एकाधिकार कहा जाता है। व्यापारिक ट्रस्ट तथा अन्य संगठन इस प्रकार के एकाधिकार के उदाहरण हैं।
6. **लागत/बाजार एकाधिकार** (Cost/Market Monopoly)—कई परिस्थितियों में एक वस्तु का उत्पादन यदि कोई बड़ी फर्म कर रही होती है जिसे आन्तरिक बचतें (Internal Economies) प्राप्त हो रही हैं तब ऐसी दशा में यदि छोटी फर्में उद्योग में प्रवेश का साहस ही न कर पायें तो इसे बाजार/लागत एकाधिकार कहते हैं।

**प्र.10. एकाधिकार की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके उत्पन्न होने के कारणों को स्पष्ट कीजिए।**
**Mentioning the characteristics of monopoly, explain the causes of its origin.**

**उत्तर**

## एकाधिकार की विशेषताएँ
## (Characteristics of Monopoly)

एकाधिकारी की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

1. एकाधिकारी वस्तु का स्वयं कीमत निर्धारक होता है,
2. एकाधिकारी उत्पाद की स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध नहीं होती है,
3. एकाधिकारी उत्पाद के लिए माँग की लोच शून्य होती है,
4. एकाधिकार में नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता है,
5. एकाधिकार के अन्तर्गत उद्योग तथा फर्म का अलग-अलग अस्तित्त्व नहीं होता है, फर्म ही उद्योग की पर्याय है। जब हम फर्म के साम्य की बात करते हैं तब हमारा अभिप्राय उद्योग के सान्य से होता है, तथा
6. एकाधिकारी अपनी वस्तु का अकेला उत्पादक होता है।

TOUCH 'n PASS

## एकाधिकार उत्पन्न होने के कारण (Causes of Emerging Monopoly)

एकाधिकार शक्ति का जन्म निम्न कारणों से होता है—

1. **तीव्र प्रतियोगिता** (Intense Competition)—जब कभी किसी क्षेत्र में तीव्र या गलाकाट प्रतियोगिता होने लगती है, तो उससे बचने के लिए भी एकाधिकार का जन्म हो जाता है।
2. **संयोग** (Combination)—प्रतियोगिता से बचने के लिए अनेक फर्में आपस में मिलकर अपने हितों की रक्षा करती हैं। अत: व्यावसायिक संयोगों के माध्यम से एकाधिकार की स्थापना हो जाती है।
3. **कानूनी संरक्षण** (Legal Protection)—कुछ लोग कानूनी सहायता से अपनी वस्तु का 'ट्रेड मार्क' या 'पेटेण्ट राइट' करवा लेते हैं। ऐसी दशा में ट्रेडमार्क का स्वामी उस वस्तु का एकाधिकारी हो जाता है।
4. **आयात-निर्यात कर** (Tariff Policy)—इस प्रकार के करों में से भी एकाधिकार का जन्म होता है। आयातित वस्तुओं पर कर लगाने से वे वस्तुएँ स्वदेश में नहीं आ सकती हैं जो एकाधिकारी की वस्तुओं की स्थानापन्न हो सकती हैं। अत: देश में एकाधिकार शक्ति जन्म लेने लगती है।
5. **कच्चे माल का केन्द्रीकरण** (Centralisation of Raw Materials)—जब कभी किसी व्यक्ति को किसी एक वस्तु के उत्पादन के लिए कच्चा माल मिल जाता है, जबकि औरों को नहीं, तो उस वस्तु पर ऐसे व्यक्ति का एकाधिकार हो जाता है।
6. **पैमाने की मितव्ययताएँ** (Economies of Scale)—कुछ वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने पर ही किया जाता है और इनमें नई प्रौद्योगिकी (Technology) की आवश्यकता होती है, छोटे उत्पादक ऐसे उत्पादन को नहीं कर सकते हैं। अत: जब कोई बड़ा उत्पादक ऐसे उत्पादन को चलाता है, तब उसका उस वस्तु पर स्वत: एकाधिकार हो जाता है।

**प्र.11. एकाधिकारी का क्या उद्देश्य है? क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्धात्मक कीमत से ऊँची होती है?**
**What is the purpose of monopolist? Is monopoly price always higher than competitive price?**

**उत्तर**

## एकाधिकारी का उद्देश्य
## (The Aim of the Monopolist)

प्रत्येक विक्रेता की तरह से एकाधिकारी का भी यही उद्देश्य होता है कि उसे 'अधिकतम लाभ' (Maximum profit), 'अधिकतम निवल आय' (Maximum Net Revenue) प्राप्त हो। निवल आय का अभिप्राय 'प्रति इकाई अधिकतम लाभ' (Maximum profit per unit) से है। एकाधिकारी सामान्य लाभ प्राप्त करने से ही सन्तुष्ट नहीं होता है, क्योंकि उसके हाथ में वस्तु की पूर्ति रहती है। यदि एकाधिकारी अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, वस्तु की कीमत को उसकी उत्पादन लागत से अधिक रखकर कुछ अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है, तो ऐसे लाभ को एकाधिकारी लाभ (Monopoly gain) कहा जाता है। **मार्शल** ने इस 'एकाधिकारी लाभ' को 'विशुद्ध एकाधिकारी आय' (Net Monopoly Revenue) के नाम से पुकारा है। इस प्रकार, वस्तु की कीमत में वस्तु की उत्पादन लागत घटा देने पर जो राशि शेष बचे उसे ही 'विशुद्ध एकाधिकारी आय' (Net Monopoly Revenue) अथवा 'एकाधिकारी लाभ' (Monopoly Gain) के नाम से पुकारा जाता है। प्रत्येक एकाधिकारी का उद्देश्य अपनी 'शुद्ध एकाधिकारी आय' को अधिकतम करना होता है।

## क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्धात्मक कीमत से ऊँची होती है?
## (Is Monopoly Price Always Higher than Competitive Price?)

जैसा कि हम एकाधिकारी के उद्देश्य के अन्तर्गत स्पष्ट कर चुके हैं, एकाधिकारी वस्तु का एकमात्र उत्पादक होता है। अत: वह पूर्ति की मात्रा को नियन्त्रित करते हुए अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि एकाधिकार में कीमतें स्पर्धात्मक कीमत से ऊँची होती हैं। हाँ, एकाधिकारी के अल्पकालीन साम्य में उसकी कीमत प्रतिस्पर्धात्मक कीमत से नीचे रहती है। यदि ऐसा हुआ, तो उसे शून्य लाभ होगा। ऐसा क्यों? उत्तर निम्न प्रकार दिया जा सकता है—

1. **अधिक मात्रा में उत्पादन**—पूर्ण प्रतियोगिता की किसी भी फर्म की तुलना में एकाधिकारी फर्म का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। बड़े पैमाने के उत्पादन व विक्रय व्ययों की मितव्ययता के फलस्वरूप एकाधिकारी फर्म की औसत लागत अपेक्षाकृत कम रहती है। अत: वह अपेक्षाकृत कम कीमत में वस्तु को बेच देता है।

TOUCH 'n PASS

2. **लोचदार माँग**—यदि एकाधिकारी का समस्त उत्पादन उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत होता है और बाजार में वस्तु की माँग लोचदार है, तो वह अपनी वस्तु की कीमत अपेक्षाकृत कम रखेगा।

विशेष परिस्थितियों में उसे हानि भी हो सकती है। अन्य दशाओं में एकाधिकारी कीमत स्पर्धात्मक कीमत से ऊँची ही होती है फलत: एकाधिकारी अतिरिक्त लाभ (Excess Profit) प्रात कर लेता है।

**प्र.12. अल्पाधिकार का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषा लिखिए।**
**Explaining the meaning of oligopoly, write its definition.**

**उत्तर**

## अल्पाधिकार का अर्थ एवं परिभाषाएँ
## (Meaning and Definitions of Oligopoly)

अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का एक रूप है। अल्पाधिकार में दो शब्द निहित हैं—अल्प अर्थात् कुछ (A Few) तथा अधिकार, जिसका अभिप्राय है कि जब किसी वस्तु के कुछ (अर्थात् बहुत अधिक नहीं) विक्रेता बाजार में उपस्थित हों तो बाजार की वह संरचना अल्पाधिकार कही जाएगी। दूसरे रूप में, कहा जा सकता है कि जब उद्योग में कुछ फर्में एक समान वस्तुएँ जो पूर्ण स्थानापन्न न होकर निकट स्थानापन्न होती हैं। उत्पादित करती हैं तो अपूर्ण प्रतियोगिता की इस स्थिति को अल्पाधिकार कहा जाता है।

अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें समरूप अथवा निकट स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करने वाली बहुत थोड़ी-सी प्रतियोगी फर्में होती हैं। **स्टोनियर** तथा **हेग** के शब्दों में, "अल्पाधिकार एक तरफ एकाधिकार से भिन्न होता है, जहाँ केवल एक ही विक्रेता होता है तथा दूसरी ओर पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता से भी भिन्न होता है, जहाँ अनेक विक्रेता होते हैं। अन्य शब्दों में, अल्पाधिकार में हम फर्मों के एक छोटे समूह का समावेश करते हैं।" द्वयाधिकार, अल्पाधिकार का सरलतम रूप है तथा उसमें अल्पाधिकार से सम्बन्धित सभी मूलभूत प्रश्न उठाए जा सकते हैं। लोहा, इस्पात, सीमेण्ट, मोटर, रेफ्रीजरेटर आदि उद्योग अल्पाधिकार के अच्छे उदाहरण हैं।

**श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "अल्पाधिकार, एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के बीच की स्थिति होती है जिसमें विक्रेताओं की संख्या एक से अधिक होती है, परन्तु इतनी अधिक नहीं होती कि बाजार कीमत पर किसी एक के प्रभाव को नगण्य बना दे।"

**प्रो० मेयर्स** (Meyers) के शब्दों में, "अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता की पूर्ति का बाजार कीमत पर समुचित प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक विक्रेता इस तथ्य से अवगत रहता है।"

**प्रो० लेफ्टविच** (Leftwich) के अनुसार, "बाजार की उस दशा को अल्पाधिकार कहा जाता है जिसमें थोड़ी संख्या में विक्रेता होते हैं तथा प्रत्येक विक्रेता की क्रियाएँ दूसरे विक्रेताओं के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं।"

**प्र.13. अल्पाधिकार की उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the causes of behind the emergence of oligopoly.**

**उत्तर**

## अल्पाधिकार की उत्पत्ति के कारण
## (Causes Behind the Emergence of Oligopoly)

अल्पाधिकार की उत्पत्ति के कारणों के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी माने जाते हैं—

1. **स्थिर लागतें** (Fixed Costs)—अल्पाधिकार का एक कारण यह है कि उद्योग में एक नया उपक्रम स्थापित करने की स्थिर लागत बहुत अधिक होती है। यदि किसी व्यवसाय को चलाने के लिए बहुत अधिक पूँजी निवेश या स्थिर लागतें वहन करनी पड़ती हैं तो नई फर्मों का उद्योग में प्रवेश करना तथा उससे बहिर्गमन करना बहुत कठिन होता है।
2. **आवश्यक साधनों पर नियन्त्रण** (Control over Essential Resources)—अल्पाधिकार के उत्पन्न होने का एक अन्य कारण यह है कि केवल कुछ फर्मों का उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण हो जाता है। उदाहरण के लिए, पेट्रोलियम निर्यात करने वाले देशों संगठन के थोड़े से सदस्य देशों का पेट्रोल की आपूर्ति पर नियन्त्रण होता है। यह कुछ देश एक आवश्यक साधन को नियन्त्रित करते हैं।
3. **नवप्रवर्तन** (Innovations)—नवप्रवर्तन अर्थात् नवीन आविष्कारों को लागू करने के कारण उद्योग में फर्मों का प्रवेश सीमित हो जाता है। इसके कारण अल्पाधिकार का जन्म होता है। उन उद्योगों में प्राय: अल्पाधिकार पाया जाता है जिन्हें

TOUCH 'n PASS

किसी बड़े आविष्कार या नवप्रवर्तन के कारण प्रारम्भ किया जाता है। नवप्रवर्तन लागू करने वाली फर्में उद्योग में अपनी प्रधानता को बनाए रखने का प्रयत्न करती हैं। इन फर्मों के साथ प्रतियोगिता करना बहुत खर्चीला तथा कठिन होता है क्योंकि इनके उत्पादन की पहचान तथा प्रसिद्धि बहुत अधिक हुई रहती है।

4. **पैमाने की बचतें** (Economies of Scale)—जब फर्म कुल माँग के एक ऊँचे अनुपात का उत्पादन करती है तब लागतों में कमी की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में प्राय: फर्मों की संख्या कम ही रहती है। उत्पादन की लागत में सतत कमी के लिए आवश्यक होता है कि उत्पादन का पैमाना काफी बड़ा हो। वास्तव में उत्पादन की लागत में कमी पैमाने की बचतों के रूप में प्रकट होती है। किन्तु बाजार में प्रत्येक फर्म बड़े पैमाने का उत्पादन करने में असमर्थ होती हैं क्योंकि इसके लिए लम्बे समय तक भारी निवेश की आवश्यकता होती है। प्राय: कुछ फर्में ही उत्पादन के पैमाने का विस्तार करने में सफल होती हैं जिस पर लम्बे समय तक सतत बचतें प्राप्त होती रहती हैं। ऐसी स्थिति अल्पाधिकार को जन्म देती है।
5. **विलय** (Merging)—कई बार दो या दो से अधिक स्वतन्त्र फर्मों का परस्पर विलय करने से भी अल्पाधिकार उत्पन्न हो जाता है। दो या दो से अधिक फर्मों के परस्पर विलय के कई उद्देश्य हो सकते है; जैसे—बाजार के अधिक भाग पर नियन्त्रण, पैमाने की बचतें, बाजार का विस्तार, क्षेत्र के विस्तार की बचतें आदि।
6. **विभेदीकरण** (Differentiation)—कुछ फर्में विभेदीकृत वस्तुओं के अपने ट्रेडमार्क को बहुत अधिक प्रचारित करने में सफल हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप उस समूह या उद्योग में नई फर्मों का प्रवेश कठिन हो जाता है। इन फर्मों के समूह या उद्योग में प्रवेश करने के लिए, अपने प्रतियोगियों का मुकाबला करने के लिए विज्ञापन तथा प्रचार पर बहुत अधिक धन खर्च करना होगा। कभी-कभी ऐसा करना लाभदायक भी नहीं होता। अत: सफल विभेदीकरण भी अल्पाधिकार को जन्म देता है।
7. **कानूनी प्रतिबन्ध तथा पेटेण्ट्स** (Legal Restrictions and Patents)—अल्पाधिकार की स्थिति उत्पन्न होने का एक अन्य कारण कानूनी प्रतिबन्ध तथा पेटेण्ट्स का होना है। पेटेण्ट्स लेने वाली फर्म का किसी साधन अथवा उत्पाद पर कुछ वर्षों के लिए कानूनी अधिकार प्राप्त हो जाता है जिसका उपयोग करना अन्य फर्मों के लिए सम्भव नहीं होता।

**प्र.14. अल्पाधिकार कीमत निर्धारण में किंकित माँग वक्र के दोषों का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the shortcomings of Kinked demand curve in price determination under oligopoly.**

**उत्तर**

## किंकित माँग वक्र के दोष
## (Shortcomings of Kinked Demand Curve)

अल्पाधिकार कीमत निर्धारण में किंकित माँग वक्र का सिद्धान्त दोषों से रहित नहीं है। इसमें निम्न दोष पाए जाते हैं—

1. किंकित माँग वक्र दो मान्यताओं पर आधारित है। प्रथम, अन्य फर्में कीमत कटौती का अनुसरण करेंगी तथा दूसरे, वे कीमत वृद्धि का अनुसरण नहीं करेंगी। **स्टिगलर** ने प्रामाणिक आधार पर यह सिद्ध किया है कि स्फीतिकारी काल में आगतों (inputs) की कीमतों में वृद्धि केवल एक फर्म में ही नहीं पाई जाती बल्कि समस्त उद्योग में होती है। इसलिए समान लागतों वाली सभी फर्में कीमत वृद्धि में एक-दूसरे का अनुसरण करेंगी। **स्टिगलर** के शब्दों में, "ऐतिहासिक आधार पर एक फर्म के लिए यह विश्वास करना कम सम्भव है कि कीमत वृद्धियाँ प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा अनुरूप नहीं की जाएँगी तथा कीमत कमियाँ अनुरूप की जाएँगी।"
2. फिर, कई वस्तुएँ जो स्थिर कीमतों को दर्शाती हैं, उनके लिए वास्तविक विक्रय कीमतों को सांख्यिकीय तौर में एकत्र करना सम्भव नहीं है। इसलिए इसमें संशय ही है कि अल्पाधिकार में कीमत स्थिरता वास्तविक रूप में पाई जाती है।
3. कीमत स्थिरता मायावी हो सकती है, क्योंकि वह मार्केट के वास्तविक व्यवहार पर आधारित नहीं है। विक्रय सदैव सूची कीमतों के अनुसार नहीं होता है। प्राय: प्रचार-पट पर लगी कीमतों से भिन्न कीमतें ली जाती हैं जैसे, कमीशन या छूट देकर। अल्पाधिकारी विक्रेता बाह्य तौर से कीमत स्थिर रख सकता है, परन्तु वस्तु की मात्रा या क्वालिटी को कम करके। अत: कीमत स्थिरता भ्रमजनक है।
4. यदि हम इसकी सब मान्यताओं को स्वीकार भी कर लें तो यह सम्भव नहीं कि सीमान्त आगम वक्र अन्तर इतना बड़ा होगा कि सीमान्त लागत वक्र उसमें से गुजर सके। माँग या लागत में कमी होने की स्थितियों में भी यह घट सकता है जिससे कीमत अस्थिर हो जाएगी।
5. किंकित माँग वक्र विश्लेषण केवल मन्दी में ही लागू होता है। जब स्फीति की अवधि में माँग में वृद्धि होती है, तो अल्पाधिकारात्मक फर्म कीमत बढ़ा देगी और अन्य फर्में उसका अनुसरण करेंगी। ऐसी स्थिति में अल्पाधिकारी का माँग

TOUCH IN PASS

वक्र उलटे किंक वाला होगा। ऐसा उल्टा किंक उसकी प्रत्याशाओं (expectations) पर आधारित होगा कि उसके सभी प्रतियोगी उसका अनुसरण करेंगे जब वह अपनी वस्तु की कीमत बढ़ाएगा और स्फीतिकारी स्थिति के कारण कोई भी उसका अनुसरण नहीं करेगा जब वह कीमत कम करेगा।

6. कुछ आलोचकों के अनुसार, किंकित माँग विश्लेषण एक अल्पाधिकारात्मक उद्योग में उसकी प्रारम्भिक अवस्थाओं में लागू होता है अथवा उस उद्योग में जिसमें नए और पहले से अज्ञात प्रतिद्वन्द्वी मार्केट में प्रवेश करते हैं।
7. आलोचकों का यह मत है कि किंकित माँग वक्र विश्लेषण अल्पकाल में लागू होता है, जब प्रतिद्वन्द्वियों की प्रतिक्रियाओं का ज्ञान कम होता है, परन्तु प्रतिद्वन्द्वियों की प्रतिक्रियाओं का दीर्घकाल में सही अनुमान लगाना कठिन है। इसलिए यह सिद्धान्त दीर्घकाल में लागू नहीं होता है।
8. इसके अतिरिक्त **प्रोफेसर स्टिगलर** ने अनुभव से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष भी निकाला है कि उन अल्पाधिकारात्मक उद्योगों में जहाँ विक्रेताओं की संख्या या तो बहुत कम हो या कुछ-कुछ ज्यादा हो, वहाँ किंकित माँग वक्र की सम्भावना नहीं होती।

## खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. बाजार को कितने रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है? क्षेत्र, समय एवं प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का विस्तृत वर्णन कीजिए।**

**Into how many forms can the market be classified? Describe the market in detail on the basis of area, time and competition.**

**उत्तर**

### बाजार का वर्गीकरण
### (Classification of Market)

अर्थशास्त्रियों के द्वारा विभिन्न तत्त्वों के आधार पर बाजार का वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण को निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है—

I. **क्षेत्र के आधार पर**—1. स्थानीय बाजार, 2. प्रादेशिक बाजार, 3. राष्ट्रीय बाजार, 4. अन्तर्राष्ट्रीय बाजार।
II. **समय के आधार पर**—1. अति अल्पकालीन बाजार, 2. अल्पकालीन बाजार, 3. दीर्घकालीन बाजार, 4. अति दीर्घकालीन बाजार।
III. **प्रतियोगिता के आधार पर**—1. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार, 2. अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार, 3. एकाधिकार बाजार।
IV. **कार्य के आधार पर**—1. विशिष्ट बाजार, 2. मिश्रित बाजार, 3. नमूनों द्वारा बाजार, 4. श्रेणियों के आधार पर बाजार।
V. **वैधानिकता के आधार पर**—1. उचित बाजार, 2. अवैध बाजार।
VI. **वस्तुओं की प्रवृत्ति के आधार पर**—1. उपज बाजार, 2. स्कन्ध बाजार, 3. धातु बाजार।

इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है—

I. **क्षेत्र के आधार पर बाजार का वर्गीकरण** (Classification of Market on the basis of Area)—क्षेत्र के आधार पर बाजार को मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **स्थानीय बाजार** (Local Market)—स्थानीय बाजार का अभिप्राय उस बाजार से है जो एक छोटे से क्षेत्र में सीमित होता है। स्थानीय बाजार उन वस्तुओं का होता है जिन वस्तुओं की माँग व्यापक नहीं होती है। स्थानीय बाजार के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जो शीघ्र खराब होने वाली होती हैं; जैसे—दही, दूध, सब्जी, अण्डा तथा भारवाही वस्तुएँ; जैसे—ईंट, पत्थर, रेत, आदि।
2. **प्रादेशिक बाजार** (Regional Market)—प्रादेशिक बाजार को प्रान्तीय बाजार भी कहा जाता है। प्रादेशिक बाजार का क्षेत्र स्थानीय बाजार के क्षेत्र से अधिक व्यापक होता है। प्रादेशिक बाजार के अन्तर्गत वस्तु की माँग तथा पूर्ति एक प्रदेश की सीमा तक फैली रहती है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में पगड़ी व धोती की माँग, राजस्थान में लाख की चूड़ियों व उत्तर प्रदेश में गाँधी टोपी की माँग
3. **राष्ट्रीय बाजार** (National Market)—राष्ट्रीय बाजार का क्षेत्र काफी व्यापक होता है। जब किसी वस्तु की माँग पूरे देश में की जाती है, तब उस वस्तु का बाजार राष्ट्रीय होता है। उदाहरण के लिए, भारत में साड़ियों, काँच की चूडियों तथा धोतियों की माँग बहुतायत से की जाती है। इसलिए इन वास्नुओ का बाजार राष्ट्रीय है।

TOUCH 'n PASS

4. **अन्तर्राष्ट्रीय बाजार** (International Market)—जब किसी वस्तु के क्रेता तथा विक्रेता संसार के कोने-कोने में फैले हुए हों या जब वस्तुओं की माँग विश्वव्यापी होती है, तब ऐसी वस्तुओं के बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सोना, चाँदी, गेहूँ, कपास, पटसन आदि वस्तुओं का बाजार अन्तर्राष्ट्रीय होता है।

**II. समय के आधार पर बाजार का वर्गीकरण** (Classification of Market on the basis of Time)—समय के आधार पर बाजार को चार भागों में बाँटा जा सकता है। यह विभाजन **मार्शल** के द्वारा किया गया है—

1. **अति-अल्पकालीन बाजार** (Very Short Period Market)—अति अल्पकालीन बाजार को दैनिक बाजार (Daily Market) भी कहा जाता है। अति-अल्पकालीन बाजार के अन्तर्गत वस्तु की पूर्ति हमेशा स्थिर रहती है। उत्पादकों या पूर्तिकर्त्ताओं के पास इतना कम समय होता है कि वे वस्तु की पूर्ति को माँग के अनुसार बढ़ा नहीं सकते हैं। इस प्रकार की प्रमुख वस्तुएँ दूध, दही, सब्जी तथा मछली, अण्डे आदि हैं। अत: अति-अल्पकालीन बाजार में वस्तु की पूर्ति का प्रभाव शून्य (Zero) रहता है, जबकि माँग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार की क्रिया से जिस मूल्य का निर्धारण होता है उसे बाजार मूल्य (Market Price) कहा जाता है।
2. **अल्पकालीन बाजार** (Short Period Market)—अल्पकालीन बाजार में अति-अल्पकालीन बाजार की अपेक्षा समय कुछ अधिक मिलता है। इस बाजार की समयावधि छ: माह के लगभग हो सकती है। यदि किन्हीं कारणों से वस्तु की माँग बढ़ जाती है, तब वस्तु की पूर्ति करने वाले एक सीमा तक वस्तु की पूर्ति बढ़ाने में सफल हो जाते हैं। फिर भी वस्तु के पूर्तिकर्त्ता वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने के लिए अपने स्थिर यन्त्रों अथवा प्लाण्टों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर पाते। अल्पकालीन बाजार में भी पूर्ति की अपेक्षा माँग का ही अधिक प्रभाव रहता है, परन्तु मूल्य में उतार-चढ़ाव अति-अल्पकालीन बाजार की अपेक्षा कम होते हैं। अत: अल्पकालीन बाजार मूल्य को 'अल्पकालीन सामान्य मूल्य' (Short Period Normal Price) कहा जाता है।
3. **दीर्घकालीन बाजार** (Long Period Market)—दीर्घकालीन बाजार के अन्तर्गत पूर्तिकर्त्ताओं को अधिक समय मिल जाता है। इस बाजार में माँग के बढ़ने के साथ-साथ पूर्ति को भी बढ़ाया-घटाया जा सकता है। पूर्तिकर्त्ता उत्पत्ति के साधनों में समन्वय (Adjustment) स्थापित कर सकता है। पूर्ति का प्रभाव महत्त्वपूर्ण होने के कारण वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत के बराबर निर्धारित होता है। इसलिए दीर्घकालीन बाजार मूल्य को 'दीर्घकालीन मूल्य' (Long Period Price) या 'सामान्य मूल्य' (Normal Price) भी कहा जाता है।
4. **अति-दीर्घकालीन बाजार** (Very Long Period Market or Secular Market)—अति-दीर्घकालीन बाजार में माँग तथा पूर्ति में अत्यधिक परिवर्तन होते रहते हैं। अति दीर्घकालीन बाजार में माँग को प्रभावित करने वाली प्रमुख बातें—जनसंख्या का बढ़ना-घटना, फैशन, रुचि, रीति-रिवाज, खान-पान आदि हैं। इनमें परिवर्तन आने के कारण माँग में भी परिवर्तन आ जाते हैं। दूसरी ओर वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाली प्रमुख बातें वैज्ञानिक अनुसन्धान, नयी-नयी खोजें तथा नयी-नयी उत्पादन तकनीक की जानकारी का होना है। इस प्रकार ये सब बातें वस्तु की उत्पादन लागत को भी प्रभावित कर देती हैं। अति-दीर्घकालीन बाजार में वस्तु की माँग और पूर्ति की सन्तुलित क्रिया बराबर चलती रहती है। इस बाजार को काल्पनिक बाजार भी कहा जाता है। अत: इस मूल्य को 'अति-दीर्घकालीन मूल्य' (Very Long Period Price) या 'स्थायी मूल्य' (Secular Price) कहते हैं।

**III. प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का वर्गीकरण** (Classification on the basis of Competition)—प्रतियोगिता के आधार पर बाजार को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **पूर्ण प्रतियोगिता बाजार** (Perfect Competition Market)—जब बाजार में किसी वस्तु के क्रय-विक्रय के लिए क्रेताओं व विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता होती है तब बाजार को पूर्ण प्रतियोगिता बाजार कहा जाता है। इस प्रकार के बाजार में क्रेता और विक्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है।
2. **अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार** (Imperfect Competition Market)—अपूर्ण बाजार की व्याख्या करते हुए **बेन्हम** (Benham) ने लिखा है कि "अपूर्ण बाजार उस दशा में कहा जायेगा जब क्रेताओं और विक्रेताओं को या कुछ क्रेताओं और कुछ विक्रेताओं को एक-दूसरे के द्वारा दिया हुआ या माँगा हुआ मूल्य का ज्ञान नहीं होता है।" इस बाजार में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या कम होती है तथा उन्हें बाजार का भी पूर्ण ज्ञान नही होता है। प्रमुख रूप से इस बाजार में वस्तु विभेद किया जाता है।

3. **एकाधिकार बाजार** (Monopoly Market)—एकाधिकार बाजार उस दशा को कहा जायेगा जिसमें वस्तु का अकेला उत्पादक होता है और उसकी स्थानापन्न वस्तु का भी कोई और उत्पादक नहीं होता है।

**प्र.2. बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the factors affecting the extent of market.**

**उत्तर**

## बाजार के विस्तार को प्रभावित करने वाले तत्त्व
## (Factors Affecting the Extent of Market)

I. वस्तु की विशेषताएँ
II. देश की आन्तरिक दशाएँ

**I. वस्तु के गुण या विशेषताएँ** (Characteristics of the Commodity)—किसी वस्तु के विस्तृत बाजार के लिए उस वस्तु में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. **स्थानापन्न वस्तुओं की संख्या** (Number of Substitutes)—स्थानापन्न वस्तुएँ भी बाजार के विस्तार को प्रभावित करती हैं। जिन वस्तुओं की स्थानापन्न वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं, उन वस्तुओं का बाजार सीमित होता है क्योंकि ऐसी वस्तुओं के न मिलने पर उपभोक्ता दूसरी वस्तुओं से काम चला लेता है। यदि किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध नहीं होती हैं, तो वस्तु का बाजार विस्तृत होगा।
2. **शीघ्रबोधिता** (Cognizability)—शीघ्रबोधिता तथा ग्रेडिंग भी वस्तु के बाजार को विस्तृत करते हैं। जिन वस्तुओं को उपभोक्ता आसानी से पहचान सकें या जिन वस्तुओं के गुण-दोषों की जानकारी उन्हें होती है, उन वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है।
3. **पूर्ति की पर्याप्तता** (Adequacy of Supply)—जिन वस्तुओं की पूर्ति उनकी माँग के अनुरूप कर ली जाती है, उन वस्तुओं का बाजार व्यापक होता है। यदि वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के अनुरूप नहीं बढ़ायी जाती है, तो उपभोक्ता उस वस्तु के स्थान पर किसी दूसरी वस्तु का उपयोग करने लगेंगे। अत: वस्तु का बाजार सीमित हो जायेगा।
4. **टिकाऊपन** (Durability)—प्राय: टिकाऊ वस्तुओं का बाजार भी व्यापक होता है, क्योंकि उन वस्तुओं को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसलिए कपड़ा, अनाज, कपास, सोना, चाँदी आदि वस्तुओं की माँग सर्वव्यापक है, जबकि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं; जैसे—मछली, दूध, दही, सब्जी आदि का बाजार सीमित है।
5. **वहनीयता** (Portability)—बाजार के विस्तार के लिए वस्तु का वहनीय होना आवश्यक है। प्राय: जो वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से लायी और ले जायी जाती हैं, उन वस्तुओं का बाजार व्यापक होता है। उदाहरण के लिए सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात आदि।
6. **वस्तु की सर्वव्यापक माँग** (Universal Demand of Commodity)—विस्तार के लिए वस्तु की माँग का व्यापक होना अनिवार्य है। वस्तु की माँग जितनी व्यापक होगी वस्तु का बाजार उतना ही विस्तृत होगा। उदाहरण के लिए, गेहूँ, चावल, कपास, जूट, सोना, चाँदी आदि वस्तुओं की माँग विश्वव्यापी है। परिणामस्वरूप इन वस्तुओं का बाजार विस्तृत है।

**II. देश की आन्तरिक दशाएँ** (Internal Conditions of the Country)—देश की आन्तरिक दशाओं का प्रभाव बाजार के विस्तार पर पड़े बिना नहीं रह सकता है। कुछ आन्तरिक कारणों को नीचे दिया जा रहा है जो बाजार के विस्तार को प्रभावित करते हैं—

1. **शान्ति एवं सुरक्षा** (Peace and Security)—देश की शान्ति और सुरक्षा वस्तु के बाजार के विस्तार को प्रभावित करती है। देश की शान्ति व्यवस्था बाजार का विस्तार करती है, जबकि देश की अशान्ति बाजार को संकुचित कर देती है।
2. **श्रम विभाजन** (Division of Labour)—जिस प्रकार श्रम-विभाजन उत्पादन वृद्धि में सहायता करता है ठीक उसी रूप में वह बाजार के विकास या विस्तार में सहायक होता है। श्रम-विभाजन से बड़े पैमाने का उत्पादन किया जाता है। उत्पादन लागत में कमी आती है, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुओं का उत्पादन भी आसानी से कर लिया जाता है और वस्तुएँ भी आकर्षक बनती हैं। इन सब प्रामाणिक बातों के कारण वस्तु के बाजार का विस्तार होता है।
3. **यातायात व संवादवाहन के साधन** (Means of Transport and Communication)—यातायात के साधनों का प्रत्यक्ष प्रभाव बाजार-विस्तार को प्रभावित करता है। ज्यों-ज्यों यातायात व संचार के साधनों का विकास होता जायेगा,

TOUCH n PASS

त्यों-त्यों वस्तु का बाजार भी व्यापक होता जायेगा, क्योंकि उत्पादित वस्तुओं को दूर-दूर तक लाया और ले जाया जा सकता है।

4. **सरकार की व्यापारिक नीति** (Commercial Policy of the Government)—यदि देश के भीतर तथा बाहर स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपनायी जा रही है और कर-प्रणाली न्यायोचित है, तो बाजार का विस्तार होगा। यदि एक देश से दूसरे देश को या एक राज्य से दूसरे राज्य में वस्तुओं को लाने व ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हों या आयात तथा निर्यात करों की दरों में वृद्धि की गयी है, तो बाजार का विस्तार नहीं होगा।
5. **व्यापार का वैज्ञानिक तरीका** (Scientific Business Method)—व्यापार करने का वैज्ञानिक तरीका भी बाजार के विस्तार को प्रभावित करता है, इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण साधन विज्ञापन है। विज्ञापन का जितना अधिक और व्यापक विस्तार होगा, वस्तु का बाजार भी उतना अधिक विस्तृत होगा।
6. **द्रव्य की स्थिरता तथा व्यवस्थित बैंकिंग व्यवस्था** (Stability of Currency and Sound Banking System)—देश की सुदृढ़ मौद्रिक एवं बैंकिंग व्यवस्था से वस्तु का बाजार विस्तृत होता है, मुद्रा प्रणाली में अस्थिरता होने पर वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक उच्चावचन (Fluctuations) होते रहते हैं, जिससे व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ता है और बाजार संकुचित हो जाता है। इसी प्रकार कुशल बैंकिंग प्रणाली से व्यापारियों को पर्याप्त साख उपलब्ध होती है, जिससे बाजार का विस्तार होता है।

**प्र.3. अपूर्ण प्रतियोगिता का क्या अर्थ है? अपूर्ण प्रतियोगिता के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**What is the meaning of imperfect competition? Throw light on the causes of imperfect competition.**

**उत्तर**

## अपूर्ण प्रतियोगिता
## (Imperfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता या विशुद्ध प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार के अध्ययन के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि व्यवहार में ये दोनों बाजार नहीं हैं। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** ने वास्तविक जगत के लिए 'अपूर्ण प्रतियोगिता' तथा **प्रो० चैम्बरलिन** ने 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' को व्यावहारिक बताया है, क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता तथा विशुद्ध एकाधिकार की धारणाएँ पूर्णतया काल्पनिक हैं।

### अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ (Meaning of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जब उसमें पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं की कमी होती है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं की लोच पूर्णतया लोचदार नहीं होती है। इस सन्दर्भ में **प्रो० ए०पी० लर्नर** (Prof. A. P. Lerner) ने कहा है कि "अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जब विक्रेता की वस्तु का माँग-वक्र गिरती हुई दशा में होता है।"

प्रतिष्ठित तथा नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने मूल्य के निर्धारण में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दशाओं का ही अध्ययन किया था, उन्होंने अपूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना तक नहीं की थी। सर्वप्रथम अपूर्ण प्रतियोगिता की ओर ध्यान देने का श्रेय **प्रो० पायेरो सर्राफ** (Prof. Pierro Sraffa) को जाता है। उन्होंने 1926 में एक लेख 'The Laws of Returns Under Competitive Conditions' को 'Economic Journal' में प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने यह बताने का प्रयत्न किया था कि उद्योग में वास्तविक स्थिति न तो एक कोने पर पूर्ण प्रतियोगिता वाली और न दूसरे किनारे पर एकाधिकार वाली है, अपितु वह इन दोनों सीमाओं के बीच के क्षेत्र में आती है जिसे अपूर्ण प्रतियोगिता कहा जाता है।

### अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण (Causes of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **ऊँचा यातायात व्यय** (High Transport Cost)—अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने में यातायात व्यय का भी महत्त्वपूर्ण हाथ है। प्राय: यातायात व्यय के ही कारण अलग-अलग स्थानों में वस्तु की कीमत अलग-अलग होती है।
2. **क्रेताओं में गतिशीलता का अभाव** (Lack of Mobility of Buyers)—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत हम स्पष्ट कर चुके हैं कि क्रेताओं को इस बात की जानकारी होते हुए भी कि स्थान विशेष में कोई वस्तु सस्ती कीमत में बेची जा रही है फिर भी वे उस स्थान में जाकर वस्तु को क्रय नहीं करते हैं बल्कि अपनी आस-पास की दुकान से ही ऊँची कीमत में वस्तु को क्रय कर लेते हैं। इसका मुख्य कारण क्रेताओं का वस्तु तथा कीमत के प्रति उदासीन होना है।
3. **वस्तु की इकाइयों में अन्तर** (Difference in the Units of a Commodity)—पूर्ण प्रतियोगिता के बारे में यह भी कहा जाता है कि विभिन्न फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का आकार-प्रकार समान होना चाहिए। हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं कि वस्तु आकार-प्रकार तथा गुणों में समान होगी। वास्तव में, विभिन्न फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुएँ

एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। 'वस्तु-विभेद' (Product differentiation) के कारण भी अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म मिलता है।

4. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अज्ञानता** (Ignorance of Buyers and Sellers)—किसी भी बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक हो सकती है, पर पूर्ण प्रतियोगिता के लिए केवल क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या का होना ही काफी नहीं है बल्कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार की भी जानकारी होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार की पूरी-पूरी जानकारी नहीं होती है। फलतः बाजार भाव की अज्ञानता के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता का जन्म होता है।

**प्र.4. अपूर्ण प्रतियोगिता के विभिन्न प्रकारों एवं इनकी विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।**
**Explain in detail the various types of imperfect competition and their characteristics.**

**उत्तर**

## अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रकार
## (Forms of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता का व्यापक क्षेत्र है, इसके अन्तर्गत बाजार की निम्न श्रेणियाँ आती हैं—

### I. द्वयाधिकार (Duopoly)

यदि किसी समय किसी बाजार में एक वस्तु के दो उत्पादक हों और ये दोनों उत्पादक बाजार में अपनी वस्तु को बेचने के लिए प्रतियोगिता करते हों, तो इस स्थिति को द्वयाधिकार (Duopoly) कहा जायेगा। द्वयाधिकार में कीमत निर्धारण के लिए दोनों उत्पादकों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिए। वास्तव में, उत्पादकों के न चाहते हुए भी आपसी सम्बन्ध हो जाते हैं। उनका यह आपसी सम्बन्ध वस्तु की कीमत को बढ़ा-घटा सकता है, बाजार को आपस में बाँटा जा सकता है और उन्हें अधिक लाभ दे सकता है। कभी-कभी द्वयाधिकार में उत्पादित वस्तुओं के आकार-प्रकार में अन्तर कर दिया जाता है। उस स्थिति में विक्रेताओं का बाजार अलग-अलग हो जाता है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपनी-अपनी वस्तुओं के मूल्यों को स्वतन्त्रतापूर्वक बढ़ा तथा घटा सकते हैं।

### II. अल्पाधिकार (Oligopoly)

अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का महत्त्वपूर्ण अंग है। किसी बाजार में अल्पाधिकार की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब उस बाजार में थोड़े-से विक्रेता हों और उनमें आपसी प्रतियोगिता भी कम हो। भारत के सन्दर्भ में लौह-इस्पात उद्योग अल्पाधिकार के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस उद्योग में टाटा स्टील कम्पनी, हिन्दुस्तान लिमिटेड, मैसूर स्टील कम्पनी तथा बोकारो स्टील कम्पनी आदि शामिल हैं।

**अल्पाधिकर के रूप**—अल्पाधिकार के निम्न रूप हो सकते हैं—

1. **सामूहिक अल्पाधिकार** (Collective Oligopoly)—जब विभिन्न फर्में आपस में वस्तु के उत्पादन, वस्तु की कीमत, वस्तु के बाजार आदि के बारे में समझौते की नीति अपनाती हैं, तब उसे सामूहिक अल्पाधिकार कहा जायेगा।
2. **विभेद अल्पाधिकार** (Differentiated Oligopoly)—जब अलग-अलग फर्में अलग-अलग वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, तब उसे विभेद अल्पाधिकार कहा जाता है।
3. **विशुद्ध अल्पाधिकार** (Pure Oligopoly)—जब सभी फर्में आपस में मिलकर समान वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय करती हैं, तब इस स्थिति को विशुद्ध अल्पाधिकार कहा जाता है।
4. **पूर्ण अल्पाधिकार** (Complete Oligopoly)—जब अलग-अलग फर्मों के द्वारा वस्तु के उत्पादन या बिक्री के लिए अलग-अलग नीति अपनायी जाती है, तो उसे पूर्ण अल्पाधिकार कहा जाता है।
5. **आंशिक अल्पाधिकार** (Partial Oligopoly)—फर्मों की आपस में पारस्परिक निर्भरता आंशिक होती है, तब उसे आंशिक अल्पाधिकार कहा जाता है।

### अल्पाधिकार की विशेषताएँ (Characteristics of Oligopoly)

अल्पाधिकार की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **विज्ञापन एवं बिक्री को प्रोत्साहन** (Advertisement and Sales Promotion)—अल्पाधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म अपनी-अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए विज्ञापन, प्रचार आदि में बहुत अधिक व्यय करती है। फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं में जितना अधिक अन्तर रहेगा विज्ञापन व्यय भी उतना ही अधिक होगा।
2. **फर्मों के प्रवेश व बहिर्गमन में कठिनाई** (Difficult Entry and Exit of Firms)—अल्पाधिकार के अन्तर्गत जो फर्में पहले से कार्य कर रही होती हैं, उन फर्मों का जम-जमाव हो जाता है जिससे नयी फर्मों को आसानी से बाजार में प्रवेश नहीं मिल पाता है। पुरानी फर्मों का आकार-प्रकार बढ़ जाने से वे बहिर्गमन भी नहीं कर सकती हैं।
3. **कीमत में नियन्त्रण** (Control of Price)—फर्मों की पारस्परिक निर्भरता के कारण वस्तुओं की कीमत में स्वत: ही नियन्त्रण होता है। कोई भी फर्म दूसरी फर्म की सहायता के बिना वस्तु के मूल्य को बढ़ा या घटा नहीं सकती है।
4. **लगभग प्रमापित अथवा भेदित वस्तुएँ** (Virtually Standardised Products or Differentiated Products)—द्वयाधिकार की तरह से अल्पधिकार में भी विभिन्न उत्पादकों के द्वारा समरूप (Homogeneous) और भेदक वस्तुओं (Differentiated products) का उत्पादन किया जाता है। उत्पादक जिस वस्तु का उत्पादन करते हैं यदि वे वस्तुएँ आपस में समरूप होती हैं, तो यह विशुद्ध अल्पाधिकार (Pure oligopoly) की स्थिति होगी। जब उत्पादक एक-दूसरे से भिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते हों, तो यह भेदात्मक अल्पाधिकार (Differentiated oligopoly) की स्थिति होगी।
5. **पारस्परिक निर्भरता** (Mutual Interdependence)—अल्पाधिकार में द्वयाधिकार की अपेक्षा विक्रेताओं के बीच पारस्परिक निर्भरता भले ही कम होती है, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता की अपेक्षा यह निर्भरता अधिक होती है।
6. **कुछ विक्रेता** (Few Sellers)—अल्पाधिकार में पूर्ण प्रतियोगिता से कम तथा द्वयाधिकार से अधिक विक्रेता होते हैं, इतना होने पर भी विक्रेताओं का वस्तु की पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है और वे वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकते हैं।

## III. एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)

'एकाधिकारी प्रतियोगिता' एक प्रकार से, 'अपूर्ण प्रतियोगिता' की किस्म है। एकाधिकारी प्रतियोगिता का विचार प्रमुख रूप से **प्रो० चैम्बरलिन** (Chamberlin) के द्वारा दिया गया है। उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है कि व्यवसाय में न तो पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और न ही विशुद्ध एकाधिकार, बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति पायी जाती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता बाजार का वह रूप है, जिसमें बहुत-सी फर्में कार्य करती हैं और प्रत्येक फर्म मिली-जुली वस्तुएँ बेचा करती है परन्तु उनके द्वारा बेची जाने वाली वस्तुएँ समरूप नहीं होती हैं। उनमें थोड़ा-बहुत भेद अवश्य पाया जाता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत विक्रेता की वस्तु का माँग वक्र अधिक लोचदार तथा ऋणात्मक ढाल का होता है। दिए गए चित्र से इस तथ्य की पुष्टि की गयी है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता में एक फर्म का माँग वक्र *AR* है जिसका ऋणात्मक ढाल है। इसका यह अर्थ हुआ कि एक विक्रेता अपनी वस्तुओं की अधिक मात्राएँ, मूल्य में कमी करके बेच सकता है। *MR* वक्र का ढाल भी ऋणात्मक है, परन्तु यह *AR* वक्र की तुलना में अधिक ढालू है।

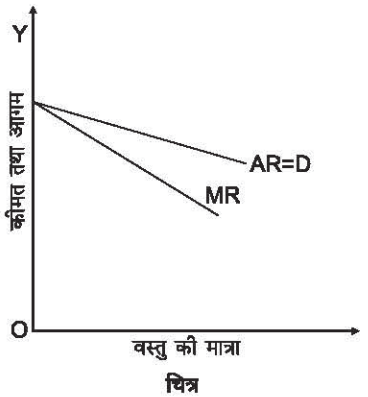

चित्र

**एकाधिकारी प्रतियोगिता की विशेषताएँ** (Characteristics of Monopolistic Competition)—एकाधिकारी प्रतियोगिता की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **पदार्थ का विभेदीकरण** (Product Differentiation)—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत विभिन्न फर्मों के द्वारा जिन-जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, वे वस्तुएँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। वस्तु-विभेद की विशेषता ही इस प्रतियोगिता को पूर्ण प्रतियोगिता से अलग करती है। वस्तु-विभेद जितना अधिक होगा फर्मों में एकाधिकार का अंश उतना ही अधिक होगा। एकाधिकारी प्रतियोगिता में विभिन्न फर्मों द्वारा बनायी जा रही वस्तुएँ पूर्ण प्रतियोगिता की वस्तुओं के समान एक जैसी नहीं होती हैं और न ही ये वस्तुएँ एकाधिकारी वस्तुओं के समान होती हैं।

पदार्थ विभेद के अनेक उदाहरण हो सकते हैं। जैसे हमाम साबुन, लक्स साबुन, पीयर्स सोप, आदि।

2. **विक्रेताओं की संख्या का अधिक होना** (Large Number of Sellers)—पूर्ण प्रतियोगिता के समान एकाधिकारी प्रतियोगिता में भी विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है। प्रत्येक विक्रेता अपनी-अपनी वस्तु को स्वतन्त्रतापूर्वक बेचता है, परन्तु उत्पादन में उत्पादक का सहयोग बहुत कम होता है, क्योंकि वह सम्पूर्ण उत्पादन का थोड़ा भाग बनता है।
3. **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश** (Free Entry of Firms)—एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती है, परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के समान फर्मों को आसानी से प्रवेश नहीं मिल पाता है, उनके प्रवेश में थोड़ी-बहुत बाधा अवश्य है। फिर भी एकाधिकार की तुलना में ये बाधाएँ कम हैं।
4. **गैर-मूल्य प्रतियोगिता** (Non-price Competition)—एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादकों के बीच मूल्य सम्बन्धी प्रतियोगिता का उतना महत्त्व नहीं है जितना कि वस्तु-विभेद में। प्रत्येक उत्पादक अथवा विक्रेता अपनी वस्तु को दूसरे उत्पादक की वस्तु से अधिक श्रेष्ठ बताता है और वह विज्ञापन, प्रचार आदि के द्वारा इस बात की पुष्टि भी करा देता है कि केवल मेरे द्वारा उत्पादित वस्तु ही शेष उत्पादकों की वस्तु से श्रेष्ठ है। इस प्रकार की प्रतियोगिता को गैर-मूल्य प्रतियोगिता (Non-price Competition) कहा जाता है।

**प्र.5. पूर्ण प्रतियोगिता एवं विशुद्ध प्रतियोगिता के बाजार का विस्तृत विवेचन कीजिए।**
**Discuss in detail the market of perfect competition and pure competition.**

**उत्तर**

## पूर्ण प्रतियोगिता
## (Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता का बाजार वह बाजार है जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तु का क्रय-विक्रय प्रतियोगिता के आधार पर होता है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत रूप से कोई भी व्यक्ति वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का मूल्य प्रत्येक स्थान (परिवहन व्यय को निकाल देने के बाद) पर समान होता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. Joan Robinson) की परिभाषा की सहायता ली जा सकती है। उनके अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता तब पायी जाती है जब प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन के लिए माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है : प्रथम, विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, जिससे कि किसी एक विक्रेता (उत्पादक) का उत्पादन उस वस्तु के कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग होता है तथा दूसरे सभी क्रेता प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते हैं, जिससे कि बाजार पूर्ण हो जाता है।"

### पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ (Characteristics of Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार के लिए निम्न दशाओं का होना अनिवार्य है—

1. **उत्पादकों या फर्मों का बहुत समीप होना** (All the Producers or Firms are Sufficiently Close to each other)—पूर्ण प्रतियोगिता में सभी उत्पादक एक-दूसरे के समीप होते है, जिससे यातायात लागतें महत्त्वहीन मान ली जाती हैं। इससे बाजार में वस्तु की कीमत समान होती है। इस सन्दर्भ में **स्टोनियर और हेग** (Stonier and Hague) का कहना है कि "पूर्ण प्रतियोगिता की विवेचना करते समय यह मान लेना सुविधापूर्ण होगा कि सभी उत्पादक एक-दूसरे के बहुत समीप कार्य करते हैं, जिसके कारण यातायात लागतें नहीं के बराबर हो जाती हैं।"
2. **उत्पत्ति के साधनों में पूर्ण गतिशीलता** (Perfect Mobility in the Factors of Production)—पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पत्ति के किसी साधन को बेरोक-टोक एक उद्योग से दूसरे उद्योग में लाया और ले जाया जा सकता है। यदि किसी उद्योग में उत्पत्ति के अकुशल साधन कार्य कर रहे हों, तो उनके स्थान पर उत्पत्ति के कुशल साधनों को लगाया जा सकता है।
3. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं को वस्तु की माँग तथा पूर्ति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए** (The Sellers and Buyers must have the Full Knowledge of the Conditions of Demand and Supply of a Commodity)—क्रेताओं को इस बात की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए कि कहाँ कौन-सी वस्तु किस मूल्य में मिल रही है। इसी प्रकार विक्रेताओं को भी इस बात की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि कौन-सा विक्रेता किस वस्तु को किस मूल्य में बेच रहा है। ऐसी दशा में वस्तु का मूल्य प्रभावित नहीं होता है।

TOUCH 'n PASS

4. **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश तथा बहिर्गमन** (Free Entry and Exit of Firms)—पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार की तीसरी महत्त्वपूर्ण दशा यह है कि किसी उद्योग में उद्योगपतियों को आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। प्रत्येक उद्योगपति अपने प्रारम्भिक उद्योग को छोड़ सकता है या वह किसी दूसरे उद्योग की स्थापना कर सकता है।
5. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की बाजार में अधिक संख्या होना** (The Number of Buyers and Sellers in the Market Very Large)—पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार के लिए दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि बाजार में वस्तु के क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या पर्याप्त होनी चाहिए, ताकि किसी भी ग्राहक की माँग के परिवर्तन का प्रभाव उस वस्तु पर न पड़े। दूसरी ओर उस वस्तु के इतने अधिक विक्रेता होने चाहिए कि किसी भी विक्रेता की बिक्री के परिवर्तन का प्रभाव उस वस्तु की पूर्ति पर न पड़े।
6. **वस्तु का समरूप होना** (Homogeneous Product)—पूर्ण प्रतियोगिता के लिए वस्तुओं का समरूप होना आवश्यक है। समरूप का अभिप्राय वस्तु के गुणों का समान होना भी है। ऐसी दशा में वस्तु का मूल्य समान रहता है। कोई भी क्रेता अथवा विक्रेता वस्तु के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता है।
7. **उद्योग में बड़ी संख्या में फर्मों का होना** (Large Number of Firms in the Industry)—पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में विक्रेताओं की संख्या अधिक होनी चाहिए, और प्रत्येक विक्रेता उद्योग के कुल उत्पादन का इतना छोटा भाग पैदा करता हो कि उसके उत्पादन में होने वाले छोटे-बड़े परिवर्तनों का उद्योग के उत्पादन और कीमत पर कोई विशेष प्रभाव न पड़े। इस प्रकार कोई भी फर्म विशेष वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं करेगी। प्रत्येक फर्म वस्तु की कीमत को दिया हुआ मानकर चलती है। इस कीमत पर प्रत्येक फर्म अधिकांश वस्तुओं को बेच सकती है। यदि उद्योग में थोड़ी-सी गिनी-चुनी फर्में होंगी, तो वे मूल्य को प्रभावित करने में समर्थ हो जायेंगी।

## विशुद्ध प्रतियोगिता (Pure Competition)

**एडवर्ड हेस्टिंग्स चैम्बरलिन** (Edward Hastings Chamberlin) ने पूर्ण तथा विशुद्ध प्रतियोगिता में अन्तर स्पष्ट किया है। विशुद्ध प्रतियोगिता को दूसरे शब्दों में 'परमाणुवादी प्रतियोगिता' (Atomistic Competition) के नाम से भी पुकारा जाता है। किसी समय बाजार में ऐसी प्रतियोगिता हो सकती है जिसमें एकाधिकारी तत्त्वों (Monopoly elements) का अभाव हो, तब इस प्रतियोगिता को विशद्ध प्रतियोगिता (Pure Competition) कहा जायेगा।

**विशुद्ध प्रतियोगिता के लिए केवल तीन बातों का होना आवश्यक है—**

1. क्रेताओं तथा विक्रेताओं की पर्याप्त संख्या का होना जिससे वे स्वतन्त्रतापूर्वक वस्तुओं का क्रय-विक्रय कर सकें अर्थात् दोनों पक्षों के ऊपर किसी का हस्तक्षेप न हो;
2. वस्तु का समरूप होना, अर्थात् जिस वस्तु का क्रय-विक्रय किया जा रहा है वह वस्तु गुण व आकार-प्रकार में समान होनी चाहिए; तथा
3. फर्मों के प्रवेश और बहिर्गमन की पूरी स्वतन्त्रता।

जिस बाजार में उपर्युक्त तीन बातों का समावेश होगा उसे विशुद्ध प्रतियोगिता कह सकते हैं।

## क्या पूर्ण प्रतियोगिता कल्पित है? (Is Perfect Competition a Myth?)

अर्थशास्त्र में मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त के अन्तर्गत पूर्ण प्रतियोगिता को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है, परन्तु बाजार की यह दशा कल्पित है। निम्न बातों से इसे स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **उत्पत्ति के साधनों का पूर्णतया गतिशील होना** (Perfect Mobility of Factors of Production)—पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पत्ति के साधनों को पूर्णतया गतिशील मान लिया गया है, परन्तु यह धारणा गलत है। पूर्णतया गतिशील साधन तो पूँजी भी नहीं है। उत्पत्ति के शेष साधनों की गतिशीलता में अनेक शर्तें बाधक बनी हुई हैं। इसलिए उत्पत्ति के साधनों को पूर्णतया गतिशील मान लेना गलत है।
2. **बाजार का पूर्ण ज्ञान** (Perfect Knowledge of the Market)—पूर्ण प्रतियोगिता में यह कहा गया है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं में निकट का सम्पर्क होता है। पूर्ण प्रतियोगिता की यह धारणा भी अव्यावहारिक है, क्योंकि क्रेताओं तथा विक्रेताओं को इस बात की जानकारी नहीं रहती है कि कौन-सी वस्तु कहाँ तथा किस कीमत में बेची या खरीदी जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

3. **फर्मों का स्वतन्त्र प्रवेश तथा बहिर्गमन** (Free Entry and Exit of Firms)—पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में यह शर्त मान ली जाती है, कि कोई भी फर्म उद्योग में प्रवेश पा सकती है अथवा उद्योग से बाहर हो सकती है, परन्तु व्यवहार में सरकारी हस्तक्षेप के कारण ऐसा नहीं होता है। फर्मों के प्रवेश पाने व छोड़ने में अनेकानेक कठिनाइयाँ हैं।
4. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं का बड़ी संख्या में होना** (Large Number of Buyers and Sellers)—पूर्ण प्रतियोगिता में कहा गया है कि क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। प्राय: देखा यह जाता है कि कुछ वस्तुओं के उत्पादक सीमित हैं, जबकि उपभोक्ताओं की संख्या अधिक है।
5. **वस्तु का समरूप होना** (Homogeneous Product)—पूर्ण प्रतियोगिता के लिए यह आवश्यक शर्त है कि वस्तुएँ समरूप होनी चाहिए, परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता है। प्राय: हम जिन वस्तुओं का उपभोग करते हैं वे सब वस्तुएँ आकार-प्रकार तथा गुणों में एक-दूसरे के समान नहीं होती हैं। प्रत्येक उत्पादक वस्तु-विभेद (Product differentiation) करके अपनी वस्तु को दूसरे उत्पादकों की वस्तु से श्रेष्ठ बताने की चेष्टा करता है, और उसी आधार पर अधिक वस्तुएँ बेचने का प्रयास करता है।

**प्र.6. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत और उत्पादन निर्धारण किस प्रकार सम्भव है? स्पष्ट कीजिए।**
**How is price and output determination possible under perfect competition? Explain.**

***अथवा* मूल्य के सामान्य सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**Explain in detail the general theory of value.**

**उत्तर**

## पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत और उत्पादन निर्धारण ( बाजार सन्तुलन ) *अथवा* मूल्य का सामान्य सिद्धान्त

## [Price and Output Determination Under Perfect Competition (Market Equilibrium) *Or* General Theory of Value]

प्राचीन काल में वस्तु के मूल्य निर्धारण को लेकर अर्थशास्त्री एकमत नहीं थे। मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं। **डेविड रिकार्डो** मूल्य निर्धारण में केवल **पूर्ति पक्ष** को ध्यान में रखते थे जबकि **जेवेन्स, वालरस** आदि अर्थशास्त्री मूल्य निर्धारण में केवल **माँग पक्ष** को आवश्यक मानते थे। बाद में **प्रो० मार्शल** ने दोनों पक्षों में समन्वय स्थापित करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि मूल्य का निर्धारण माँग (उपयोगिता) एवं पूर्ति (उत्पादन लागत) दोनों के संयुक्त प्रयासों से होता है। मार्शल के अनुसार, "जिस प्रकार से हम इस बात पर विवाद (dispute) कर सकते हैं कि वह कैंची का ऊपर वाला फलक (Blade) है अथवा नीचे वाला जिसने कि एक कागज के टुकड़े को काटा है, उसी प्रकार इस बात पर विवाद हो सकता है कि मूल्य को उपयोगिता निर्धारित करती है अथवा उत्पादन लागत। यह सत्य है कि जिस समय एक फलक को स्थिर रखा जाता है और काटने का कार्य दूसरे फलक से किया जाता है, तो हम लापरवाही से यह कह सकते हैं कि काटने का कार्य दूसरे ने किया है। किन्तु यह विवरण पूर्णतया सत्य नहीं है और तभी तक दोषमुक्त है जब तक कि यह इस कार्य का केवल प्रचलित रूप से स्पष्टीकरण करने का दावा करता है न कि वैज्ञानिक रूप से।"

मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में मार्शल का यह कथन इस बात की जानकारी देता है कि कागज को काटने के लिए कैंची के दोनों फलकों की समान आवश्यकता होती है। यदि एक फलक से कागज को काटने का काम लिया जाय तो यह प्रयत्न असफल रहेगा। इसी प्रकार से वस्तु के मूल्य निर्धारण के लिए माँग (उपयोगिता) तथा पूर्ति (उत्पादन लागत) दोनों की ही समान रूप से आवश्यकता होती है। यह सच है कि कुछ दशाओं में उपयोगिता (माँग) मूल्य के निर्धारण में अधिक प्रभावी हो सकती है, तो कुछ दशाओं में पूर्ति (उत्पादन-लागत)।

**सन्तुलन मूल्य** (Equilibrium Price)—उस मूल्य को कहा जाता है जहाँ माँग पूर्ति का साम्य होता है। इस साम्य पर माँग-पूर्ति की शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रभाव को इस प्रकार नष्ट कर देती हैं कि बाजार में स्थिर दशा (Static condition) उत्पन्न हो जाती है तब इस दशा को सन्तुलन की दशा (state of equilibrium) कहते हैं। सन्तुलन बिन्दु पर माँग और पूर्ति की मात्राएँ आपस में बराबर हो जाती हैं।

संक्षेप में, "सन्तुलन मूल्य वह मूल्य है जिस पर किसी वस्तु की मात्रा, जो कि विक्रेता बेचने को इच्छुक है, उस मात्रा के बराबर होती है जो कि क्रेता खरीदना चाहते हैं। यह वह मूल्य है जो बाजार को साफ कर देता है।" इस कीमत पर अतिरिक्त माँग तथा अतिरित पूर्ति की मात्रा शेष नहीं रह जाती है। इस बिन्दु पर जो मूल्य निर्धारित होता है उस मूल्य में परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती है।

TOUCH 'n' PASS

## क्या सन्तुलित कीमत हमेशा समान रहती है? (Is Equilibrium Price Remain Equal?)

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या सन्तुलित कीमत हमेशा समान रहती है? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सन्तुलित कीमत सदैव समान नहीं रहती है, क्योंकि माँग व पूर्ति के सन्तुलन के टूट जाने पर कीमत में परिवर्तन आता है। प्रारम्भिक सन्तुलन के टूट जाने पर माँग-पूर्ति का नया सन्तुलन स्थापित होता है। इस प्रकार पुराना सन्तुलन भंग होता है और नया स्थापित होता है। उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि सन्तुलित मूल्य के निर्धारण में माँग व पूर्ति की शक्तियाँ प्रभावपूर्ण कार्य करती हैं। अत: यहाँ यह आवश्यक है कि माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के बारे में समझ लिया जाय।

**वस्तु की माँग** (Demand for Commodity)—प्रश्न यह उठता है कि उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग क्यों करता है? और वह उस वस्तु का अधिक-से-अधिक कितना तक मूल्य दे सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कोई भी उपभोक्ता जिस किसी वस्तु की माँग करता है उस वस्तु में उसे उपयोगिता (utility) प्राप्त होती है। यदि वस्तु में उपयोगिता को सन्तुष्ट करने की शक्ति नहीं होती, तो उपभोक्ता वस्तु की माँग नहीं करता। उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मात्रा क्रय करेगा यह उसकी सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) पर निर्भर करेगा। इस प्रकार वस्तु के क्रेता के लिए वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती।

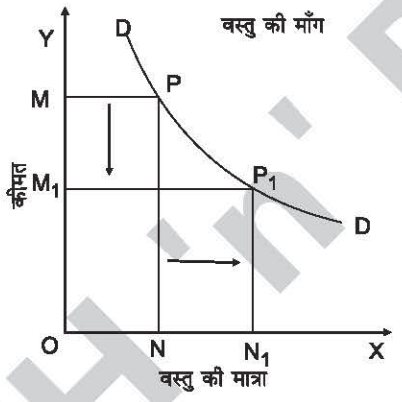


चित्र 1

वस्तु की माँग, माँग के नियम (Law of Demand) से नियन्त्रित होती है। वस्तु की ऊँची कीमत पर वस्तु की माँग कम तथा कम कीमत पर वस्तु की माँग ऊँची होती है अर्थात् मूल्य और माँग के बीच ऋणात्मक (Negative) या विपरीत (Inverse) सम्बन्ध है। इस बात को चित्र 2 से स्पष्ट किया गया है। चित्र में $DD$ वक्र बाजार माँग वक्र है। माँग रेखा में दो बिन्दु $P$ तथा $P_1$ दिखाये गये हैं। यदि वस्तु का मूल्य $OM$ है तो वस्तु की माँग $ON$ मात्रा में है और वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता $NP$ के बराबर है। यदि वस्तु का मूल्य घटकर $OM_1$ रह जाता है तब वस्तु की माँग $ON$ से बढ़कर $ON_1$ हो जाती है और वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटकर $N_1P_1$ के बराबर रह जाती है।

उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु में मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर देता है। चित्र 2 में एक उपभोक्ता को वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को $N_1P_1$ से दिखाया गया है। इस उपयोगिता पर वह वस्तु का मूल्य $OM_1$ के बराबर देता है, जबकि $OM_1 = N_1P_1$ के है। वस्तु का यह मूल्य उपभोक्ता के लिए वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के बराबर है। यह स्वाभाविक ही है कि क्रेता इस वस्तु का मूल्य इस अधिकतम सीमा के बराबर या इससे कम देना चाहेगा। संक्षेप में, माँग की दृष्टि से वस्तु का मूल्य इसकी सीमान्त उपयोगिता से कभी भी अधिक नहीं होता है।

**वस्तु की पूर्ति** (Supply of the Commodity)—वस्तु की पूर्ति विक्रेताओं के द्वारा की जाती है। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न किया जा सकता है कि विक्रेता वस्तु का मूल्य क्यों लेना चाहता है? और वस्तु का कम-से-कम कितना मूल्य लेगा? प्रकृति के उपहारों को छोड़कर शेष वस्तुओं के उत्पादन में कुछ-न-कुछ में उत्पादन लागत अवश्य आती है, इसी उत्पादन लागत के कारण प्रत्येक उत्पादक वस्तु का मूल्य लेना चाहता है। प्रत्येक उत्पादक उत्पादन लागत से अधिक मूल्य इसलिए लेना चाहता है कि उसे लाभ मिले। यदि उत्पादक अपने उद्देश्य में सफल है, तो वह उत्पादन की मात्रा में वृद्धि कर लेगा। प्राय: पूर्ति के बढ़ जाने से मूल्य में कमी होती है जिससे लाभ में कमी आ जाती है। प्राय: उत्पादक वस्तु का उत्पादन उस सीमा तक करेगा, जहाँ पर वस्तु की कीमत उत्पादन लागत के बराबर होती है, क्योंकि इस सीमा के बाद उत्पादन लागत मूल्य की तुलना में अधिक हो जाती है।

TOUCH 'n' PASS

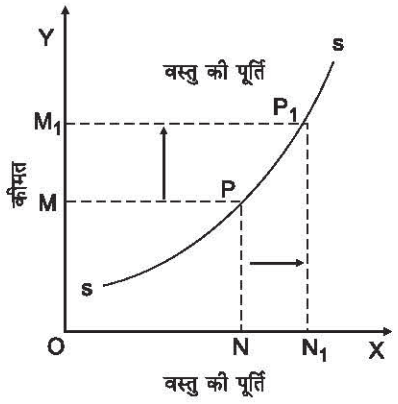


चित्र 2

किसी वस्तु की पूर्ति, पूर्ति के नियम (Law of Supply) से नियन्त्रित होती है। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि ऊँची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा बेची या उत्पादित की जायेगी। चित्र 2 से इस बात को स्पष्ट किया गया है।

चित्र में $SS$ पूर्ति रेखा है। जब बाजार में वस्तु का मूल्य $OM$ है तो वस्तु की पूर्ति $ON$ रहती है। इस पूर्ति पर वस्तु की सीमान्त लागत $NP$ के बराबर है। यदि वस्तु के मूल्य में $OM$ से $OM_1$ की वृद्धि हो जाती है, तो वस्तु की पूर्ति में $ON$ से $ON_1$ की वृद्धि हो जाती है और वस्तु को सीमान्त लागत $N_1P_1$ हो जाती है। इस प्रकार पूर्ति रेखा दो बातों को स्पष्ट करती है—(i) एक निश्चित कीमत में पूर्ति की मात्रा, तथा (ii) पूर्ति मात्रा की सीमान्त लागत।

**प्र.7. पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य का सामान्य सिद्धान्त क्या है?**
**What is the general theory of value in perfect competition?**

**उत्तर**

## पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य का सामान्य सिद्धान्त
## (General Theory of Value in Perfect Competition)

प्राचीन अर्थशास्त्री किसी वस्तु के मूल्य-निर्धारण के बिन्दु पर एकमत नहीं थे। मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं। **अल्फ्रेड मार्शल** (Alfred Marshall) के पूर्व के अर्थशास्त्री इस विवाद को समाप्त नहीं कर पाये कि वस्तु का मूल्य-निर्धारण माँग पक्ष करता है अथवा पूर्ति पक्ष। प्रथम विचारधारा के अनुसार, किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की उत्पादन लागत (Cost of Production) द्वारा तय किया जाता है। इस विचारधारा के प्रतिपादक डेविड रिकार्डो थे। **रिकार्डो** ने अपने **श्रम मूल्य सिद्धान्त** (Labour Theory of value) में यह स्पष्ट किया है कि किसी वस्तु का मूल्य उसमें निहित श्रम से आँका जाता है क्योंकि रिकार्डो के अनुसार, श्रम ही मूल्य-निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में, रिकार्डो ने वस्तु मूल्य-निर्धारण में केवल पूर्ति पक्ष (Supply Side) को ही ध्यान में रखा तथा माँग पक्ष (Demand Side) की पूर्ण उपेक्षा की। दूसरी विचारधारा के प्रतिपादक **जेवन्स** (Jevons), **वालरस** (Walras) आदि थे जिन्होंने उपयोगिता के आधार पर वस्तु मूल्य-निर्धारण पर बल दिया है। इन दोनों अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) द्वारा निर्धारित एवं नियन्त्रित होता है। जेवन्स तथा वालरस के अनुसार किसी वस्तु की माँग उस वस्तु में निहित उपयोगिता के आधार पर की जाती है। उपयोगिता यद्यपि एक मनोवैज्ञानिक तथा सापेक्षिक तथ्य है तथा उपयोगिता एवं लाभदायकता (Usefulness) परस्पर सम्बन्धित भी नहीं हैं फिर भी इसे मुद्रा के मापदण्ड से मापा जाता है। इस प्रकार इस विचारधारानुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करता है। अत: जेवन्स-वालरस विचारधारा के अनुसार माँग पक्ष (Demand Side) किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है।

उपर्युक्त दोनों विचारधाराएँ विरोधी तथा विवादास्पद थीं। यह विवाद का बिन्दु बना रहा कि माँग अथवा पूर्ति में से कौन-सा पक्ष किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित करता है।

इस विवाद का हल हम **मार्शल** (Marshall) की विचारधारा में पाते हैं जिन्होंने यह बताया कि किसी वस्तु के मूल्य-निर्धारण में माँग तथा पूर्ति पक्ष अकेले भूमिका नहीं निभाते वरन् दोनों पक्षों-माँग तथा पूर्ति के सामूहिक एवं परस्पर सहयोग से ही किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है। किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की उत्पादन लागत (पूर्ति पक्ष) तथा उस वस्तु की उपयोगिता (माँग

TOUCH 'n' PASS

पक्ष) दोनों पर निर्भर करता है। इस प्रकार मार्शल ने इस बात पर बल दिया कि माँग और पूर्ति दोनों शक्तियाँ (Both Forces of Demand and Supply) मूल्य-निर्धारण में क्रियाशील होती हैं तथा वस्तु का मूल्य उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहाँ वस्तु की माँग (Demand of Goods) तथा वस्तु की पूर्ति (Supply of Goods) परस्पर बराबर हो जाते हैं।

**प्रो० मार्शल** के शब्दों में, "हमारा यह विवाद करना कि यह कैंची के ऊपर का अथवा नीचे का फलक है जो कागज के टुकड़े को काटता है, ठीक इसी प्रकार होगा कि वस्तु मूल्य उपयोगिता द्वारा अथवा उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। यह सत्य है कि जब एक फलक को स्थिर रखकर दूसरे फलक को चलाकर कागज को काटा जाता है तो हम असावधानी के कारण कह सकते हैं कि कागज को दूसरे फलक द्वारा काटा गया है किन्तु यह कथन पूर्णरूपेण सत्य नहीं है क्योंकि यह तभी माना जा सकता है जब पूरी तरह से हम वैज्ञानिक बात न कर रहे हों।"

मार्शल की विचारधारा वास्तविकता के अधिक निकट है क्योंकि वास्तव में कागज को काटने में कैंची के दोनों फलकों का सहयोग है। अकेला कोई भी फलक कागज नहीं काट सकता। यह सत्य है कि कैंची का एक फलक स्थिर तथा दूसरा गतिशील होता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि स्थिर फलक की कागज को काटने में कोई भूमिका नहीं। स्थिर फलक कागज काटने में स्थिर होते हुए भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ठीक इसी प्रकार माँग और पूर्ति शक्तियाँ एक साथ क्रियाशील होकर किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित करती हैं। मूल्य-निर्धारण की प्रक्रिया में किसी भी पक्ष को अलग नहीं किया जा सकता। यह एक अलग प्रश्न है कि मूल्य-निर्धारण प्रक्रिया में माँग पक्ष तथा पूर्ति पक्ष इन दोनों में से अधिक महत्त्वपूर्ण कौन-सा पक्ष है। माँग अथवा पूर्ति का सापेक्षिक महत्त्व समय तत्त्व (Time Element) पर आधारित है जिसकी व्याख्या हम इसी अध्याय में आगे करेंगे।

माँग और पूर्ति पक्षों के परस्पर सहयोग के लिए **स्टोनियर एवं हेग** (Stonier and Hague) ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके शब्दों में, "इस प्रश्न का बिल्कुल सही उत्तर कि माँग अथवा पूर्ति कीमत को निर्धारित करते हैं, यही है कि दोनों ही कीमत को निर्धारित करते हैं। इनका सापेक्षिक महत्त्व उस समय देखा जा सकता है कि इनमें एक सक्रिय हो और दूसरा निष्क्रिय।"

**माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन द्वारा कीमत-निर्धारण : चित्र द्वारा निरूपण** (Price Determination by Equilibrium between Demand and Supply: Diagrammatic Representation)—मार्शल की विचारधारा के अनुसार माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र दोनों किसी वस्तु की कीमत निर्धारित करते हैं। माँग वक्र उपभोक्ता से सम्बन्धित होता है जो बायें से दायें नीचे गिरता हुआ होता है जिसका अभिप्राय है कि उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की माँग तथा उस वस्तु की कीमत में विपरीत सम्बन्ध है। उपभोक्ता का यह प्रयास होता है कि वह कम कीमत देकर वस्तु की अधिक मात्रा खरीद ले। इसके विपरीत, पूर्ति वक्र उत्पादन से सम्बन्धित है जो बायें से दायें ऊपर चढ़ता हुआ होता है जिसका अर्थ है कि उत्पादन के लिए वस्तु की पूर्ति तथा वस्तु की कीमत में सीधा सम्बन्ध है। ऊँची कीमत पर उत्पादक वस्तु की अधिक पूर्ति करेगा तथा कम कीमत पर उत्पादक वस्तु की कम पूर्ति करने को तत्पर होगा। उत्पादक का यह प्रयास होता है कि वह ऊँची कीमत लेकर वस्तु की कम-से-कम मात्रा बेचे। इस प्रकार उपभोक्ता तथा उत्पादक परस्पर विरोधी उद्देश्यों के साथ क्रियाशील होते हैं।

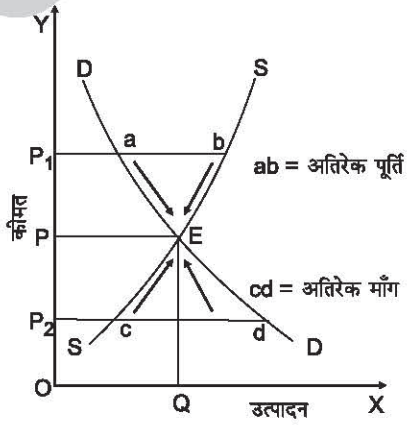


**चित्र : पूर्ण प्रतियोगिता : कीमत-निर्धारण माँग-पूर्ति सन्तुलन**

चित्र में माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र को क्रमश: *DD* तथा *SS* द्वारा प्रदर्शित किया गया है। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत संयन्त्र (Price Mechanism) एक स्वत: क्रिया (Automatic) है जिसमें किसी बाह्य हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। माँग और पूर्ति फलन स्वयं उस बिन्दु पर कीमत निधारित करते हैं जहाँ वस्तु की माँग तथा वस्तु की पूर्ति परस्सर बराबर हो जायें। वह कीमत जिस

पर उपभोक्ता तथा उत्पादक दोनों सन्तुष्ट हो जायें अर्थात् जिस कीमत पर वस्तु की माँगी गयी मात्रा वस्तु की पूर्ति की मात्रा के बराबर हो जाये उसे सन्तुलन कीमत (Equilibrium Price) कहा जाता है। चित्र में यह सन्तुलन बिन्दु $E$ द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सन्तुलन बिन्दु $E$ पर,

$$\text{सन्तुलन कीमत} = OP \text{ अथवा } EQ$$
$$\text{वस्तु की माँग} = \text{वस्तु की पूर्ति}$$
$$= OQ = \text{सन्तुलन मात्रा}$$

इस सन्तुलन कीमत तथा सन्तुलन मात्रा पर क्रेता तथा विक्रेता दोनों सन्तुष्ट होते हैं। जिस कीमत पर जितनी मात्रा क्रेता खरीदना चाहता है, उसी कीमत पर उतनी ही मात्रा विक्रेता बेचना चाहता है। यदि इस सन्तुलन कीमत तथा सन्तुलन मात्राओं में परिवर्तन होता है तो क्रेता तथा विक्रेता क्रमश: माँग वक्र और पूर्ति वक्र के अधीन इस प्रकार आपस में प्रतिक्रिया करेंगे कि सन्तुलन कीमत तथा सन्तुलन मात्रा पुन: प्राप्त हो जाये।

1. **यदि वस्तु की कीमत सन्तुलन कीमत से अधिक है** तब अतिरेक पूर्ति के कारण वस्तु कीमत घटना आरम्भ करेगी और तब तक घटती रहेगी जब तक कीमत घटकर सन्तुलन कीमत के बराबर न हो जाये।
   चित्र में यदि वस्तु की कीमत $OP_1$ है तब
   $$\text{उपभोक्ता की माँग} = P_1a$$
   $$\text{वस्तु की पूर्ति} = P_1b$$
   चित्र से स्पष्ट है कि पूर्ति अधिक है माँग से अर्थात्
   $$P_1b > P_1a$$
   दूरी $ab$ अर्थात् $(P_1b - P_1a)$ अतिरेक पूर्ति (Excess Supply) को प्रदर्शित करती है।
   माँग से वस्तु की पूर्ति अधिक होने के कारण वस्तु की कीमत $OP_1$ घटना आरम्भ होगी और तब तक घटती रहेगी जब तक कि वस्तु की माँग तथा वस्तु की पूर्ति परस्पर बराबर होकर बिन्दु $E$ पर पुन: सन्तुलन प्राप्त नहीं कर लेतीं। चित्र में माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र पर तीरों द्वारा $aE$ तथा $bE$ मार्ग दिखाया गया है। माँग से पूर्ति की अधिकता विक्रेताओं में स्पर्धा उत्पन्न करती है जिससे सन्तुलन कीमत घटकर $OP$ तक पहुँच जाती है।
2. **यदि वस्तु की कीमत सन्तुलन कीमत से कम है** तब अतिरेक माँग के कारण वस्तु की कीमत बढ़ना आरम्भ करेगी और तब तक बढ़ती रहेगी जब तक कीमत बढ़कर सन्तुलन कीमत के बराबर न हो जाये।
   चित्र में यदि वस्तु की कीमत $OP_2$ है तब,
   $$\text{वस्तु की माँग} = P_2d$$
   $$\text{वस्तु की पूर्ति} = P_2c$$

चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की माँग अधिक है वस्तु की पूर्ति से अर्थात्

$$P_2d > P_2c$$

दूरी $cd$ (अर्थात् $P_2d - P_2c$) अतिरेक माँग (Excess Demand) को प्रदर्शित करती है।

पूर्ति से माँग अधिक होने के कारण क्रेताओं में स्पर्धा होती है जिसके कारण वस्तु की कीमत बढ़ना आरम्भ होती है तथा तब तक बढ़ती जाती है जब तक पुन: सन्तुलन मूल्य (Equilibrium Price) $OP$ प्राप्त न हो जाये। चित्र में माँग वक्र एवं पूर्ति वक्र पर क्रमश: तीरों द्वारा $dE$ तथा $cE$ मार्ग प्रदर्शित किया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगी बाजार में यदि सन्तुलन कीमत में कुछ विचलन (Deviation) होता है तो माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ स्वयं क्रियाशील होते हुए विचलन को समाप्त करके प्रतियोगी कीमत को फिर से सन्तुलन कीमत पर ले आयेंगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तु की कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ वस्तु का माँग वक्र तथा वस्तु का पूर्ति वक्र एक-दूसरे को काटते हैं।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.8. बाजार मूल्य का क्या अर्थ है? बाजार मूल्य का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?**
**What is the meaning of market price? How is market price determined?**

**उत्तर**

## बाजार मूल्य का अर्थ
## (Meaning of Market Price)

बाजार मूल्य वह मूल्य है जो बाजार में माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के अस्थायी सन्तुलन द्वारा तय होता है। बाजार मूल्य दिन में कई बार परिवर्तित होता है, क्योंकि माँग एवं पूर्ति के सन्तुलन बनते-बिगड़ते रहते हैं। प्राय: यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि बाजार मूल्य बाजार में कितनी देर तक प्रचलित रह सकता है? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यह अवधि माँग-पूर्ति की शक्तियों के सन्तुलन के ऊपर निर्भर करेगी। मान लीजिए, माँग एवं पूर्ति की शक्तियों में सन्तुलन स्थापित हो चुका है और उस सन्तुलन को बाह्य प्रभाव तोड़ नहीं सकते हैं, तो मूल्य के स्थिर रहने की अवधि कुछ अधिक होगी। यदि सन्तुलन बनते-बिगड़ते हैं, तो बाजार मूल्य की अवधि क्षणिक भी हो सकती है। बाजार मूल्य में वस्तु की पूर्ति उसके स्टॉक (Stock) के ऊपर निर्भर करती है। समय इतना कम रहता है कि पूर्ति को माँग के अनुसार घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता है। मूल्य के निर्धारण में पूर्ति पक्ष निष्क्रिय और माँग पक्ष सक्रिय रहता है। संक्षेप में, बाजार मूल्य के निर्धारण में माँग का ही सबल हाथ होता है। प्रतियोगिता की दशा में बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सदैव दीर्घकालीन मूल्य अर्थात् सामान्य मूल्य (Normal Price) की ओर बढ़ने की होती है।

### बाजार मूल्य का निर्धारण (Determination of Market Price)

बाजार मूल्य में दो प्रकार की वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की समस्या है—1. पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ (Reproducible Commodities), तथा 2. निरुत्पादनीय वस्तुएँ (Non-Reproducible Commodities)।

1. **पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ** (Reproducible Commodities)—पुनरुत्पादनीय वस्तुएँ वे हैं, जिनका उत्पादन बार-बार हो सकता है; जैसे गेहूँ, चावल, दालें, कपड़ा, लोहा, फर्नीचर, घड़ी, हरी सब्जी, दूध, दही आदि। अर्थशास्त्रियों ने पुनरुत्पादनीय वस्तुओं को भी दो भागों में बाँटा है—
   (i) शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ (Perishable Commodities), तथा
   (ii) शीघ्र नष्ट न होने वाली टिकाऊ वस्तुएँ (Durable Commodities)।
2. **निरुत्पादनीय वस्तुएँ** (Non-reproducible Commodities)—निरुत्पादनीय वस्तुएँ वे हैं, जिनका उत्पादन बार-बार नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, प्राचीन समय के कलात्मक चित्र तथा मृतक लेखक की पाण्डुलिपि, आदि।

**I. शीघ्र नष्ट होने वाली तथा निरुत्पादनीय वस्तुओं का मूल्य निर्धारण**—यहाँ हमने दोनों प्रकार की वस्तुओं को एक साथ ले लिया है, क्योंकि दोनों प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति स्थिर रहती है।

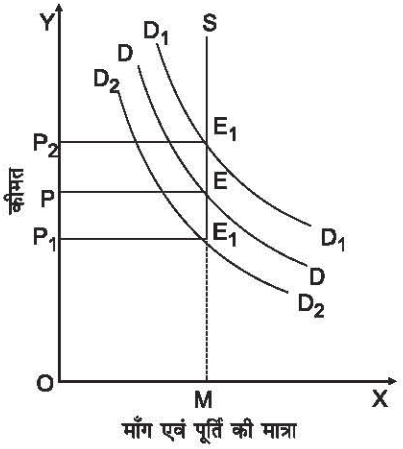




चित्र 1

1. **शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ** (Perishable Commodities)—जैसे मांस, मछली, फल, हरी सब्जी, दूध-दही, आदि। एक समय विशेष में जब किसी बाजार में ऐसी वस्तुओं को बेचने के लिए लाया जाता है तब उन्हें उसी दिन बेचना होता है, क्योंकि दूसरे दिन ये वस्तुएँ सड़-गल कर नष्ट हो जायेंगी। पूर्ति करने से पूर्व ही इन वस्तुओं का बाजार उठ जाता है।
2. **निरुत्पादनीय वस्तुएँ** (Non-reproducible Commodities)—निरुत्पादनीय वस्तुओं की पूर्ति भी यथास्थिर रहती है, क्योंकि इन वस्तुओं की पूर्ति बार-बार नहीं की जा सकती है। इन वस्तुओं के उत्पादन-स्रोत समाप्त हो चुके होते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की वस्तुओं की पूर्ति रेखा खड़ी होगी जैसा कि चित्र 1 से स्पष्ट किया गया है। चित्र में $SM$ पूर्ति रेखा है, जो कि $E_2$ बिन्दु के बाद $M$ तक टूटी हुई है। चित्र में $OP_1$ 'सुरक्षित मूल्य' (reserve price) है। माना सुरक्षित मूल्य उत्पादन लागत के बराबर है। वस्तु की माँग $D_1D_1$ है। माँग और पूर्ति का साम्य $E_1$ पर है इसलिए वस्तु की कीमत $OP_2$ तय होती है। अब यदि माँग घटकर $DD$ होती है, तो नया सन्तुलन $E$ बिन्दु पर प्राप्त होता है जहाँ वस्तु का मूल्य $OP$ निर्धारित होता है। अब यदि वस्तु की माँग पुन: घटकर $D_2D_2$ होती है तो माँग-पूर्ति का नया सन्तुलन $E_2$ होगा और मूल्य घटकर $OP_3$ हो जायेगा। चित्र $OP_1$ सुरक्षित मूल्य है जिससे कम पर विक्रेता वस्तु को बेचने के लिए तैयार नहीं होता और वस्तु की पूर्ति को शून्य बना देता है।

**II. शीघ्र नष्ट न होने वाली या टिकाऊ वस्तुओं का बाजार-मूल्य निर्धारण** (Determination of market price of the Non-perishable Commodities)—यदि वस्तुएँ शीघ्र नष्ट होने वाली न हों, तो उन्हें दो-चार दिन तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इन वस्तुओं के विक्रेता इन्हें 'सुरक्षित कीमत' से नीचे नहीं बेचते हैं, क्योंकि इन वस्तुओं के शीघ्र नष्ट होने की सम्भावना कम रहती है। इस प्रकार इन वस्तुओं की पूर्ति रेखा 'निम्नतम' व 'उच्चतम' मूल्य के बीच बायें से दायें ऊपर की ओर बढ़ती है तथा 'उच्चतम मूल्य बिन्दु' ($E_2$) के बाद लम्बवत् (vertical) हो जाती है। ऐसी पूर्ति की दशा में माँग बढ़ने पर पूरी वस्तुएँ बेच दी जायेंगी और माँग के घटने पर वस्तुएँ रोक दी जायेंगी।

उपर्युक्त व्याख्या को चित्र 2 से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में $SE_2S_1$ पूर्ति वक्र है। $DD$ माँग वक्र पूर्ति वक्र को $E_1$ पर काटता है, अत: सन्तुलन मूल्य $OP_1$ हुआ। इस मूल्य पर विक्रेता $ON_1$ मात्रा बेचता है और $N_1N$ मात्रा बचाकर रख लेता है। यदि माँग बढ़कर $D_1D_1$ होती है, तो माँग-पूर्ति का नया सन्तुलन $E_2$ पर होगा और मूल्य बढ़कर $OP_2$ होगा। इस मूल्य पर वस्तु की पूरी $ON$ मात्रा बिक जाती है। माना किन्हीं कारणों से वस्तु की माँग बढ़कर $D_2D_2$ होती है, तब माँग-पूर्ति का नया सन्तुलन $E_3$ है। फलत: इस सन्तुलन पर वस्तु का मूल्य बढ़कर $OP_3$ होगा और वस्तु की पूर्ति पूर्ववत् $ON$ ही बिकेगी, जबकि विक्रेता के लाभ में वृद्धि होगी।

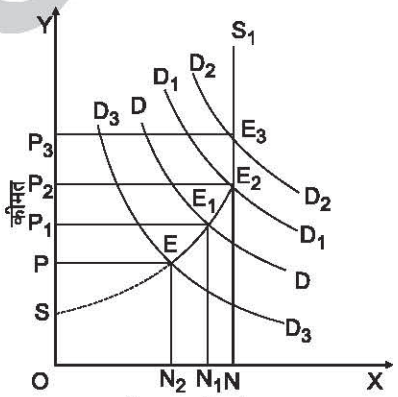


चित्र 2

यदि माँग घटकर $D_3D_3$ होती है, तो मूल्य घटकर $OP$ होगा। इस मूल्य पर विक्रेता केवल $ON_2$ मात्रा को बेचेगा शेष $N_2N$ को बचाकर रखेगा। $OS$ या इससे कम मूल्य पर वस्तु की बिक्री बन्द कर दी जायेगी। $OS$ 'निम्नतम मूल्य' अथवा 'सुरक्षित मूल्य' है, जिस पर विक्रेता अपनी वस्तु की कोई पूर्ति विक्रय के लिए प्रस्तुत नहीं करता।

TOUCH 'n PASS

**प्र.9. एकाधिकार की परिभाषा देते हुए इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।**
**Giving the definition of monopoly, explain its meaning.**

**उत्तर** एकाधिकार दो शब्दों से मिलकर बना है—एक + अधिकार अर्थात् बाजार की वह स्थिति जब बाजार में वस्तु का केवल एकमात्र विक्रेता हो। एकाधिकारी बाजार दशा में वस्तु का एक अकेला विक्रेता होने के कारण विक्रेता का वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। विशुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly) में वस्तु का निकट स्थानापन्न भी उपलब्ध नहीं होता। एकाधिकारी बाजार में वस्तु का एक ही उत्पादक होने के कारण फर्म तथा उद्योग में कोई अन्तर नहीं होता अर्थात् एकाधिकार में उद्योग ही फर्म है अथवा फर्म ही उद्योग है।

## एकाधिकार की परिभाषाएँ
## (Definitions of Monopoly)

**प्रो० ब्रैफ** (Braff) के शब्दों में, "शुद्ध एकाधिकार के बाजार में एक विक्रेता होता है। एकाधिकारी माँग बाजार की माँग होती है, एकाधिकारी कीमत निर्माता होता है। एकाधिकार स्थानापन्न का अभाव प्रदर्शित करता है।"

**प्रो० मैक्कॉनल** (McConnell) के शब्दों में, "शुद्ध एकाधिकार की स्थिति उस समय होती है जब एक अकेली फर्म एक वस्तु की एकमात्र उत्पादक होती है जिसका कोई स्थानापन्न नहीं होता।"

**प्रो० लेफ्टविच** (Leftwitch) के अनुसार, "शुद्ध एकाधिकार वह बाजार दशा है जिसमें एक फर्म उस वस्तु के उत्पादन को बेचती है जिसका स्थानापन्न उपलब्ध न हो। इस प्रकार वस्तु का सम्पूर्ण बाजार इस फर्म के लिए ही होता है। इसमें समीपस्थ वस्तुएँ नहीं होतीं जिनकी कीमत एवं बिक्री एकाधिकारी वस्तु की कीमत एवं उनके विक्रय को प्रभावित कर सकें।"

एकाधिकार में निकट स्थानापन्न के अभाव को **माँग की आड़ी लोच** (Cross Elasticity of Demand) के शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। माँग की आड़ी लोच से अभिप्राय है कि किसी वस्तु की माँग में किसी दूसरी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप कितना परिवर्तन होता है। इस प्रकार एकाधिकार में एकाधिकारी वस्तु की आड़ी माँग लोच लगभग शून्य अथवा नगण्य होती है क्योंकि एकाधिकारी वस्तु का स्थानापन्न नहीं होता।

**प्रो० स्टिगलर** के अनुसार, "एकाधिकार तब उत्पन्न होता है जब फर्म के उत्पादन की आड़ी माँग लोच दूसरी फर्मों की कीमतों के सन्दर्भ में सूक्ष्म हो।"

विशुद्ध एकाधिकार में माँग की लोच इकाई होती है जिसके कारण एकाधिकार के माँग वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर उपभोक्ता का व्यय एकसमान रहता है। **प्रो० स्टोनियर** एवं **प्रो० हेग** के अनुसार, "ऐसी दशा में औसत आगम वक्र (AR curve) आयताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperobla) होता है जिसकी माँग की लोच इकाई के बराबर होती है।"

एकाधिकार में एकमात्र उत्पादक एवं विक्रेता होने के कारण तथा निकट स्थानापन्न के अभाव के कारण उद्योग में अन्य फर्मों के प्रवेश पर कड़ा प्रतिबन्ध होता है। दूसरे शब्दों में, एकाधिकार में फर्म और उद्योग में कोई अन्तर नहीं होता; फर्म ही उद्योग है तथा उद्योग ही फर्म है (Firm is Industry and Industry is Firm)। फलस्वरूप वस्तु का उद्योग माँग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला होता है। एकाधिकारी पूर्ण प्रतियोगिता के उत्पादक की भाँति कीमत प्राप्तकर्त्ता (Price Taker) नहीं होता बल्कि कीमत निर्धारक (Price Maker) होता है किन्तु एकाधिकारी किसी वस्तु की कीमत तथा उस वस्तु की पूर्ति दोनों को एक साथ नियन्त्रित नहीं कर सकता। यदि वह विक्रय को बढ़ाना चाहता है तो उसे कीमत कम करनी पड़ेगी। एकाधिकारी के लिए सीमान्त आगम कम होता है औसत आगम से,

$$MR < AR$$

या $MR <$ वस्तु की प्रति इकाई कीमत

क्योंकि एकाधिकार में, $MR = AR\left(\frac{e-1}{e}\right)$ जहाँ $e$ = कीमत सापेक्षता

अथवा $AR = MR\left(\frac{e}{e-1}\right)$

इस प्रकार एकाधिकार में $AR$ तथा $MR$ वक्रों का सम्बन्ध कीमत सापेक्षता पर निर्भर करता है।

TOUCH 'n PASS

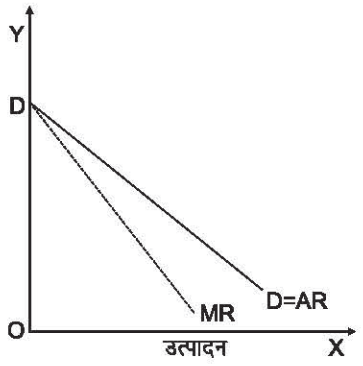


चित्र

प्रस्तुत चित्र में एकाधिकारी का माँग वक्र *DD* ही औसत आगम वक्र (AR Curve) है। चित्र में सीमान्त आगम वक्र को *MR* से दिखाया गया है। सीमान्त आगम वक्र एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से होती हुई आय को प्रदर्शित करता है। एकाधिकार में वस्तु की अतिरिक्त मात्रा बेचने पर विक्रेता को वस्तु की कीमत कम करनी पड़ती है जिसके कारण *AR* वक्र गिरता हुआ है और *MR* वक्र *AR* वक्र से नीचे है। दोनों वक्रों की दूरी मूल्य सापेक्षता (*e*) पर निर्भर करती है।

**प्र.10. एकाधिकार में फर्म के सन्तुलन की दशाओं की व्याख्या कीजिए।**

**Explain the conditions of firm's equilibrium under monopoly.**

**उत्तर**

## एकाधिकार में फर्म के सन्तुलन की दशाएँ
## (Conditions of Firm's Equilibrium Under Monopoly)

पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति एकाधिकार में भी फर्म के सन्तुलन की निम्नलिखित दो शर्तें हैं—

### शर्तें (Conditions)

1. सन्तुलन के बिन्दु पर,

$$MR = MC$$

सीमान्त आगम = सीमान्त लागत

एकाधिकारी का लाभ उस बिन्दु पर अधिकतम होगा जब वह अपना उत्पादन स्तर परिवर्तित करके अपने लाभ में कमी करता है अर्थात् सन्तुलन के बिन्दु पर आने के बाद एकाधिकारी किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं चाहेगा। अधिकतम लाभ का बिन्दु तब प्राप्त होता है जब सीमान्त आगम तथा सीमान्त लागत परस्पर बराबर हो जायें। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी उत्पादन उस बिन्दु तक करेगा जहाँ एक अतिरिक्त इकाई को बेचने से प्राप्त आगम बराबर है उस अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत के; यही बिन्दु अधिकतर लाभ का बिन्दु होगा।

यह शर्त *MR* = *MC* आवश्यक तो है किन्तु पर्याप्त नहीं। *MR* और *MC* के बराबर होने की दशा एक से अधिक बिन्दुओं पर उत्पन्न हो सकती है। ऐसे सभी बिन्दुओं में से जिन पर *MR* = *MC* है वह बिन्दु अन्तिम सन्तुलन का बिन्दु होगा जहाँ पहली शर्त के साथ-साथ सन्तुलन की निम्नांकित दूसरी शर्त भी पूरी होगी—

2. सन्तुलन के बिन्दु पर,

[Slope of *MR* Curve] < [Slope of *MC* Curve]

(सीमान्त आगम वक्र का ढाल) कम होता है (सीमान्त लागत वक्र के ढाल) से

दूसरे शब्दों में, सीमान्त लागत वक्र (*MC* Curve) सीमान्त आगम वक्र (*MR* Curve) को नीचे से काटता हुआ होना चाहिए। यह दशा पूरी होने पर ही वह बिन्दु अन्तिम सन्तुलन का बिन्दु होगा।

उपर्युक्त दशाओं के पूरा होने के साथ-साथ एकाधिकारी सन्तुलन में एक सैद्धान्तिक बिन्दु विचार करने योग्य है। एकाधिकारी कभी भी अपनी वस्तु के उत्पादन का वह बिन्दु तय नहीं करेगा जहाँ उसके औसत आगम वक्र (*AR* Curve) की लोच इकाई से कम (Less than Unity) हो। एकाधिकारी का प्रयास सदैव यह होता है कि वह उस बिन्दु पर उत्पादन निर्धारित करे जहाँ माँग की लोच इकाई से अधिक (Greater than Unity) हो। इसका मुख्य कारण यह है कि जब माँग की लोच इकाई के बराबर

TOUCH 'n PASS

होती है तब सीमान्त आगम (*MR*) शून्य होता है। माँग की लोच इकाई से कम होने पर *MR* ऋणात्मक (Negative) हो जाता है जिसका अभिप्राय है कि उसके कुल आगम (*TR*) में कमी होने लगती है जो उत्पादक के लिए हानिकारक है। दिए चित्र में औसत आगम वक्र *PQ* के *PR* भाग पर माँग की लोच इकाई से अधिक है क्योंकि इस भाग से सम्बन्धित *MR* वक्र का *PX* भाग धनात्मक है जिसके कारण कुल आगम वक्र (*TR* Curve) बिन्दु *O* से *S* तक बढ़ता हुआ है। बिन्दु *R* पर माँग की लोच इकाई के बराबर है अर्थात् सीमान्त आगम शून्य (बिन्दु *X*) तथा कुल आगम अधिकतम (बिन्दु *S*) होता है किन्तु माँग वक्र के *RQ* भाग से सम्बन्धित सीमान्त आगम वक्र ऋणात्मक है (देखें *MR* वक्र का *XT* भाग) तथा कुल आगम वक्र नीचे गिरने लगता है (देखें *TR* वक्र का *SK* भाग) जो हानि का सूचक है। अत: उत्पादक कभी भी माँग वक्र के *PQ* भाग पर उत्पादन बिन्दु निश्चित नहीं करेगा अर्थात् जहाँ माँग की लोच इकाई से कम हो वह बिन्दु एकाधिकारी का उत्पादन बिन्दु नहीं होगा।

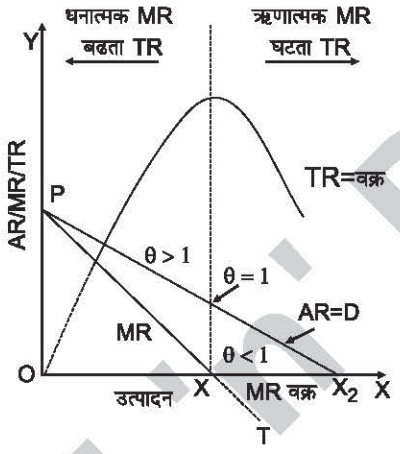


**चित्र : एकाधिकार आगम सम्बन्ध**

प्रथम शर्त के अनुसार एकाधिकारी तब अधिकतम लाभ प्राप्त करेगा जबकि *MR* = *MC*। साधारणतया सीमान्त लागत (*MC*) सदैव धनात्मक होती है। अत: एकाधिकारी उस बिन्दु पर उत्पादन सुनिश्चित करेगा जहाँ उसका सीमान्त आगम (*MR*) धनात्मक हो या दूसरे शब्दों में, जहाँ माँग की लोच इकाई से अधिक हो। केवल सीमान्त लागत (*MC*) के शून्य होने की दशा में एकाधिकारी वह बिन्दु उत्पादन के लिए चुनेगा जहाँ सीमान्त आगम शून्य हो। सामान्यत: एकाधिकारी की माँग की लोच इकाई से अधिक होने के बिन्दु पर उत्पादन तथा विक्रय करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

**प्र.11. एकाधिकार में अल्पकाल में कीमत का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?**

**How is the price determined in the short-run under monopoly?**

**उत्तर**

## एकाधिकार में अल्पकाल में कीमत-निर्धारण
## (Price Determination in Short-Run under Monopoly)

अल्पकाल में एकाधिकारी लाभ (Profit), सामान्य लाभ (Normal Profit) तथा हानि (Loss) तीनों स्थितियों में उत्पादन कार्य करता है। यह एक गलत धारणा है कि एकाधिकारी सदैव अल्पकाल में लाभ ही अर्जित करता है। एकाधिकारी अल्पकाल में लाभ, सामान्य लाभ या हानि किस स्थिति में काम करेगा यह बाजार के माँग वक्र और बाजार की लागत दशाओं पर निर्भर करता है। पूर्ण प्रतियोगिता फर्म की भाँति एकाधिकारी फर्म भी अल्पकाल में हानि का सामना कर सकती है। एकाधिकारी अल्पकालीन हानि की स्थिति में उस बिन्दु तक उत्पादन करना उचित समझेगा जिस बिन्दु तक उसे औसत परिवर्तनशील लागत (*AVC*) के बराबर या उससे अधिक वस्तु की कीमत प्राप्त नहीं होती। सामान्यत: एकाधिकारी द्वारा उत्पादित वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न (Close Substitute) उपलब्ध नहीं होता जिसके कारण एकाधिकारी अल्पकाल में अपनी हानि से बचने के उद्देश्य से वस्तु की कीमत उस वस्तु की औसत लागत (*AC*) के बराबर करने का प्रयास कर सकता है किन्तु यह एक प्रयास मात्र है। हम अल्पकाल में एकाधिकारी हानि की सम्भावना से इन्कार नहीं कर सकते। एकाधिकारी के लिए अल्पकाल में हानि की स्थिति कोई असम्भव अवस्था नहीं है।

संक्षेप में, एकाधिकार में अल्पकाल की सभी सम्भावित दशाओं को अग्रांकित चित्रों से समझा जा सकता है—

TOUCH 'n' PASS

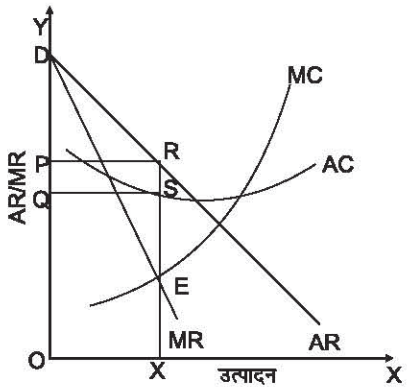


चित्र 1 : एकाधिकार : अल्पकालीन लाभ

1. **लाभ की दशा** (Profit Situation)—चित्र 1 में एकाधिकारी के अल्पकालीन लाभ की दशा को दिखाया गया है। चित्र में एकाधिकारी वस्तु का माँग वक्र $AR$ तथा उससे सम्बन्धित सीमान्त आगम वक्र $MR$ वक्र प्रदर्शित किये गये हैं। एकाधिकारी का सन्तुलन बिन्दु $E$ पर दिखाया गया है जहाँ एकाधिकारी सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं। इस बिन्दु पर $MR = MC$। इस सन्तुलन की दशा में वस्तु की कीमत $RX$ अथवा $OP$ होगी। इस कीमत पर एकाधिकारी $OX$ वस्तु का उत्पादन करेगा। चित्र में प्रति इकाई लागत $SX$ अथवा $OQ$ है अर्थात् एकाधिकारी को प्रति वस्तु $RS$ दूरी के बराबर लाभ प्राप्त हो रहा है। चित्र से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण उत्पादन $OX$ पर एकाधिकारी को $PRSQ$ के बराबर कुल लाभ प्राप्त होगा। संक्षेप में,

कीमत (Price) = $OP$
उत्पाद (Output) = $OX$
कुल लाभ (Total Profit) = प्रति इकाई लाभ × उत्पाद
= $PQ \cdot OX$
= $PQRS$ क्षेत्रफल

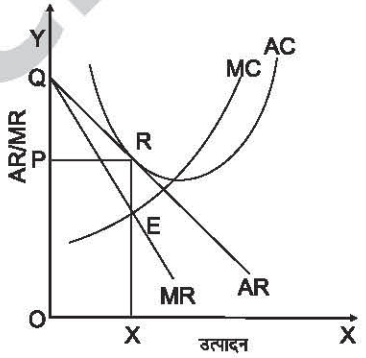


चित्र 2 : एकाधिकारी : सामान्य लाभ

2. **सामान्य लाभ की दशा** (Situation of Nor mal Profit)—चित्र 2 में एकाधिकारी के सामान्य लाभ को प्रदर्शित किया गया है। सामान्य लाभ को शून्य लाभ (Zero Profit) भी कहा जाता है। सामान्य लाभ से अभिप्राय है कि एकाधिकारी वस्तु की औसत उत्पादन लागत के बराबर वस्तु की कीमत ($AR$) तय करता है। चित्र में एकाधिकारी का सन्तुलन बिन्दु $E$ है जहाँ $RX$ वस्तु की औसत लागत और वस्तु की कीमत दोनों है। इस स्थिति में एकाधिकारी को कोई अतिरेक प्राप्त नहीं हो रहा है। क्योंकि बिन्दु $R$ पर,

$$AR = AC$$

TOUCH 'n PASS

संक्षेप में,

कीमत (Price) = $OP$

उत्पादन (Output) = $OX$

एकाधिकारी को शून्य लाभ मिल रहा है।

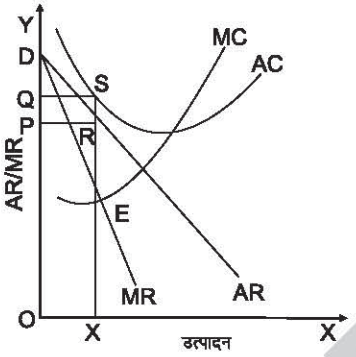


**चित्र 3 : एकाधिकार : अल्पकालीन हानि**

3. **हानि की दशा** (Situation of Loss)—चित्र 3 में एकाधिकारी की अल्पकालीन हानि की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। एकाधिकारी वस्तु की माँग कुछ स्थितियों में इतनी कमजोर भी हो सकती है कि एकाधिकारी को वस्तु की कीमत उस वस्तु की औसत लागत से भी कम करनी पड़े। यह हानि की स्थिति होगी। एकाधिकारी अल्पकाल में औसत परिवर्तनशील लागत ($AVC$) से अधिक कीमत प्राप्त होने पर इस आशा में कार्य करता जाता है कि दीर्घकाल में यह हानि लाभ में परिवर्तित हो जायेगी। चित्र में $RX$ वस्तु की प्रति इकाई कीमत है जबकि उस प्रति इकाई की औसत लागत $SX$ है अर्थात् प्रति इकाई उत्पादक को $SR$ हानि हो रही है। वस्तु का उत्पादन $OX$ है जिसके कारण उत्पादक को $PRSQ$ के बराबर हानि हो रही है।

संक्षेप में,

कीमत (Price) = $OP$

उत्पादन (Output) = $OX$

कुल हानि (Total Loss) = प्रति इकाई हानि × कुल उत्पादन

= $OP \cdot OX = PQSR$ क्षेत्रफल

**प्र.12. दीर्घकाल में एकाधिकारी बाजार में कीमत निर्धारण की विस्तृत विवेचना कीजिए।**

**Discuss in detail the price determination in long-run under monopoly.**

**उत्तर**

## दीर्घकाल में एकाधिकारी बाजार में कीमत-निर्धारण

## (Price Determination in Long-Run under Monopoly)

एकाधिकारी बाजार में उत्पादक का पूर्ति पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। दीर्घकाल उत्पादन की वह लम्बी अवधि है जिसमें एकाधिकारी माँग दशाओं के अनुसार अपनी पूर्ति को पूर्णत: समायोजित कर लेता है। इसी कारण कहा जाता है कि दीर्घकाल में कीमत मुख्य रूप से पूर्ति दशाओं के आधार पर ही निर्धारित होती है। एकाधिकारी अपने लाभ अधिकतमीकरण (Profit Maximisation) के उद्देश्य के कारण बाजार में वस्तु की पूर्ति को इस प्रकार समायोजित करेगा कि उसे प्रत्येक स्थिति में लाभ (Profit) ही प्राप्त हो। अल्पकाल में सीमित अवधि के कारण पूर्ति का माँग के अनुसार समायोजन नहीं हो पाता जिसके कारण अल्पकालीन एकाधिकारी बाजार में लाभ, सामान्य लाभ एवं हानि, तीनों स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं किन्तु दीर्घकाल में पूर्ति के समायोजन के कारण एकाधिकारी केवल लाभ ही अर्जित करता है।

दीर्घकाल में बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण प्रारम्भ में फर्म तथा उद्योग को आन्तरिक एवं बाहरी बचतें (Internal & External Economies) प्राप्त होती हैं परन्तु एक बिन्दु के बाद ये बचतें हानियाँ (Diseconomies) में बदल जाती हैं। जब फर्म तथा उद्योग को आन्तरिक एवं बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं तो उत्पादन में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Increasing Returns to Scale) लागू होता है अर्थात् उत्पादन का आकार बढ़ने पर सीमान्त लागत क्रमश: घटती जाती है। जैसे-जैसे उत्पादन के आकार में वृद्धि होती जाती है और सीमान्त लागत घटती है वैसे-वैसे औसत लागत भी घटती है किन्तु

TOUCH 'n' PASS

औसत लागत के घटने की दर सीमान्त लागत के घटने की दर से कम होती है। इसी प्रक्रिया में उत्पादन मात्रा और अधिक बढ़ने पर हमें एक ऐसा आदर्श बिन्दु प्राप्त होता है जहाँ सीमान्त लागत और औसत लागत परस्पर बराबर हों। इसे हम पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) का नियम कहते हैं। इस आदर्श बिन्दु के बाद आन्तरिक तथा बाहरी बचतें हानियों (Diseconomies) में बदल जाती हैं और पैमाने के घटते प्रतिफल का नियम (Law of Decreasing Returns to Scale) लागू हो जाता है। ऐसी दशा में सीमान्त लागत बढ़ती है, फलस्वरूप औसत लागत भी बढ़ती है परन्तु औसत लागत की तुलना में सीमान्त लागत अधिक तीव्र गति से बढ़ती है।

दीर्घकाल में एकाधिकारी को तीनों ही दशाओं—बढ़ते प्रतिफल, स्थिर प्रतिफल एवं घटते प्रतिफल, में लाभ प्राप्त होता है।

1. **बढ़ते प्रतिफल दशा ( अथवा घटती लागत दशा ) में एकाधिकारी सन्तुलन**—चित्र 1 में बढ़ते प्रतिफल (अथवा घटती लागत) दशा में एकाधिकारी सन्तुलन दिखाया गया है जहाँ $AC$ तथा $MC$ दोनों गिरते हुए होते हैं किन्तु $MC$ वक्र अधिक तेजी से नीचे गिरता है। सन्तुलन दशाओं के अनुसार बिन्दु $E$ पर एकाधिकारी सन्तुलन प्राप्त होगा जहाँ सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं।

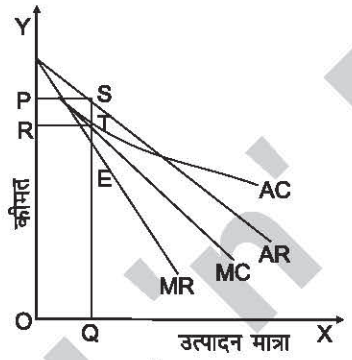


चित्र 1

सन्तुलन बिन्दु $E$ पर,

प्रति इकाई कीमत $= OP$ अथवा $SQ$
प्रति इकाई लागत $= OR$ अथवा $TQ$
कुल उत्पादन $= OQ$
प्रति इकाई लाभ $= OP - OR = PR$ अथवा $ST$
कुल लाभ $= PRTS$ क्षेत्रफल

2. **स्थिर प्रतिफल दशा ( अथवा स्थिर लागत दशा ) में एकाधिकारी सन्तुलन**—चित्र 2 में स्थिर प्रतिफल दशा में एकाधिकारी सन्तुलन दिखाया गया है जहाँ स्थिर प्रतिफल के कारण औसत लागत और सीमान्त लागत आपस में बराबर हैं।

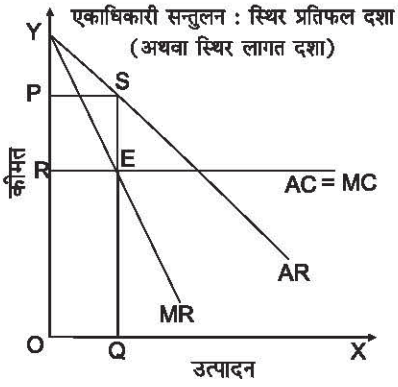


चित्र 2

TOUCH 'n' PASS

सन्तुलन बिन्दु $E$ पर,

प्रति इकाई कीमत = $OP$ अथवा $SQ$
प्रति इकाई लागत = $OR$ अथवा $EQ$
कुल उत्पादन = $OQ$
प्रति इकाई लाभ = $PR$ अथवा $SE$
कुल लाभ = $PRES$ क्षेत्रफल

3. **घटते प्रतिफल दशा ( अथवा बढ़ती लागत दशा ) में एकाधिकारी सन्तुलन**—चित्र 3 में घटते प्रतिफल दशा (अर्थात् बढ़ती लागत दशा) में एकाधिकारी सन्तुलन प्रदर्शित किया गया है। घटते प्रतिफल के कारण $AC$ तथा $MC$ दोनों बढ़ते हैं किन्तु $MC$ अधिक होता है $AC$ से।

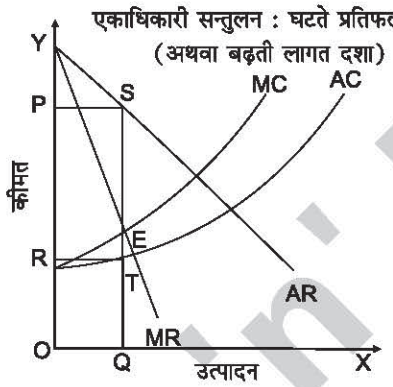


चित्र 3

सन्तुलन बिन्दु $E$ पर,

प्रति इकाई कीमत = $OP$ अथवा $SQ$
प्रति इकाई लागत = $OR$ अथवा $TQ$
कुल उत्पादन = $OQ$
प्रति इकाई लाभ = $PR$ अथवा $ST$
कुल लाभ = $PRTS$ क्षेत्रफल

इस प्रकार दीर्घकाल में एकाधिकारी को सभी प्रकार की लागत दशाओं में लाभ होता है।

**प्र.13. अल्पाधिकार की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। अल्पाधिकार को कितनी श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है?**
**Throw light on the characteristics of oligopoly. Into how many categories can oligopoly be classified?**

**उत्तर**

## अल्पाधिकार की विशेषताएँ अथवा मान्यताएँ
## (Characteristics or Assumptions of Oligopoly)

बाजार की अल्पाधिकार दशा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **प्रतियोगिता एवं समूह व्यवहार**—अल्पाधिकार में सच्ची प्रतियोगिता देखने को मिलती है। इसमें व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए फर्में आपस में संघर्ष पर उतारू हो उठती हैं तथा प्रतियोगी के विरुद्ध प्रतियोगी डटा रहता है। इसके साथ ही सामान्य हितों की रक्षा के लिए कभी-कभी अल्पाधिकारी समूह की फर्में जिनमें परस्पर निर्भरता होती है, परस्पर सहयोग भी करती हैं।
2. **उद्योग में फर्मों के प्रवेश एवं बहिर्गमन में कठिनाई**—अल्पाधिकार की दशा में उद्योग में फर्मों का प्रवेश एवं बहिर्गमन कठिन होता है। इसका कारण यह है कि अल्पाधिकार में फर्मों की संख्या कम होती है तथा सामान्यतया वे बड़े आकार की होती है। अत: उनको स्थापित करने में भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। पुरानी फर्मों का अधिकांश कच्चे माल पर अधिकार रहता है। वे अपने उत्पाद को पैटेण्ट आदि द्वारा सुरक्षित कर लेती हैं। इससे नई फर्मों का उद्योग में प्रवेश कठिन होता है। इसी तरह, उद्योग की वर्तमान फर्में भारी पूँजी निवेश के कारण उद्योग को आसानी से नहीं छोड़ पाती हैं।

TOUCH 'n' PASS

3. **समरूप अथवा भेदित वस्तु**—अल्पाधिकार में फर्में समरूप (बिल्कुल एक जैसी) अथवा भेदीकृत (निकट स्थानापन्न) वस्तुओं का उत्पादन कर सकती हैं। अन्य शब्दों में, अल्पाधिकार वस्तु-विभेद रहित अथवा वस्तु-विभेद सहित हो सकता है।
4. **विज्ञापन एवं विक्रय लागतें**—अल्पाधिकार में उद्योग की सभी फर्में बाजार पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन पर बहुत अधिक धनराशि व्यय करती हैं। सच तो यह है कि अल्पाधिकार में फर्मों का अस्तित्व ही उनके द्वारा किए गए विज्ञापन एवं प्रचार पर निर्भर करता है। जैसा कि **प्रो० बामोल** ने संकेत किया है, "अल्पाधिकार में विज्ञापन जीवन एवं मरण का विषय बन सकता है।" अत: यदि एक अल्पाधिकारी अपनी वस्तु का विज्ञापन एवं प्रचार करता है, तो दूसरे भी अपनी बिक्री को बनाए रखने के लिए उसका अनुसरण करेंगे। कार, टायर, सिगरेट, फ्रिज, शीतल पेय और अन्य दूसरी वस्तुओं का विज्ञापन इस बात का उदाहरण है।
5. **परस्पर निर्भरता**—अल्पाधिकारी उद्योग की फर्मों में परस्पर निर्भरता होती है। प्रत्येक फर्म की कीमत-उत्पादन नीति का अन्य फर्मों की कीमत-उत्पादन सम्बन्धी नीति पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि अल्पाधिकार में वस्तुएँ एक-दूसरे की अच्छी स्थानापन्न होती हैं। उनकी माँग की प्रतिलोच (cross elasticity) ऊँची होती है। एक फर्म की चाल की प्रतिक्रिया दूसरी फर्मों द्वारा कीमत, उत्पादन अथवा विज्ञापन के माध्यम से व्यक्त की जाती है।
6. **विक्रेताओं की अल्प संख्या**—अल्पाधिकार में फर्मों अथवा विक्रेताओं की संख्या थोड़ी होती है। विक्रेताओं की संख्या कम होने के कारण प्रत्येक विक्रेता का वस्तु की कुल पूर्ति के एक बड़े भाग पर नियन्त्रण होता है जिसके कारण वह बाजार में वस्तु की कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में होता है और एक विक्रेता की उत्पादन नीति व कीमत नीति का प्रभाव अन्य प्रतियोगी विक्रेताओं की नीतियों पर पड़ता है।
7. **कपट सन्धि या गुटबन्दी**—सभी फर्में प्राय: कीमत युद्ध से बचना चाहती हैं। अत: वे कीमत में परिवर्तन के लिए आपस में गुप्त समझौता कर सकती हैं ताकि किसी को हानि न हो। इस तरह की गुटबन्दी एकाधिकार जैसी दशाएँ उत्पन्न कर सकती है।
8. **सीमित कीमत नियन्त्रण**—अल्पाधिकार में फर्मों की कम संख्या तथा पारस्परिक निर्भरता के कारण फर्म का वस्तु की कीमत पर नियन्त्रण सीमित ही रहता है। यदि कोई फर्म बिक्री बढ़ाने के लिए कीमतें कम करती है तो अन्य प्रतियोगी फर्में भी ऐसा ही करेंगी, अन्यथा उनके ग्राहक उन्हें छोड़ देंगे। इस दशा में कीमत युद्ध शुरू होगा जिससे सभी फर्मों को हानि उठानी पड़ेगी। यदि कोई फर्म अपनी कीमत बढ़ाती है तो अन्य फर्में ऐसा नहीं करती हैं और उस फर्म की उद्योग से बाहर होने की सम्भावना बढ़ जाती है।
9. **सामंजस्य**—अल्पाधिकार की एक विशेषता यह है कि इसमें फर्मों के आकार में सामंजस्य अथवा एकरूपता नहीं पाई जाती है। फर्में आकार में एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। कुछ फर्में बहुत बड़ी तो कुछ छोटे आकार की होती हैं जो भिन्नित वस्तुएँ ही बनाती हैं। यह अव्यवस्थित अथवा असंगति अथवा सामंजस्यहीनता की स्थिति कहलाती है।
10. **कीमत स्थिरता**—कीमत स्थिरता अल्पाधिकार की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अन्य शब्दों में, अल्पाधिकार में कीमतें एक ही स्तर पर बनी रहती हैं, भले ही माँग अथवा पूर्ति की दशाओं में कितना भी परिवर्तन क्यों न आ जाए।
11. **माँग वक्र की अनिश्चितता**—एक अल्पाधिकारी फर्म का माँग वक्र अथवा औसत आगम (*AR*) वक्र अनिश्चित होता है। अल्पाधिकार में फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण एक फर्म द्वारा यह ज्ञात करना बहुत कठिन होता है कि उसके द्वारा कीमत नीति में परिवर्तन करने पर उसके प्रतिद्वन्द्वियों की क्या प्रतिक्रिया अथवा रणनीति होगी। वे अपनी कीमतों में परिवर्तन करेंगे अथवा नहीं और करेंगे तो कितना? इस तरह अल्पाधिकार में अन्य प्रतियोगी फर्मों के व्यवहार की जानकारी निश्चित रूप से नहीं हो पाती है और विरोधी अनुमानों की एक जटिल व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है जो माँग वक्र की अनिश्चितता का प्रमुख कारण होती है।

## अल्पाधिकार का वर्गीकरण (Classification of Oligopoly)

अल्पाधिकार को प्राय: निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **गठबन्धन अथवा गैर-गठबन्धन अल्पाधिकार** (Collusive or Non-collusive Oligopoly)—गठबन्धन (अथवा कपट सन्धिपूर्ण) अल्पाधिकार उस अल्पाधिकार को कहते हैं जिसके अन्तर्गत उद्योग की सभी फर्में आपस में समझौता

करके वस्तु की कीमत निश्चित करती हैं। कीमत प्रतियोगिता को रोक कर एक सामान्य कीमत नीति (Common Price Policy) अपनाई जाती है। इसके विपरीत, गैर-गठबन्धन (अथवा गैर-कपट सन्धिपूर्ण) अल्पाधिकार की वह स्थिति है जिसमें फर्में स्वतन्त्र कीमत नीति अपनाती हैं तथा एक-दूसरे के साथ प्रतियोगिता करती हैं।

2. **आंशिक अथवा पूर्ण अल्पाधिकार** (Partial or Full Oligopoly)—आंशिक अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें एक प्रमुख (Dominant) फर्म होती है जो कि उद्योग की अन्य फर्मों से अधिक महत्त्व रखती है। इस प्रमुख फर्म को प्राय: **कीमत-नेता** का दर्जा प्राप्त होता है। यही फर्म बाजार में कीमत को निश्चित करती है तथा अन्य फर्में उस कीमत को स्वीकार करती हैं। दूसरी ओर, पूर्ण (Full) अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें कोई प्रमुख फर्म या कीमत नेतृत्व करने वाली फर्म नहीं होती है।
3. **खुला अथवा बंद अल्पाधिकार** (Open or Closed Oligopoly)—खुला अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत नई फर्मों के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है। इसके विपरीत, बन्द अल्पाधिकार बाजार की वह स्थिति होती है जिसमें नई फर्मों के प्रवेश पर कई प्रकार की पाबन्दियाँ लगी होती हैं, जैसे पेटेण्ट अधिकार (Patent Rights) सम्बन्धी बाधाएँ उल्लेखनीय हैं।
4. **पूर्ण अथवा अपूर्ण अल्पाधिकार** (Perfect or Imperfect Oligopoly)—पूर्ण अल्पाधिकार वह स्थिति होती है जिसमें एक उद्योग की सभी फर्में समरूप (Homogeneous) वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। इसे विशुद्ध अल्पाधिकार भी कहा जाता है। इसके विपरीत, अपूर्ण अथवा भेदमूलक अल्पाधिकार बाजार की उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें सभी फर्में भेदमूलक (Differentiated) किन्तु निकट स्थानापन्न (Close Substitutes) वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।

**प्र.14. अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का अध्ययन किन बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है? स्वीजी के गैर-कपट सन्धि (किंकित माँग वक्र) अल्पाधिकार मॉडल को सविस्तार समझाइए।**

**Under what points can the study of pricing under oligopoly be done? Explain in detail the Sweezy Model of Non-collusive Treaty (Kinked Demand Curve).**

**उत्तर**

## अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण
## (Price Determination under Oligopoly)

अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. स्वीजी (Sweezy) का गैर-कपट सन्धि (non-collusive) (किंकित माँग वक्र) अल्पाधिकार मॉडल।
2. कपट सन्धिपूर्ण अल्पाधिकार मॉडल।

### स्वीजी का किंकित माँग वक्र (स्थिर कीमत) मॉडल
### (The Sweezy Model of Kinked Demand Curve : Price Rigidity)

**प्रो० स्वीजी** ने अल्पाधिकार की दशा वाले बाज़ारों में प्राय: पाई जाने वाली कीमत स्थिरता की व्याख्या के लिए किंकित माँग वक्र का उपयोग किया है। स्वीजी की धारणा है कि यदि कोई अल्पाधिकारी फर्म अपनी वस्तु की कीमत घटाकर बिक्री बढ़ाना चाहती है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी अपने ग्राहकों को खोने के भय से अपनी कीमत के बराबर की कटौती द्वारा प्रतिक्रिया करेंगे। इस तरह, कीमत कम करने वाली फर्म अपनी बिक्री नहीं बढ़ा पाएगी। इसलिए माँग वक्र का यह भाग कम लोचदार होता है। दूसरी ओर यदि अल्पाधिकारी फर्म अपनी कीमत बढ़ाती है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी उसका अनुसरण न करते हुए अपनी कीमतों में परिवर्तन नहीं करेंगे। इस तरह, उसकी वस्तु की माँगी गई मात्रा में काफी गिरावट आ जाएगी। अत: माँग वक्र का यह हिस्सा सापेक्षतया लोचदार होता है। इन दोनों ही स्थितियों में अल्पाधिकारी फर्म के माँग वक्र में वर्तमान कीमत पर किंक या त्वरा होता है जो कीमत स्थिरता को प्रदर्शित करता है।

कीमत स्थिरता से तात्पर्य उन परिस्थितियों से है जिनमें कीमत समय की एक अवधि में एक ही स्तर पर बनी रहती है। भले ही माँग एवं पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन हो गया हो।

### मान्यताएँ (Assumptions)

कीमत स्थिरता का किंकित माँग वक्र सिद्धान्त अग्रलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

TOUCH 'n PASS

1. प्रत्येक विक्रेता का व्यवहार अपने प्रतिद्वन्द्वियों के व्यवहार से प्रभावित होता है।
2. विज्ञापन व्यय नहीं है।
3. वस्तु गुणवत्तायुक्त है। वस्तु विभेदीकरण नहीं है।
4. एक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु अन्य फर्मों की वस्तु की निकट स्थानापन्न है।
5. अल्पाधिकारी उद्योग में फर्मों की संख्या सीमित है।
6. सीमान्त लागत वक्र, सीमान्त आगम वक्र के बिन्दुकित भाग के बीच से गुजरता है अत: सीमान्त लागत वक्र में परिवर्तन उत्पादन एवं लागत को प्रभावित नहीं करते।
7. यदि कोई विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत बढ़ा देता है तो दूसरे उसका अनुसरण नहीं करेंगे तथा कीमत बढ़ाने वाले विक्रेता के ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करेंगे।
8. यदि कोई विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत घटाकर अपनी बिक्री बढ़ाना चाहता है तो अन्य विक्रेता उसका अनुसरण करेंगे और वे अपनी वस्तुओं की कीमतें घटाकर उसके प्रयास को नाकाम बना देंगे।
9. अल्पाधिकार उद्योग में वस्तु की एक प्रचलित कीमत होती है जिस पर सभी विक्रेता सन्तुष्ट होते हैं।

## मॉडल (The Model)

उपर्युक्त मान्यताओं के दिए होने पर अल्पाधिकार बाजार में कीमत-उत्पादन सम्बन्ध को चित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—चित्र 1 में $KPD$ अल्पाधिकारी का किंकित (या त्वरायुक्त) माँग (या औसत आगम) वक्र है। बिन्दु $P$ पर त्वरा या मोड़ है। यदि बिन्दु $P$ पर मोड़ न होता तो माँग वक्र का सामान्य स्वरूप $KPB$ होता।

बिन्दु $P$ पर त्वरा या मोड़ का अर्थ है कि यदि फर्म बिन्दु $P$ से अधिक कीमत रखती है तो उसके प्रतिद्वन्द्वियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, अर्थात् अन्य फर्में अपनी कीमत नहीं बढ़ाएँगी तथा कीमत अधिक होने के कारण इस फर्म के बहुत से ग्राहक प्रतिद्वन्द्वियों के पास चले जाएँगे। इसका कारण यह है कि किंकित माँग वक्र का $KP$ भाग मूल्य-सापेक्ष है अर्थात् मूल्य बढ़ाने से माँग कम हो जाएगी। इससे उसकी बिक्री तो घटेगी, साथ ही उसका कुल आगम और लाभ भी कम हो जाएगा। अत: कीमत बढ़ाने का निर्णय लेने के पहले फर्म को बहुत सोच-विचार करना होगा। इसके विपरीत, यदि फर्म अपनी कीमत बिन्दु $P$ से नीचे निर्धारित करती है तो उद्योग की अन्य प्रतिद्वन्द्वी फर्में भी तुरन्त अपनी कीमतें घटा देंगी। यद्यपि कीमत घटाने से उसकी बिक्री कुछ बढ़ सकती है फिर भी उसका लाभ पहले से कम हो जाएगा, क्योंकि $P$ से नीचे किंकित माँग वक्र का $PD$ भाग कम लोचात्मक है। इस प्रकार, कीमत बढ़ाने तथा घटाने (दोनों) स्थितियों में विक्रेता को हानि होती है। फलस्वरूप प्रचलित $PM$ कीमत ही बाजार में स्थिर बनी रहेगी।

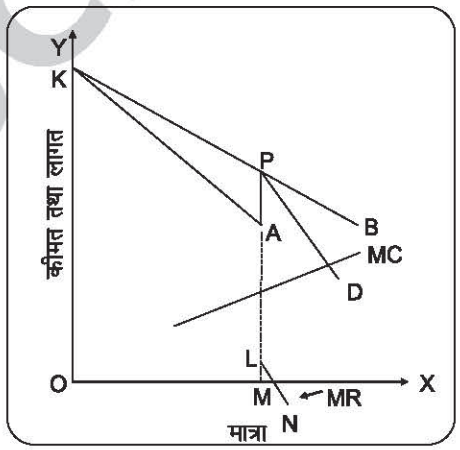


चित्र 1

$KPD$ माँग वक्र (औसत आगम वक्र) के अनुरूप $KALN$ फर्म की सीमान्त आगम वक्र है। जब माँग वक्र किंकित या त्वरायुक्त होता है तब सीमान्त आगम वक्र भी विच्छिन्न हो जाता है। चित्र में $MR$ वक्र $A$ तथा $L$ के बीच विच्छिन्नित है। $A$ तथा $L$ के मध्य यह विच्छिन्नता मोड़ के ऊपर तथा नीचे माँग वक्र की मूल्य सापेक्षता पर निर्भर करता है। मोड़ के ऊपर (अर्थात् $K$ से $P$ तक) माँग वक्र जितना अधिक मूल्य सापेक्ष होगा तथा मोड़ के नीचे ($P$ से $D$ तक) जितना ही अधिक मूल्य निरपेक्ष होगा $A$ तथा $L$ के

मध्य अन्तर उतना अधिक होगा। जब कोण $KPD$ एक समकोण हो जाता है तो $AL$ अन्तर अधिकतम चौड़ा हो जाता है। सीमान्त आगम वक्र की विच्छिन्नता का अर्थ यह है कि $PM$ प्रचलित कीमत से ऊपर तथा नीचे की औसत आगमों तथा उसकी संगत सीमान्त आगमों में अन्तर है।

अभी हमने कीमत स्थिरता का विश्लेषण एक दिए हुए लागत वक्र तथा किंकित या त्वरायुक्त माँग वक्र के आधार पर किया है। अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि उत्पादन लागत तथा माँग में परिवर्तन होने पर भी क्या कीमत स्थिरता बनी रहेगी?

## लागतों में परिवर्तन तथा कीमत स्थिरता
## (Change in Cost and Price Stability)

अल्पाधिकार में किंकित माँग वक्र विश्लेषण के अन्तर्गत एक निश्चित सीमा में लागत परिवर्तन वर्तमान कीमत को प्रभावित नहीं करते अर्थात् लागत में परिवर्तन होने पर भी कीमत लगभग स्थिर बनी रहती है। इस स्थिति को चित्र 2 में स्पष्ट किया गया है—

मान लीजिए, उत्पादन की लागत कम हो जाती है जिससे नया सीमान्त लागत वक्र दाहिनी तरफ नीचे खिसक कर $MC_1$ हो जाता है, जो सीमान्त आगम वक्र के विच्छिन्न भाग ($L$ के निकट) से ही गुजरता है। इसलिए उत्पादन मात्रा $OM$ तथा कीमत $PM$ ही निर्धारित होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कीमत चाहे जितनी कम हो जाए नया $MC$ वक्र $MR$ वक्र को हमेशा विच्छिन्न भाग में ही काटेगा, क्योंकि ज्यों-ज्यों कीमतें गिरती हैं अन्तर $AL$ अधिक चौड़ा होता जाता है। इसके विपरीत, लागतों के बढ़ने अर्थात् सीमान्त लागत वक्र $MC_2$ होने पर भी $PM$ स्थिर कीमत ही प्रचलित रहेगी।

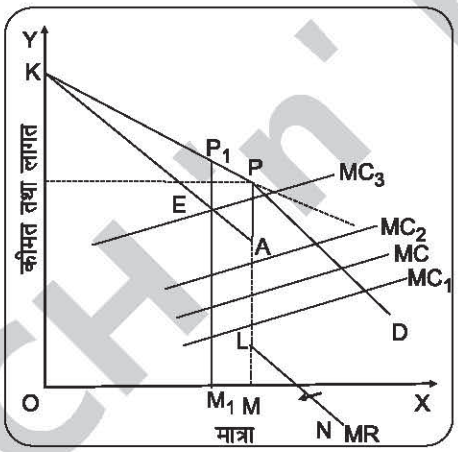


चित्र 2

लागतों में परिवर्तन के फलस्वरूप जब तक कोई भी नया सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को विच्छिन्न भाग के भीतर अर्थात् $A$ से $L$ के बीच कहीं भी काटेगा, तब तक फर्में कीमत में परिवर्तन नहीं करेंगी, परन्तु जब लागतों में बहुत अधिक वृद्धि होने पर लागत वक्र सीमान्त आगम वक्र को उसके विच्छिन्न भाग के ऊपर काटे जैसा कि चित्र में $MC_3$ वक्र की स्थिति है तो कीमत तथा उत्पादन मात्रा में परिवर्तन किया जा सकता है। इस स्थिति में नई कीमत बढ़कर $P_1M_1$ तथा उत्पादन मात्रा घटकर $OM_1$ हो जाएगी, परन्तु अल्पाधिकारी फर्म अपनी वस्तु की कीमत तभी बढ़ाएगी जब उसे यह विश्वास हो जाएगा कि अन्य फर्में भी लागत वृद्धि के फलस्वरूप कीमत बढ़ा देंगी।

## माँग परिवर्तन तथा कीमत स्थिरता
## (Demand Changes and Price Stability)

अल्पाधिकार के अन्तर्गत माँग में परिवर्तन होने पर भी कीमत लगभग स्थिर बनी रह सकती है। यदि माँग में वृद्धि हो जाए तो कीमत बढ़ सकती है, परन्तु जब तक सीमान्त लागत वक्र नए सीमान्त आगम वक्र को विच्छिन्न भाग के भीतर काटता रहेगा, कीमत तथा उत्पादन मात्रा में परिवर्तन नहीं होगा। यदि $MC$ वक्र नए $MR$ वक्र को उसके विच्छिन्न भाग से ऊपर काटे, तो नई कीमत पुरानी कीमत से अधिक होगी। परन्तु कोई भी फर्म कीमत बढ़ाने के लिए तभी तैयार होगी जब यह उम्मीद हो कि अन्य फर्में भी ऐसा ही करेंगी, अन्यथा वह कीमत बढ़ाकर अपने ग्राहकों को खोना नहीं चाहेगी। ऐसी स्थिति में वह उसी कीमत को कम लाभ कमा करके भी कायम रखना चाहेगी।

TOUCH 'n' PASS

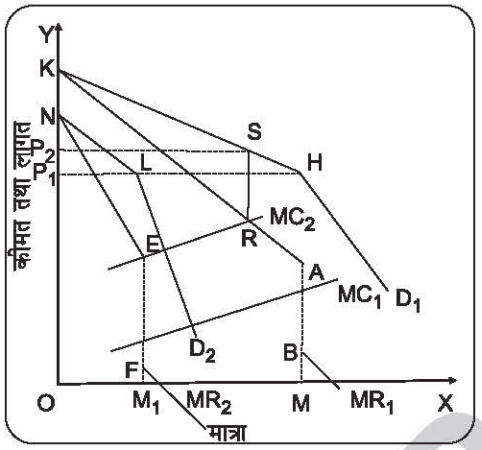


चित्र 3

इसके विपरीत, यदि माँग में कमी आ जाए तो, कीमतों में गिरावट आनी चाहिए, परन्तु कोई अल्पाधिकारी इस डर से कीमतों में कमी नहीं करेगा कि उसके ऐसा करने पर अन्य फर्में भी अपनी कीमतों को घटा देंगी। ऐसी दशा में कीमत-युद्ध छिड़ने का खतरा रहता है जिससे सभी फर्मों को हानि होगी। इस तरह, माँग के गिरने पर भी फर्म कीमत को स्थिर बनाए रखने का प्रयास करेगी, भले ही वह अब पहले की अपेक्षा कम मात्रा बेच सकेगी।

इसे चित्र 3 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में $D_1$ मूल माँग वक्र है तथा $MR_1$ उसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र और $MC_1$ सीमान्त लागत वक्र है। मान लीजिए कि माँग में कमी आ जाती है जिसे $D_2$ द्वारा दर्शाया गया है। इसके अनुरूप सीमान्त आगम वक्र $MR_2$ है। जब माँग कम हो जाती है तो एक विक्रेता कीमत कम कर देता है और उसकी कीमत घटाने की इस चाल को अन्य विक्रेता अनुकरण करते हैं। इससे नए माँग वक्र के नीचे का भाग $LD_2$ पूराने माँग वक्र के नीचे के भाग $HD_1$ की अपेक्षा अधिक बेलोच हो जाता है। यह $L$ पर बने कोण को समकोण के निकट पहुँचा देगा। इसका परिणाम यह होगा कि $MR_1$ के $AB$ अन्तर की अपेक्षा $MR_1$ का $EF$ अन्तर अधिक बड़ा हो जाएगा। अत: सीमान्त लागत वक्र $MC_1$ सीमान्त आगम वक्र $MR_2$ को अन्तर $EF$ के भीतर काटेगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि अल्पाधिकार उद्योग में माँग कम होने पर भी कीमत स्थिर रहती है। अब यदि माँग बढ़ जाए तो इससे कीमत बढ़ सकती है। इसे हम उक्त चित्र द्वारा ही स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र में मान लीजिए $D_2$ मूल माँग वक्र तथा $MR_2$ तथा $MC_2$ मूल सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत वक्र हैं। बढ़ी हुई माँग का माँग वक्र $D_1$ तथा $MR_1$ तथा $MC_1$ क्रमश: सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत वक्र है। जब माँग बढ़ गई तो एक विक्रेता अपनी कीमत को बढ़ाना चाहेगा और यह उम्मीद की जाती है कि अन्य उसका अनुसरण करेंगे। इससे पुराने माँग वक्र के $NL$ भाग की अपेक्षा नए माँग वक्र का ऊपर का भाग $KH$ अधिक लोचात्मक हो जाएगा। इसलिए $H$ बिन्दु पर स्थित कोण एक अधिक कोण (जो समकोण से अधिक है) बन जाता है। $MR_1$ में $AB$ अन्तर कम हो जाता है तथा $MC_2$ वक्र $MR_1$ वक्र को अन्तर से ऊपर जाकर $R$ पर काटता है, जो अपेक्षाकृत ऊँची कीमत $OP_2$ को प्रकट करता है। हाँ, यदि सीमान्त लागत वक्र $MR_1$ के अन्तर में से (अर्थात् $AB$ के बीच से) गुजरे जैसा कि $MC_1$ गुजरती है तो कीमत में स्थिरता होगी।

**प्र.15. समझौता अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण के पूर्ण कार्टेल मॉडल की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**

**Explain in detail the Perfect Cartel Model of price determination in collusive oligopoly.**

**उत्तर**

## समझौता अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण
## (Price Determination in Collusive Oligopoly)

**पूर्ण कार्टेल एवं लाभ अधिकतमीकरण**—एक ही उद्योग की स्वतन्त्र फर्मों के संगठन को कार्टेल कहा जाता है। कार्टेल के संगठन का उद्देश्य उद्योग की फर्मों के मध्य प्रतियोगी प्रवृत्तियों पर रोक लगाकर फर्मों द्वारा अर्जित लाभ को अधिक करना होता है। कार्टेल की फर्में कीमत उत्पादन तथा विक्रय के क्षेत्रों में समान नीतियों का अनुसरण करती हैं।

दो प्रकार के कार्टेल संगठन उपस्थित होते हैं—

TOUCH n PASS

**(A) 'लाभ-विभाजन' कार्टेल मॉडल** (Profit Sharing Cartel Model)—यह मॉडल कार्टेल की फर्मों के मध्य पूर्ण गठबन्धन को स्वीकार करता है। पूर्ण गठबन्धन के अन्तर्गत सभी फर्में कार्टेल को वस्तु उत्पादन मात्रा एवं कीमत निर्धारण का पूर्ण अधिकार दे देती हैं। कार्टेल फर्मों का उत्पादन कोटा इस प्रकार निर्धारित करता है कि फर्मों का लाभ अधिकतम हो जाए। कार्टेल अनेक प्लाण्ट वाले एकाधिकारी की ही भाँति होता है। माँग वक्र एवं सीमान्त आगम वक्र दिए हुए होते हैं। कार्टेल की फर्मों के अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्रों में उद्योग का सीमान्त लागत वक्र प्राप्त किया जाता है। लाभ को अधिकतम करने के लिए कार्टेल की सदस्य फर्मों के मध्य उत्पादन कोटा इस प्रकार बाँटा जाता है कि प्रत्येक फर्म के कोटे की सीमान्त लागत दूसरी फर्मों के कोटे की सीमान्त लागत के बराबर हो जाए। अधिकतम लाभ देने वाला कीमत–उत्पादन सम्बन्ध तब उपस्थित होगा जब व्यक्तिगत फर्मों को बाँटा जाए।

जहाँ $$SMC_A = SMC_B = MR_1$$

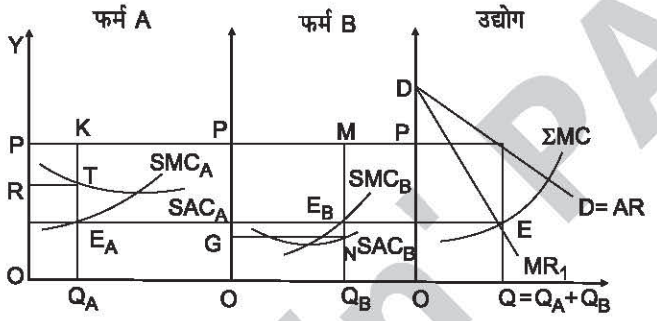


**चित्र 1 : पूर्ण गठबन्धन कार्टेल**

अर्थात् फर्म $A$ की अल्पकालीन सीमान्त लागत, फर्म $B$ की अल्पकालीन सीमान्त लागत तथा उद्योग का सीमान्त आगम परस्पर बराबर हो जाए।

चित्र 1 में पूर्ण गठबन्धन कार्टेल को दिखाया गया है। उद्योग का उत्पादन $OQ$ ($= OQ_A + OQ_B$) पर स्थिर है। $MR_1$ रेखा उद्योग की सीमान्त आगम वक्र रेखा को बताती है। उद्योग का सीमान्त वक्र ($\Sigma MC$ वक्र) फर्म $A$ तथा $B$ के सीमान्त लागतों—क्रमश: $SMC_A$ तथा $SMC_B$ के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त किया जाता है। उद्योग में $\Sigma MC$ तथा $MR$ वक्रों की सहायता से $OQ$ उत्पादन स्तर तथा $OP$ कीमत का निर्धारण होता है। इस $OQ$–उत्पादन को दोनों फर्मों के मध्य बाँटने के लिए एक क्षैतिज रेखा इस प्रकार खींची जाती है जिस पर दोनों फर्मों की सीमान्त लागतें—$SMC_A$ तथा $SMC_B$–परस्पर बराबर हो जायें। चित्र में यह स्थिति $E_AQ_A$ तथा $E_BQ_B$ द्वारा दिखायी गयी है। इस प्रकार फर्म $A$ तथा $B$ को क्रमश: $OQ_A$ तथा $OQ_B$ कोटा निर्धारित किया जाता है। इस दशा में सन्तुलन की शर्त पूरी हो रही है अर्थात्

$$SMC_A = SMC_B = \Sigma MC = MR_1$$

फर्म $A$ के लिए,
निर्धारित कोटा $= OQ_A$
निर्धारित कीमत $= OP$ अथवा $KQ_A$
प्रति इकाई लागत $= TQ_A$
प्रति इकाई लाभ $= KT$
कुल लाभ $= RTKP$

फर्म $B$ के लिए,
निर्धारित कोटा $= OQ_B$
निर्धारित कीमत $= OP$ अथवा $MQ_B$
प्रति इकाई लाभ $= MN$
प्रति इकाई लागत $= NQ_B$
कुल लागत $= GNMP$

**(B) 'बाजार विभाजन' कार्टेल मॉडल** (Market Sharing Cartel Model)—इस प्रकार के कार्टेल मॉडल में कार्टेल को कुछ कम कार्य हस्तान्तरित किए जाते हैं। हम इस कार्टेल की व्याख्या के लिए यह मान लेते हैं कि उद्योग में केवल दो फर्में हैं जो

TOUCH 'n' PASS

एकसमान लागत पर एकसमान उत्पादन उत्पादित कर रही हैं। ऐसी दशा में वे बाजार को आधा बाँटा लेंगी। इस क्रिया का प्रदर्शन चित्र 2 में किया गया है। चित्र में $DD'$ वक्र उद्योग के माँग वक्र को तथा $Dd$ फर्म में माँग वक्र को बताता है। प्रत्येक फर्म का सीमान्त आगम वक्र $MR$ द्वारा दिखाया गया है। फर्म के लिए सन्तुलन बिन्दु $E$ पर मिलेगा तथा ऐसी दशा में प्रत्येक फर्म $OP$ कीमत पर $OQ_F$ मात्रा का उत्पादन करेगी (चित्र में देखें $OQ_F = 1/2\,OQ_C$)। $OQ_F$ मात्रा पर प्रत्येक फर्म का लाभ $KTRP$ के बराबर होगा। दोनों फर्में मिलकर उद्योग के लिए $OQ_C$ मात्रा का उत्पादन करेंगी (उद्योग का सन्तुलन बिन्दु $E_C$ पर दिखाया गया है) तथा बाजार कीमत $R'Q_C$ (अथवा $OP$) होगी।

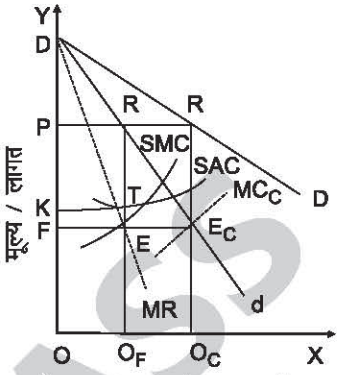

चित्र 2 : बाजार विभाजन कार्टेल

उपर्युक्त मॉडल की व्याख्या में बाजार का बराबर विभाजन मान लिया गया है जो सदैव आवश्यक नहीं। यह सम्भावना है कि उद्योग में दोनों फर्म भिन्न-भिन्न आकार एवं क्षमता वाली हों। ऐसी दशा में बड़े आकार एवं ऊँची क्षमता वाली फर्म बाजार के एक बड़े भाग पर अपना अधिकार करने में सफल हो जाएगी। साथ-ही-साथ फर्म का स्थानीयकरण भी फर्म के बाजार विभाजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**प्र.16. समझौता अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण के अपूर्ण कार्टेल मॉडल की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**Explain in detail the Imperfect Cartel Model of price determination in collusive oligopoly.**

**उत्तर**

## अपूर्ण कार्टेल : कीमत नेतृत्व मॉडल
## (Imperfect Cartel : Price Leading Model)

अल्पाधिकार में फर्मों का अपूर्ण गठबन्धन कीमत नेतृत्व के आधार पर होता है। कीमत नेतृत्व में उद्योग की सभी फर्में एक चुनी गई फर्म के द्वारा निर्धारित मार्ग का अनुसरण करती हैं। इस प्रकार गठबन्धन में यह समझौता होता है कि फर्में उद्योग की नेता फर्म द्वारा निर्धारित कीमत पर अपनी-अपनी वस्तुएँ बेचेंगी।

**स्थितिमान कीमत नेतृत्व : कम लागत फर्म मॉडल** (Low Cost Firm Model)—इस प्रकार के नेतृत्व में फर्म का आकार सबसे बड़े आकार का होना आवश्यक नहीं होता बल्कि फर्म अपनी बुद्धिमत्ता के आधार पर कीमत तथा लागत का हिसाब लगाकर कीमत नीति की घोषणा कर देती है। गुप्त समझौते के अनुसार कार्टेल की अन्य सभी फर्में उसका अनुकरण करने लगती हैं। इस प्रकार कार्टेल की न्यूनतम लागत वाली फर्में कार्टेल का नेतृत्व प्राप्त कर लेती हैं।

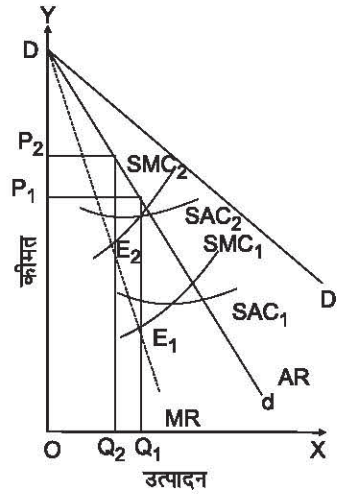

चित्र 1 : कम लागत फर्म द्वारा कीमत-नेतृत्व

चित्र 1 में न्यूनतम लागत फर्म द्वारा कीमत नेतृत्व दिखाया गया है। व्याख्या को सरल करने के उद्देश्य से यह मान लिया गया है कि कार्टेल में केवल दो फर्में हैं। यह मान्यता है कि दोनों फर्में एकसमान उत्पादन उत्पादित कर रही हैं। दोनों फर्मों की लागतें भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों फर्मों की कीमत तथा उत्पादन नीति भी भिन्न-भिन्न होती है। चित्र में दोनों फर्में एकसमान माँग वक्र $Dd$ का सामना करती हैं। पहली फर्म के सीमान्त लागत तथा औसत लागत वक्र क्रमश: $SMC_1$ तथा $SAC_1$ तथा दूसरी फर्म के क्रमश: $SMC_2$ तथा $SAC_2$ दिखाए गए हैं। फर्म 2 ऊँची लागत वाली फर्म है। अत: फर्म 1 बाजार एवं कार्टेल का नेतृत्व करती है। प्रत्येक फर्म के लिए सीमान्त आगम रेखा $MR$ है। कम लागत वाली पहली फर्म $OP_1$ कीमत पर $OQ_1$ मात्रा का उत्पादन करेगी जबकि ऊँची लागत वाली दूसरी फर्म $OP_2$ कीमत पर $OQ_2$ मात्रा का उत्पादन करेगी। ऐसी दशा में यदि दूसरी फर्म $OP_2$ कीमत पर ही स्थिर रहना चाहेगी तो वह अपना विक्रय पूर्ण रूप से खो देगी। अत: बाध्य होकर फर्म 2 कोम लागत वाली फर्म का नेतृत्व स्वीकार करते हुए अपनी कीमत भी $OP_1$ पर ही निर्धारित करनी पड़ेगी।

TOUCH 'n' PASS

**प्रधान कीमत नेतृत्व : प्रधान फर्म मॉडल** (Dominant Firm Model)—इस प्रकार के नेतृत्व में उद्योग की सबसे बडी फर्म सारे बाजार पर प्रभाव डालती है। इस प्रकार का नेतृत्व-प्रधान कीमत नेतृत्व कहलाता है। इस प्रकार के नेतृत्व में हम यह मान लेते हैं कि उद्योग में एक प्रधान फर्म तथा कुछ अन्य छोटी फर्में हैं। यह भी मान्यता है कि प्रधान फर्म उद्योग के लिए कीमत का निर्धारण करती है तथा उस निर्धारित कीमत पर छोटी फर्मों को आमन्त्रित करती है। छोटो फर्में जितना चाहे उस निर्धारित कीमत पर बाजार में पूर्ति तथा विक्रय कर सकती हैं और शेष बाजार की माँग को प्रधान फर्म स्वयं पूरा करती है।

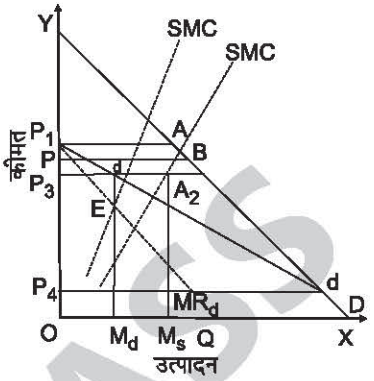

चित्र 2 : प्रधान कीमत-नेतृत्व

चित्र 2 में प्रधान फर्म मॉडल दर्शाया गया है। प्रधान फर्म द्वारा निर्धारित कीमत को उद्योग का अन्य फर्में पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति उसे दिया हुआ मानकर अपना उत्पादन स्तर निर्धारित करती हैं। दूसरे शब्दों में, फर्मों के लिए माँग की लोच पूर्णतया लोचदार होती है। फर्में प्रधान फर्म द्वारा दी गई कीमत के साथ उस बिन्दु पर अपना उत्पादन निर्धारित करेंगी जहाँ सीमान्त लागत तथा सीमान्त आगम परस्पर बराबर हो जायें। उद्योग की फर्में (प्रधान फर्म को छोड़कर) पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति व्यवहार करती हैं जिसके कारण उनका पूर्ति वक्र उनकी सीमान्त लागत वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। सभी छोटी फर्मों का सामूहिक पूर्ति वक्र उनके सीमान्त लागत वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। चित्र में यह वक्र $\Sigma SMC$ द्वारा दर्शाया गया है। बाजार का माँग वक्र $DD$ यह बताता है कि विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता वस्तु की कितनी मात्रा खरीदने को तैयार है। $\Sigma SMC$ वक्र विभिन्न कीमतों पर छोटी फर्मों द्वारा की गई कुल पूर्ति को बताता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न कीमतों पर $DD$ तथा $\Sigma SMC$ का अन्तर प्रधान फर्म द्वारा की जा रही पूर्ति को बताता है। चित्र में $P_1 d$ प्रधान फर्म का माँग वक्र है। जब प्रधान फर्म $OP_1$ कीमत निर्धारित करती है तो इस ऊँची कीमत पर छोटी फर्मों की ओर से पूर्ति अधिकतम है क्योंकि $OP_1$ कीमत पर बाजार की कुल माँग $P_1 A$ है जो छोटी फर्मों द्वारा पूरी तरह से उपभोक्ता को दी जा रही है। इस दशा में प्रधान फर्म की पूर्ति शून्य है, यदि प्रधान फर्म की कीमत $OP_2$ हो जाती है तब इस कीमत पर $P_2 A_2$ छोटी फर्मों द्वारा पूर्ति की जाएगी तथा बाजार की शेष माँग $A_2 B$ प्रधान फर्म पूरी करेगी। प्रधान फर्म का माँग वक्र ज्ञात करने के लिए बिन्दु $C_2$ इस प्रकार चुना जाता है कि $P_2 C_2 = A_2 B_2$, अब दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि $OP_2$ कीमत पर प्रधान फर्म $P_2 C_2$ पूर्ति प्रदान करेगी। इसी प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि कीमत $OP_3$ पर प्रधान फर्म $P_3 d$ वस्तु की माँग को पूरा करेगी। इस प्रकार $P_1 dd$ प्रधान फर्म का माँग वक्र बन जाता है। इस माँग वक्र से सम्बन्धित प्रधान फर्म के सीमान्त आगम वक्र को $MR_d$ द्वारा चित्र में दिखाया गया है। प्रधान फर्म को उस बिन्दु पर अधिकतम लाभ की प्राप्ति होगी जहाँ। $SMC_d = MR_d$। चित्र में यह स्थिति बिन्दु $E$ पर दिखायी गयी है। इस कीमत $OP_3$ पर बाजार की कुल माँग $OQ$ है जिसमें से $OM_d$ प्रधान फर्मों द्वारा तथा $OM_s$ छोटी फर्मों द्वारा उत्पादित एवं बिक्री की जाएगी। गणितीय भाषा में,

$$OQ = OM_d \text{ (अथवा } M_s Q) + OM_s$$

कुल माँग = प्रधान फर्म द्वारा पूरी की गई माँग + छोटी फर्मों द्वारा पूरी की गई माँग

यदि प्रधान फर्म वस्तु कीमत $OP_4$ से कम निर्धारित कर दे तो छोटी फर्में बाजार की माँग का कोई भी भाग पूरा नहीं कर पायेंगी तथा उनकी पूर्ति शून्य हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, वस्तु की कीमत $OP_4$ से कम निर्धारित होने पर बाजार की सम्पूर्ण माँग प्रधान फर्म द्वारा ही पूरी हो जाएगी।

❑

TOUCH 'n' PASS

# UNIT-IV

# व्यापार चक्र
# Trade Cycles

## खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यापार चक्र का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of trade cycle?**

**उत्तर** व्यापार चक्र को पूँजीवादी प्रणाली का एक अंग माना जाता है। 'चक्र' शब्द से तात्पर्य घटनाओं के एक निश्चित क्रम से है जिनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। जब यह पुनरावृत्ति व्यापार के क्षेत्र में होती है तो इसे व्यापार चक्र का नाम दिया जाता है।

**प्र.2. व्यापार चक्रों के कितने प्रकार होते हैं?**
**How many types of trade cycles are there?**

**उत्तर** व्यापार चक्रों के मुख्य पाँच प्रकार होते हैं—

1. दीर्घ अवधि के जगलर चक्र
2. अल्पावधि के किचिन चक्र
3. अतिदीर्घ अथवा कोन्द्रातीफ चक्र
4. कुजनेट चक्र
5. निर्माण चक्र।

**प्र.3. व्यापार चक्रों की किन्हीं चार विशेषताओं को लिखिए।**
**Write any four features of trade cycles.**

**उत्तर** व्यापार चक्रों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. सभी व्यवसायों पर प्रभाव
2. विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव में असमानता
3. समृद्धि और अवसाद में सम्बन्ध एवं
4. निरन्तरता।

**प्र.4. व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाएँ बताइए।**
**State the different stages of the trade cycle.**

**उत्तर** व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं—1. पुनरुत्थान, 2. समृद्धि, 3. प्रतिसार या सुस्ती, 4. अवसाद।

**प्र.5. वितरण सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं?**
**What do you understand by distribution theory?**

**उत्तर** **चैपमैन** के अनुसार, "वितरण सिद्धान्त एक समाज द्वारा उत्पादित धन को उन विभिन्न उत्पादन साधनों अथवा उनके स्वामियों में वितरित करने से सम्बन्धित है जो उत्पादन में सक्रिय रहे हैं।"

**प्र.6. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की किन्हीं चार मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention any four assumptions of Marginal Productivity Theory of distribution.**

**उत्तर** वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ—

1. साधन की समरूप इकाइयाँ
2. अधिकतम लाभ प्राप्तियाँ

TOUCH 'n' PASS

3. उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता एवं
4. पूर्ण रोजगार।

**प्र.7. मजदूरी की कोई एक परिभाषा लिखिए।**
**Write any one definition of wages.**

**उत्तर** **प्रो० मैक्कॉनल** के अनुसार, "श्रम के उपयोग के लिए चुकायी गयी कीमत को मजदूरी या मजदूरी दर कहते हैं।"

**प्र.8. नकद मजदूरी का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of nominal wages?**

**उत्तर** नकद मजदूरी वह मजदूरी होती है जिसे श्रमिक को एक निश्चित समयावधि के लिए मुद्रा (money) में चुकाया जाता है। समयावधि घण्टा, दिन, सप्ताह, मास आदि कुछ भी हो सकती है।

**प्र.9. वास्तविक मजदूरी से आप क्या समझते हैं?**
**What do you understand by real wages?**

**उत्तर** वास्तविक मजदूरी अथवा असल मजदूरी से अभिप्राय वस्तुओं एवं सेवाओं की उस मात्रा से है जो एक व्यक्ति अपनी नकद मजदूरी द्वारा खरीद सकता है।

**प्र.10. वास्तविक मजदूरी को निर्धारित करने वाले किन्हीं तीन तत्त्वों के नाम लिखिए।**
**Name any three factors that determine real wages.**

**उत्तर** वास्तविक मजदूरी को निर्धारित करने वाले तत्त्व निम्न प्रकार हैं—

1. काम के घण्टे
2. कार्य की दशाएँ एवं
3. व्यवसाय सम्बन्धी आय।

**प्र.11. मजदूरी के किन्हीं दो सिद्धान्तों के नाम लिखिए।**
**Name any two principles of wages.**

**उत्तर** मजदूरी के सिद्धान्तों के नाम—

1. मजदूरी कोष सिद्धान्त
2. मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त।

**प्र.12. लगान से आपका क्या तात्पर्य है?**
**What do you mean by rent?**

**उत्तर** आय का वह भाग जो भूमिपतियों को उनकी भूमि के प्रयोग के बदले दिया जाता है, लगान कहलाता है।

**प्र.13. ब्याज से आपका क्या अभिप्राय है?**
**What do you mean by interest?**

**उत्तर** अर्थशास्त्र में मौद्रिक पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगतान ब्याज है। ब्याज राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले पूँजीपति को दिया जाता है।

**प्र.14. ब्याज दर में भिन्नता के किन्हीं तीन कारणों को बताइए।**
**State any three reasons for the difference in interest rate.**

**उत्तर** ब्याज दर में भिन्नता के कारण निम्नलिखित हैं—

1. ऋण की अवधि में अन्तर
2. जोखिम की भिन्नता एवं
3. बन्धक वस्तु में अन्तर।

**प्र.15. लाभ की परिभाषा लिखिए।**
**Write the definition of profit.**

**उत्तर** **जे०एल० हेन्सन** के अनुसार, "लाभ एक अवशेष भुगतान है जो उद्यमी को अन्य सभी भुगतान करने के बाद आय के रूप में प्राप्त होता है।"

TOUCH 'n PASS

## खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यापार चक्र से आप क्या समझते हैं? व्यापार चक्र के प्रकारों का भी उल्लेख कीजिए।**
**What do you understand by trade cycle. Also mention the types of trade cycle.**

**उत्तर**

### व्यापार चक्र
### (Trade Cycle)

व्यापार चक्र को पूँजीवादी प्रणाली का एक अंग माना जाता है। चक्र शब्द से तात्पर्य घटनाओं के एक निश्चित क्रम से है जिनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। जब यह पुनरावृत्ति व्यापार के क्षेत्र में होती है तो इसे व्यापार चक्र का नाम दिया जाता है। सामान्य अर्थ में व्यापार चक्र चक्रीय समृद्धि एवं मन्दी की घटनाओं का प्रतीक है। व्यापार चक्र में कुल रोजगार, कुल आय, कुल उत्पादन तथा कीमत स्तर में लहरों के समान उतार-चढ़ाव होते रहते हैं।

**परिभाषा**—विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने व्यापार चक्र की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। यहाँ हम कुछ परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे—

**प्रो० कीन्स** (Keynes) के अनुसार, "व्यापार चक्र का निर्माण ऐसी अवधियों से होता है जिसमें पहले अच्छे व्यापार के साथ कीमतों में वृद्धि होती है तथा बेरोजगारी का प्रतिशत नीचा होता है तथा इसके बाद की अवधि में बुरे व्यापार के साथ कीमतों में गिरावट होती है तथा बेरोजगारी का प्रतिशत ऊँचा होता है।"

**प्रो० मिचेल** (Mitchell) की परिभाषा विस्तृत रूप से स्वीकार की जाती है जो इस प्रकार है— "व्यापार चक्र एक प्रकार के उच्चावचन हैं जो उन राष्ट्रों की समग्र आर्थिक क्रियाओं में होते हैं जो मुख्य रूप से व्यावसायिक उद्यमों में अपनी क्रियाओं को संगठित करते हैं। एक व्यापार चक्र में पहले तो बहुत-सी आर्थिक क्रियाओं में लगभग एक साथ ही विस्तार अथवा समृद्धि आती है तथा उसके बाद सामान्य मन्दी एवं संकुचन की क्रियाएँ होती हैं। फिर इनकी पुनरावृत्ति दूसरे विस्तार के चक्र में होती है। परिवर्तन का यह क्रम बार-बार तो होता है. किन्तु नियतकालीन (Periodic) नहीं होता।"

**बेनहम** के अनुसार, "व्यापार चक्र की परिभाषा साधारण रूप से ऐसी समृद्धि की अवधि से की जा सकती है जिसके बाद अवसाद (depression) की अवधि आती है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि आर्थिक प्रगति अनियमित होनी चाहिए—एक समय व्यापार अच्छा हो और दूसरे समय बुरा हो।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि व्यापार चक्र में समृद्धि एवं अवसाद की अवधियों में कोई अनियमितता नहीं होती। यह तो निश्चित है कि तेजी के बाद मन्दी की अवस्था आती है पर यह आवश्यक नहीं है कि दो मन्दी अथवा तेजी की अवधियाँ बिल्कुल समान हों। आर्थिक क्रियाओं के उतार-चढ़ाव का यह चक्र नियमित रूप से घूमता रहता है, इसीलिए इसे चक्र का नाम दिया गया है।

### व्यापार चक्रों के प्रकार (Types of Trade Cycles)

व्यापार चक्रों के मुख्य पाँच प्रकार होते हैं जो इस प्रकार हैं—

1. **दीर्घ अवधि के जगलर चक्र** (Long Jugler Cycles)—एक फ्रेंच अर्थशास्त्री **क्लीमेंट जगलर** द्वारा प्रतिपादित किये जाने के कारण इन चक्रों का नाम जगलर चक्र पड़ा। उन्होंने बताया कि तेजी, मन्दी तथा आर्थिक संकट आकस्मिक घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि इनका एक निश्चित क्रम है जो लहर की भाँति गतिशील है। जगलर चक्र की अवधि लगभग $9\frac{1}{2}$ वर्ष की होती है।
2. **अल्पावधि के किचिन वक्र** (Short Kitchin Cycles)—इन्हें लघु चक्र भी कहते हैं जिनकी अवधि लगभग 10 महीने की होती है। इसका नाम किचिन चक्र इसलिए पड़ा क्योंकि एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री **जोसेफ किचिन** ने इनका भेद स्पष्ट किया एवं बताया कि एक प्रमुख चक्र में दो या तीन लघु चक्र होते हैं।
3. **अतिदीर्घ अथवा कोन्द्रातीफ वक्र** (Very long or Kondratef Cycles)—रूसी अर्थशास्त्री **कोन्द्रातीफ** ने 1925 में इस चक्र का प्रतिपादन किया जो 50 वर्ष की अवधि के दीर्घकालीन व्यापार चक्र होते हैं। ये व्यापार चक्र नियमित कारणों से नियमित रूप से उत्पन्न होते हैं।
4. **कुजनेट चक्र** (Kuznet Cycles)—अमेरिकन अर्थशास्त्री **साइमन कुजनेट्स** ने इन चक्रों को प्रतिपादित किया अत: इन्हें कुजनेट्स चक्र कहते हैं। इनकी अवधि 16 से 22 वर्ष की होती है।

TOUCH 'n' PASS

5. **निर्माण चक्र** (Building Cycles)—इन चक्रों का सम्बन्ध निर्माण कार्यों से होने के कारण इन्हें निर्माण चक्र कहते हैं। इन चक्रों की अवधि 18 वर्ष की होती है तथा ये नियमित अवधि के होते हैं।

**प्र.2. व्यापार चक्र के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the causes of trade cycles.**

**उत्तर**

## व्यापार चक्र के कारण
## (Causes of Trade or Trade Cycles)

व्यापार चक्र के अनेक कारण प्रतिपादित किये गये हैं और इनके जो विभिन्न सिद्धान्त हैं, उनमें भी व्यापार चक्र क्यों होते है, इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। यहाँ हम संक्षेप में व्यापार चक्र के कारणों को विवेचन करेंगे—

1. **स्थायी परिवर्तन** (Secular Fluactuations)—मौसमी (Seasonal) तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ तत्त्व स्थायी (Secular) होते हैं जो आर्थिक जीवन में स्थायी अथवा दीर्घकालीन परिवर्तन लाते है। जनसंख्या में वृद्धि, प्राविधिक अथवा तकनीकी (Technical) प्रगति, नवीन आविष्कार अथवा खोज तथा भूमि सुधार, आदि के कारण अर्थतन्त्र में मौलिक परिवर्तन हो जाते हैं। यह परिवर्तन अनेक बार निश्चित योजनाओं के फलस्वरूप भी होते हैं।
2. **मौसमी परिवर्तन** (Seasonal Fluctuations)—कुछ मौसमी तत्त्वों के कारण भी अर्थव्यवस्था का सन्तुलन बिगड़ जाता है एवं माँग-पूर्ति में भारी परिवर्तन होते हैं। जैसे भारत में विवाह कुछ विशेष महीनों में होते हैं और उन दिनों में अनेक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार भारत में होली, दिवाली तथा पाश्चात्य देशों में क्रिसमस आदि के अवसरों पर आर्थिक जीवन में कुछ विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और मूल्यों का सामान्य क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। मौसमी तत्त्व प्राय: नियमित रूप में आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं। कुछ उद्योग अपनी प्रकृति के कारण मौसमी होते हैं जैसे कृषि कार्यों की गतिविधियाँ विशेष मौसम में ही अधिक होती हैं। औद्योगिक तथा व्यापारिक गतिविधियों में जलवायु के कारण भी मौसमी परिवर्तन होते रहते हैं।
3. **आकस्मिक परिवर्तन पैदा करने वाले कारण** (Unexpected Fluctuations)—ये परिवर्तन आकस्मिक होते हैं एवं इनकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। ये परिवर्तन अकाल, बाढ़, सूखा, भूकम्प आदि कारणों से उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी युद्ध अथवा राजनीतिक विवादों से भी ये कारण उपस्थित हो जाते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में असन्तुलनकारी दशाएँ पैदा हो जाती हैं एवं मूल्य, माँग तथा पूर्ति की व्यवस्था बिगड़ जाती है और निश्चित अवधि के लिए अर्थव्यवस्था में अवसाद का दौर आ जाता है, इन कारणों के निराकरण के बाद अर्थव्यवस्था में पुन: सुधार होने लगता है।
4. **चक्रीय परिवर्तन** (Cyclical Fluctuations)—उपरोक्त तीनों तत्त्वों के अतिरिक्त एक अन्य तत्त्व 'चक्रीय तत्त्व' के नाम से विख्यात है। यह तत्त्व बहुत नियमित बताया गया है और अर्थशास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक मन्दी के पश्चात् सामान्य व्यवस्था, सामान्य व्यवस्था के पश्चात् तेजी, पुन: सामान्य व्यवस्था तथा पुन: मन्दी एक निश्चित क्रम है जिसका निरन्तर चलना अवश्यम्भावी है। इस क्रम को ही व्यापार चक्र अथवा व्यवसाय चक्र (Trade cycles or Business cycle) के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त चार प्रकार के परिवर्तनों में अर्थशास्त्रियों का सबसे अधिक ध्यान चक्रीय परिवर्तनों की ओर गया है क्योंकि अन्य तत्त्व या तो बहुत कम प्रभावशाली होते हैं अथवा उनका प्रभाव केवल क्षणिक होता है। यहाँ तक कि दीर्घकालीन अथवा स्थायी तत्त्व भी सम्पूर्ण परिवर्तन धीरे-धीरे उत्पन्न करते हैं। अत: उनका प्रभाव भी विशेष गम्भीर नहीं होता। इसके विपरीत, चक्रीय परिवर्तन (Cyclical fluctuations) इतने वेग एवं शक्ति से आते हैं कि एक बार तो सम्पूर्ण अर्थतन्त्र हिल उठता है और अनेक व्यापारिक एवं औद्योगिक संस्थान धराशायी होने लगते हैं। सन् 1930-34 की भीषण मन्दी ने यूरोप तथा अमरीका के अनेकानेक फलते-फूलते व्यवसायों को देखते-देखते मिट्टी में मिला दिया था।

**प्र.3. व्यापार चक्रों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**
**Describe the characteristics of business cycle.**

**उत्तर**

## व्यापार चक्रों की प्रकृति अथवा विशेषताएँ
## (Nature or Characteristics of Trade Cyles)

व्यापार चक्रों की अग्रलिखित प्रकृति अथवा विशेषताएँ होती हैं—

1. **विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव में असमानता**—उपरोक्त दो कथनों से यह तो स्पष्ट है कि व्यापार चक्र सार्वभौमिक एवं सब व्यवसायों पर प्रभाव डालने वाले होते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सब उद्योगों अथवा सब क्षेत्रों में इस प्रभाव की उग्रता भी समान होती है। वस्तुस्थिति यह है कि पूँजीगत सामान बनाने वाले उद्योगों (यथा—जहाज, मशीनें आदि) पर व्यापार चक्रों का प्रभाव अत्यधिक व्यापक पड़ता है, जबकि उपभोक्ता वस्तु निर्माताओं पर यह प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव**—एक देश से प्रारम्भ होकर व्यापार चक्रों का प्रभाव अन्य देशों में फैल जाता है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। विदेशी व्यापार तथा विदेशी विनिमय के माध्यम से प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण देशों की आवश्यकताएँ एक-दूसरे से इतनी जुड़ गयी हैं कि एक में व्याप्त मन्दी अथवा तेजी का प्रभाव दूसरे पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है।
3. **सभी व्यवसायों पर प्रभाव**—व्यापार चक्र का प्रभाव प्राय: सभी उद्योगों पर एक साथ पड़ता है। यदि तेजी का दौर प्रारम्भ होता है तो सभी व्यवसायों में तेजी की लहर दिखती है और जब मन्दी आती है तो सभी उद्योग इसकी चपेट में आ जाते हैं। इसके दो कारण हैं—प्रथम, बहुत-से व्यवसाय एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक की उन्नति होने पर दूसरे उद्योग के कच्चे अथवा अर्द्धनिर्मित माल की माँग बढ़ती है। दूसरे, एक व्यवसाय में मन्दी आने पर, दूसरों पर भी इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और वहाँ भी अनुमानित मन्दी की व्यवस्था देखने को मिलती है
4. **नियमितता**—एक व्यापार चक्र की अवधि प्राय: 7 से 10 वर्ष तक चलती है तथा इस अवधि के बाद दूसरा चक्र आरम्भ हो जाता है। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में तेजी और मन्दी का दौर देखने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दस वर्षों के अन्तराल से मन्दी और तेजी की अवस्थाएँ आती रही हैं।
5. **समृद्धि और अवसाद की सीमा**—ऐसा अनुमान लगाया गया है कि समृद्धि काल में व्यापारिक गतिविधियाँ दीर्घकालीन प्रवृत्ति की तुलना में 10 से 25 प्रतिशत ऊँची होती है तथा अवसाद की अवधि में 5 से 25 प्रतिशत नीची होती हैं।
6. **समृद्धि और अवसाद में सम्बन्ध**—व्यापार चक्र की दो अवस्थाओं-समृद्धि तथा अवसाद में गहरा सम्बन्ध होता है। सामान्य रूप से समृद्धि की अवधि यदि लम्बी होती है तो अवसाद की अवधि उतनी ही अधिक गहन होती है, किन्तु अवसाद के बाद आने वाली समृद्धि में उक्त प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता।
7. **निरन्तरता**—व्यापार चक्रों की एक अन्य विशेषता यह है कि यह निरन्तर गतिशील होते हैं और प्राय: एक साथ अनेक चक्र कार्यशील रहते हैं। एक साथ चलने वाले इन चक्रों के विभिन्न क्षेत्रों में एक सरीखे प्रभाव ही पड़ते हैं, परन्तु यह चक्र स्वतन्त्र रूप से काम करते हैं। **पीगू** के शब्दों में, "इनकी चाल रूखी और अपूर्ण होती है और एक साथ कार्यशील सभी चक्र एक परिवार के सदस्य होते हैं, परन्तु उनमें से कोई भी दो जुड़वाँ नहीं होते।"

***प्र.4.*** **मजदूरी के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।**
**Explain the meaning of wages.**

***उत्तर***

## मजदूरी का अर्थ
## (Meaning of Wages)

अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी शब्द के अर्थ का प्रयोग संकुचित एवं विस्तृत दोनों ही रूपों में किया है।

### संकुचित अर्थ में प्रयोग (Use in Narrow Sense)

संकुचित अर्थों में निम्नलिखित अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी के अर्थ को स्पष्ट किया है—

1. **जीड** (Gide) के अनुसार, "मजदूरी शब्द का अर्थ किसी भी प्रकार के श्रम के मूल्य से नहीं है बल्कि वह व्यवसायी द्वारा भाड़े पर लगाये गये श्रमिकों के मूल्य को बताता है।"
2. **बेन्हम** (Benham) के अनुसार, "मजदूरी मुद्रा के रूप में वह भुगतान है जो किसी समझौते के अनुसार एक स्वामी अपने सेवक को उसकी सेवाओं के बदले में देता है।"

**आलोचना** (Criticism)—बेन्हम तथा जीड द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार दो बातें स्पष्ट होती हैं—(i) मजदूरी का भुगतान केवल मुद्रा के ही रूप में किया जाता है, तथा (ii) मजदूरी केवल भाड़े के रूप में दी जाती है।

यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि उपर्युक्त दोनों बातें सही नहीं हैं। पहली बात को ही लीजिए। मजदूरी का भुगतान केवल मुद्रा में नहीं किया जाता है, बल्कि व्यवहार में मुद्रा व वस्तु, दोनों के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार, मजदूरी केवल भाड़े के मजदूर को ही नहीं दी जाती है, बल्कि जो लोग स्वतन्त्रतापूर्वक अपना व्यवसाय करते हैं, अर्थात् स्व-नियोजित (self-employed) हैं; जैसे—व्यापारी, वकील, डॉक्टर आदि उन्हें भी अपने सेवाओं का पुरस्कार मिलता है और इसे मजदूरी कहा जाता है।

### विस्तृत अर्थ में प्रयोग (Use in a Broader Sense)

संकुचित अर्थ में मजदूरी की जो व्याख्या की गयी है वह त्रुटिपूर्ण है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया है। जिन अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी की व्याख्या को विस्तृत दृष्टिकोण से दिया है उनमें से प्रमुख अर्थशास्त्रियों के विचारों को नीचे दिया गया है—

1. **सेलिगमैन** (Seligman) के अनुसार, "काम का वेतन ही मजदूरी है।"
2. **मार्शल** (Marshall) के अनुसार, "काम की सेवा के लिए दिया गया मूल्य मजदूरी है।"

**आलोचना**—उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विस्तृत अर्थ में मजदूरी के अन्तर्गत निम्न प्रकार के श्रमिकों की सेवाओं का पारितोषण सम्मिलित किया जाता है—

1. वे कर्मचारी जो स्वतन्त्र रूप से अपने व्यवसाय का संचालन करते हैं।
2. वे व्यवसायी व प्रबन्धक जो अपने व्यवसाय की देख-रेख स्वयं करते हैं।
3. वे श्रमिक जो अपना शारीरिक तथा मानसिक श्रम बेचते हैं।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि व्यवसायियों के द्वारा नौकरी पर रखे लोगों या स्वतन्त्र व्यवसायीको काम के बदले जो कुछ भी आमदनी प्राप्त होती है वह मजदूरी कहलाती है।

**प्र.5. नकद और वास्तविक मजदूरी का क्या अर्थ है?**
**What is the meaning of nominal and real wages?**

**उत्तर**

## नकद और वास्तविक मजदूरी
## (Nominal and Real Wages)

### नकद और वास्तविक मजदूरी का अर्थ (Meaning of Nominal and Real Wages)

नकद (Nominal) और असल या वास्तविक (Real) मजदूरी में मूलभूत अन्तर है। इसे समझने के लिए इनके अर्थ को समझना आवश्यक है—

**(अ) नकद मजदूरी** (Nominal Wages)—नकद मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को एक निश्चित समय में काम करने के लिए मुद्रा में दी जाती है। एक मजदूर नकद मजदूरी (Money wages) इसलिए स्वीकार करता है कि वह उसके माध्यम से अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। नकद मजदूरी लेते समय मजदूर यह अनुमान लगाता है कि वह उस मजदूरी से कितनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पायेगा। प्राय: नकद मजदूरी से श्रमिकों की वास्तविक आर्थिक स्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अत: स्थिति की सही-सही जानकारी के लिए असल या वास्तविक (Real) मजदूरी को विचार में लिया जाता है।

**(ब) वास्तविक मजदूरी** (Real Wages)—एक मजदूर अपनी नकद मजदूरी से जो वस्तुएँ एवं सेवाएँ खरीद सकता है उसे वास्तविक मजदूरी (Real wages) कहा जाता है। वास्तविक मजदूरी के अन्तर्गत केवल नकद मजदूरी से खरीदी जाने वाली वस्तुएँ और सेवाएँ ही नहीं आती हैं, वरन् वे सभी सुविधाएँ एवं प्रासंगिक लाभ (Incidental Gains) भी वास्तविक मजदूरी में शामिल किये जाते हैं जो मजदूर को नकद मजदूरी के अतिरिक्त प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि मजदूर को नकद मजदूरी के अतिरिक्त बोनस, मुफ्त मकान, राशन, मुफ्त चिकित्सा, बच्चों की नि:शुल्क शिक्षा आदि की सुविधाएँ प्राप्त हों तो ये सभी सुविधाएँ उसकी वास्तविक मजदूरी में सम्मिलित की जायेंगी।

TOUCH 'n PASS

वास्तविक मजदूरी के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार दिये हैं, उनमें से कुछ के विचारों को नीचे दिया जा रहा है—

1. **मार्शल** (Marshall) के अनुसार, "वास्तविक मजदूरी में केवल उन सुविधाओं तथा आवश्यक वस्तुओं को ही शामिल नहीं किया जाता है जो कि सेवायोजक के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में श्रम के बदले में दी जाती है बल्कि उन लाभों को भी शामिल किया जाता है, जो व्यवसाय विशेष से सम्बन्धित होते हैं और जिसके लिए उसे कोई विशेष व्यय नहीं करना होता है।"
2. **टॉमस** (Thomas) के अनुसार, "किसी मजदूर को उसके श्रम के बदले में मिलने वाली रकम से जो वस्तुएँ प्रात की जा सकती हैं तथा इस रकम के अतिरिक्त जो आवश्यकता, आराम व विलास के अन्य पदार्थ या सेवाएँ उसे प्राप्त होती हैं इन सबके योग को अर्थशास्त्र में असल मजदूरी कहा जाता है।"
3. **एडम स्मिथ** (Adam Smith) कं अनुसार, "श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में आवश्यकताओं तथा जीवन उपयोगी सुविधाओं की वह मात्रा सम्मिलित होती है, जो उसे उसके श्रम के बदले में दी जाती है। उसकी नकद मजदूरी में केवल मुद्रा की मात्रा ही सम्मिलित होती है। श्रमिक वास्तविक मजदूरी के अनुपात में ही गरीब अथवा अमीर, अच्छी या कम मजदूरी पाले वाला होता है न कि नाममात्र (या नकद) में मजदूरी के अनुपात में।"

**प्र.6. मजदूरी में भिन्नता के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the causes of difference in wages.**

**उत्तर**

## मजदूरी में भिन्नता
## (Difference in Wages)

विभिन्न व्यवसायों में एक ही प्रकार के कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी में भिन्नता देखने में आती हैं। इस मजदूरी की भिन्नताओं के निम्नलिखित कारण हैं—

1. **नौकरी की सुरक्षा एवं पदोन्नति की आशा**—निजी व्यवसाय की अपेक्षा सरकारी नौकरी में व्यक्ति कम वेतन लेने पर ही उद्यत हो जाते हैं क्योंकि सरकारी नौकरी में निजी व्यवसाय की अपेक्षा नौकरी की अधिक सुरक्षा होती है।
2. **प्रशिक्षण व्यय**—जिन व्यवसायों को सीखने में कम व्यय तथा कम समय लगता है, उन व्यवसायों में मजदूरी की दर कम होती है। इसके विपरीत, जिन व्यवसायों के प्रशिक्षण में समय तथा व्यय अधिक होता है उन व्यवसायों में मजदूरी अधिक प्रदान की जाती है। यही कारण है कि एक डॉक्टर तथा इंजीनियर को एक अध्यापक की अपेक्षा अधिक मजदूरी दी जाती है।
3. **कार्य का स्वभाव**—सरल, रुचिकर, स्वास्थ्यकर व सम्मानित कार्यों के लिए कम मजदूरी प्रदान की जाती है, जबकि अरुचिकर, घृणित एवं जोखिम वाले व्यवसायों में मजदूरी की दर अधिक होती है।
4. **स्थान विशेष पर द्रव्य की क्रय-शक्ति**—जिन स्थानों पर द्रव्य की क्रय-शक्ति कम होती है अर्थात् वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य अधिक होते हैं, वहाँ श्रमिकों को आकर्षित करने के लिए अधिक मजदूरी दी जाती है। इसी कारण महानगरों में सामान्य नगरों की अपेक्षा मजदूरों से अधिक मजदूरी दी जाती है।
5. **रोजगार की नियमितता**—जिन व्यवसायों में कार्य निरन्तर व नियमित रूप से चलता रहता है, वहाँ श्रमिकों को उन मजदूरों से अपेक्षाकृत कम मजदूरी प्रदान की जाती है जहाँ कार्य अस्थायी एवं अनिश्चित होता है।
6. **कार्य-क्षमताओं में अन्तर**—मजदूरों की कार्यक्षमता का मजदूरी की दर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अत: अधिक कार्य-क्षमता वाले श्रमिकों को उन श्रमिकों से अधिक मजदूरी प्रदान की जाती है जिनकी कार्य-क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है।
7. **श्रमिकों की मोलभाव करने की शक्ति**—जिन व्यवसायों में श्रमिकों का संगठन सुदृढ़ होता है वहाँ के श्रमिकों में मोलभाव करने की शक्ति अधिक होती है। अत: वे अपेक्षाकृत अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। प्राय: बड़े लोगों में संगठित श्रम संघ होने के कारण श्रमिक ऊँची मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, जबकि छोटे उद्योगों में असंगठित श्रम के कारण श्रमिक कम मजदूरी पर ही कार्य करते रहते हैं।
8. **कार्य की विश्वसनीयता**—जिन व्यवसायों में ईमानदारी तथा विश्वास का विशेष महत्त्व है; उनमें प्राय: ऊँचे वेतन ही दिये जाते हैं। इसी कारण एक बैंक मैनेजर तथा न्यायाधीश को ऊँचा वेतन दिया जाता है।
9. **कार्य के घण्टे व अवकाश**—जिन व्यवसायों में कर्मचारी को अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है व अवकाश भी कम मिलता है वहाँ मजदूरी अधिक प्रदान की जाती है किन्तु उन व्यवसायों में जहाँ कार्य अपेक्षाकृत कम समय तक करना

TOUCH 'n' PASS

पड़ता है एवं छुट्टियाँ भी अधिक प्राप्त होती हैं वहाँ मजदूरी कम प्रदान की जाती है। इसी आधार पर एक बैंक के क्लर्क को एक स्कूल के क्लर्क की अपेक्षा अधिक वेतन प्राप्त होता है।

10. **अतिरिक्त सुविधाएँ**—जिन व्यवसायों में कर्मचारी को नकद मजदूरी के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाती है; जैसे—मकान की सुविधा, नि:शुल्क डॉक्टरी सहायता आदि, वहाँ नकद मजदूरी प्राय: कम दी जाती है।
11. **गतिशीलता का अभाव**—कभी-कभी श्रमिक सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण ऐसे स्थानों पर पहुँचने में असमर्थ रहते हैं जहाँ उन्हें अधिक मजदुरी प्राप्त हो सकती है और वे अपने ही स्थान पर कम मजदूरी पर कार्य करते हैं।

**प्र.7. लगान से आपका क्या अभिप्राय है? लगान की परिभाषाएँ भी लिखिए।**
**What do you mean by rent? Also write the definitions of rent.**

**उत्तर** आय का वह भाग जो भूमिपतियों को उनकी भूमि के प्रयोग के बदले दिया जाता है, लगान कहलाता है।

## लगान की परिभाषाएँ
## (Definitions of Rent)

लगान की परिभाषा भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा अलग-अलग रूपों में दी गयी है। सुविधा की दृष्टि से लगान की परिभाषा को दो भागों में बाँटा गया है—

**( क ) प्रतिष्ठित परिभाषाएँ** (Classical Definitions)—जिन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने लगान की परिभाषा दी है, उन परिभाषाओं को नीचे दिया गया है—

1. **रिकार्डो** (Ricardo) के अनुसार, "भूमि की उपज का वह भाग लगान है जो भूमिपति को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"
2. **मार्शल** (Marshall) के शब्दों में, "समस्त समाज की दृष्टि से प्रकृति के निःशुल्क उपहारों से प्राप्त आय को लगान कहते हैं।"
3. **टॉमस** (Thomas) के अनुसार, "लगान भूमि तथा अन्य प्रकृति-प्रदत्त निश्चित उपहारों के स्वामित्व से प्राप्त होने वाली आय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार, आर्थिक लगान वह भुगतान है जो भू-स्वामी को भूमि के प्रयोग के बदले में दिया जाता है, जिसे आधिक्य (Surplus) भी कहा जाता है, क्योंकि यह भू-स्वामी को बिना परिश्रम के प्राप्त होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने लगान शब्द को संकुचित कर दिया है, क्योंकि उनके अनुसार लगान केवल भूमि से ही प्राप्त होता है, जो गलत है।

**( ख ) आधुनिक परिभाषाएँ** (Modern Definitions)—लगान की आधुनिक परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **बोल्डिंग** (Boulding) के शब्दों में, "आर्थिक लगान वह अतिरेक है, जो साम्य की दशा में काम करने वाले किसी उद्योग में साधन की इकाई को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए उसके न्यूनतम पूर्ति मूल्य अथवा अवसर लागत पर प्राप्त होता है।"
2. **मेयर्स** (Meyers) के शब्दों में, "अर्थशास्त्र में, जब कभी एक उत्पत्ति का साधन उस आय से जैविक आय प्राप्त करता है जो कि इस साधन को वर्तमान व्यवस्था में बनाये रखने के लिए आवश्यक है, तो न्यूनतम पूर्ति कीमत के ऊपर प्राप्त आधिक्य (surplus) को आर्थिक लगान कहा जा सकता है।
3. **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. Joan Robinson) के शब्दों में, "किसी साधन का लगान, उस साधन में उस बचत को कहा जाता है जो उसे न्यूनतम राशि के अतिरिक्त उपलब्ध होता है, जिसके कारण बह साधन उस व्यवसाय में कार्य करने के लिए आकर्षित होता है।"

लगान की आधुनिक परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रत्येक साधन में 'भूमि-तत्त्व' (Land-element) होता है, इसलिए प्रत्येक साधन लगान प्रात करता है। अत: आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान एक साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने के लिए न्यूनतम पूर्ति मूल्य (Minimum Supply Price) अर्थात् अवसर लागत (Opportunity Cost) के ऊपर एक बचत है। स्पष्ट है कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान एक सामान्य पुरस्कार है जो किसी भी साधन को प्राप्त होता है।

TOUCH 'n' PASS

**प्र.8. ब्याज दर में भिन्नता के कारणों का उल्लेख कीजिए।**
**State the causes of difference in the rate of interest.**

**उत्तर**

## ब्याज दर में भिन्नता के कारण
## (Causes of Difference in the Rate of Interest)

ब्याज की दरों में प्राय: भिन्नता देखने को मिलती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों, उद्योगों, स्थानों तथा समय पर ब्याज की दरों में भिन्नता पाई जाती है। ब्याज की दरों में भिन्नता के कारण निम्न हैं—

1. **असुविधाओं में अन्तर** (Difference in Inconvenience)—ब्याज दर की भिन्नता असुविधा की मात्रा पर भी निर्भर करती है। ऋणदाता को जितनी अधिक असुविधा सहन करने की सम्भावना होगी उतनी ही ब्याज दर अधिक होगी।
2. **बन्धक वस्तु में अन्तर** (Difference in the Security of Loans)—जब कोई व्यक्ति सोना, चाँदी. मकान, जेवर आदि गिरवी रखकर ऋण लेता है तो ब्याज की दर कम होगी। कुछ ऋणदाता व्यक्तियों की जमानत पर भी ऋण देते हैं। जमानत न हो तो पैसा डूबने का बहुत अधिक भय रहता है।
3. **ऋण की अवधि में अन्तर** (Difference in Period of Loan)—यदि ऋण की अवधि अधिक हो तो ऋणदाता को अधिक समय के लिए तरलता से वंचित होना पड़ता है और यह भी हो सकता है कि उसे अपनी वर्तमान आवश्यकताओं का त्याग करना पड़े। इसी कारण लम्बी अवधि के ऋण पर ब्याज अधिक होगा।
4. **जोखिम की भिन्नता** (Difference in Risk)—व्यक्ति तथा व्यवसाय के आधार पर जोखिम की भिन्नता होती है। जिन व्यक्तियों की बाजार में साख हो और उनके व्यवसाय में जोखिम कम हो तो उन्हें स्वाभाविक रूप से कम ब्याज पर बाजार में पूँजी उपलब्ध हो जाती है।
5. **प्रबन्ध की लागत में अन्तर** (Difference in Cost of Management)—ऋणदाता को ऋण के प्रबन्ध पर जितनी अधिक लागत सहनी पड़ेगी उसी आधार पर ब्याज दर में भी अन्तर होगा।
6. **प्रतियोगिता** (Competition)—यदि साख बाजार में प्रतियोगिता हो तब ब्याज दर कम होगी। यदि साख बाजार में एक ही व्यक्ति हो अथवा कुछ व्यक्ति मिलकर एकाधिकार स्थापित कर लें तब ब्याज की दर अधिक होगी।
7. **साख संस्थाओं में अन्तर** (Difference in Credit Institutions)—जिन स्थानों पर साख संस्थाएँ विकसित हों, वहाँ ब्याज की दर उन स्थानों की अपेक्षा कम होगी जहाँ साख संस्थाएँ अविकसित हों।
8. **पूँजी की गतिशीलता** (Mobility of Capital)—यदि पूँजी की गतिशीलता अधिक हो तो ब्याज दर कम होगी। विकसित देशों में अविकसित देशों की तुलना में पूँजी की गतिशीलता अधिक होने के कारण ब्याज दर कम होती है।
9. **ऋण के उद्देश्य में अन्तर** (Difference in Motives of Loan)—यदि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिए लिया जाये, जैसे-विवाह, सामाजिक संस्कार, उपभोग की वस्तुओं की खरीद आदि तब उस स्थिति में ब्याज की दर अधिक होगी और यदि ऋण उत्पादक कार्यों के लिए लिया जाये तो ब्याज दर कम होगी।

**प्र.9. ब्याज निर्धारण के प्रमुख सिद्धान्तों के नाम लिखिए एवं सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।**
**Name the main principles of interest determination and critically describe marginal productivity theory.**

**उत्तर**

## ब्याज निर्धारण के सिद्धान्त
## (Theories of Interest Determination)

ब्याज निर्धारण के प्रमुख सिद्धान्तों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है—

**(क) ब्याज के प्राचीन सिद्धान्त** (Old Theories of Interest)—

1. ब्याज का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
2. उपभोग स्थगन अथवा त्याग का सिद्धान्त
3. प्रतीक्षा का सिद्धान्त
4. समय अधिमान सिद्धान्त

TOUCH 'n PASS

**( ख ) ब्याज के नवीन सिद्धान्त** (New Theories of Interest)—

1. ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त
2. नव-परम्परावादी सिद्धान्त अथवा ब्याज का ऋण योग्य कोष सिद्धान्त
3. ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त
4. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त।

### सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त (Marginal Productivity Theory)

यह सिद्धान्त ब्याज दर निर्धारण का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **माल्थस, जे०बी० से** (J. B. Say) आदि विद्वानों ने किया। पूँजी में उत्पादन क्षमता होती है क्योंकि पूँजी की सहायता से श्रम और भूमि की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। फलस्वरूप पूँजी उत्पादन का एक प्रमुख अंग है क्योंकि पूँजी के प्रयोग से उत्पादकता में वृद्धि होती है। इसी बढ़ी हुई उत्पादकता का जो भाग पूँजी के स्वामी को दिया जाता है ब्याज कहलाता है। उत्पत्ति के अन्य साधनों की तरह पूँजी में भी उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। पूँजी के क्रमिक उपयोग किये जाने पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटती है। दीर्घकाल में ब्याज दर की प्रवृत्ति पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने को होती है। जब ब्याज की दर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता से अधिक है तब पूँजी की माँग कम हो जायेगी जिससे पूँजी को सीमान्त उत्पादकता बढ़ेगी और वह तब तक बढ़ती रहेगी जब तक वह ब्याज दर के बराबर न हो जाए। इसके विपरीत, यदि पूँजी सीमान्त उत्पादकता से ब्याज दर कम है तब पूँजी की माँग बढ़ेगी जिससे पूँजी की सीमान्त उत्पादकता गिरेगी और वह गिरकर सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जायेगी।

संक्षेप में, ब्याज के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार दीर्घकाल में ब्याज दर की प्रवृत्ति पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होने की बनी रहती है।

### आलोचनाएँ (Criticisms)

ब्याज निर्धारण के इस सिद्धान्त में निम्न दोष हैं—

1. इस सिद्धान्त में पूर्ति पक्ष को बिल्कुल छोड़ दिया गया है जबकि ब्याज दर निर्धारण में पूर्व पक्ष भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण होता है।
2. पूँजी की उत्पादकता की गणना करना सम्भव नहीं है क्योंकि अन्य साधनों के बिना पूँजी उत्पादन नहीं कर सकती।
3. विभिन्न व्यवसायों में पूँजी की उत्पादकता भी अलग-अलग होती है परन्तु शुद्ध ब्याज दर सदैव एक ही होती है। कुल ब्याज दर में अन्तर पाया जाता है परन्तु शुद्ध ब्याज दर में अन्तर नहीं पाया जाता। इस विरोधाभास को यह सिद्धान्त स्पष्ट नहीं करता।
4. यह सिद्धान्त इस बात पर प्रकाश नहीं डालता कि ऋण उत्पादकीय उद्देश्यों के लिए न लेकर जब अनुत्पादकीय कार्यों के लिए लिये जाते हैं तो ब्याज दर क्यों उत्पन्न होती है।

**प्र.10. लाभ से आप क्या समझते हैं? लाभ की परिभाषा देते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।**
**What do you understand by profit? Giving the definition of profit, mention its characteristics.**

**उत्तर**

## लाभ का अभिप्राय (Meaning of Profit)

एक साहसी अथवा उद्यमी उत्पादन में अनिश्चितता एवं जोखिम उठाता है। इस जोखिम को वहन करने का जो पुरस्कार उसे मिलता है, वह लाभ कहलाता है। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आय का वह भाग जो वितरण की प्रक्रिया में साहसी (या उद्यमी) को प्राप्त होता है, लाभ कहलाता है। लाभ एक अवशेष (Residual) राशि है जो उत्पत्ति के अन्य साधनों को उनका पुरस्कार दे देने के बाद शेष बचती है।

TOUCH 'n' PASS

### लाभ की प्रमुख परिभाषाएँ (Important Definitions of Profit)

लाभ की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **शुम्पीटर** (Schumpeter) के अनुसार, "लाभ साहसी के कार्य का प्रतिफल है अथवा वह जोखिम, अनिश्चितता तथा नव-प्रवर्तन के लिए किया जाने वाला भुगतान है।"
2. **हेनरी ग्रैसन** के अनुसार, "नव-प्रवर्तन करने का पुरस्कार, जोखिम उठाने का पुरस्कार तथा बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण उत्पन्न अनिश्चितताओं का परिणाम लाभ कहा जाता है। इनमें से कोई भी दशा अथवा दशाएँ आर्थिक लाभ उत्पन्न कर सकती हैं।"
3. **जैकब आस्कर** (Jacob Oscar) के अनुसार, "एक व्यवसाय की बाहरी (स्पष्ट) तथा आन्तरिक (अस्पष्ट) मजदूरी, ब्याज तथा लगान देने के पश्चात् जो अवशेष आय रह जाती है वह लाभ है।"
4. **जे०एल० हेन्सन** (J.L. Hansen) के अनुसार, "लाभ एक अवशेष भुगतान है जो उद्यमी को अन्य सभी भुगतान करने के बाद आय के रूप में प्राप्त होता है।"

### लाभ की विशेषताएँ (Characteristics of Profit)

1. लाभ ऋणात्मक (Negative) हो सकता है जबकि अन्य साधनों की आय ऋणात्मक नहीं होती।
2. उत्पादन के अन्य साधनों के पारिश्रमिकों में उतार-चढ़ाव नहीं आते परन्तु लाभ में उत्पादन के अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक उतार-चढ़ाव आते हैं।
3. उत्पादन के अन्य साधनों की आय; जैसे-लगान या किराया, मजदूरी, ब्याज आदि पहले से तय होती है परन्तु लाभ पहले से निश्चित नहीं होता। उत्पादन के अन्य साधनों का भुगतान कर देने के बाद कुल आगम में जो भाग शेष रह जाता है, वही लाभ है। इस प्रकार लाभ पूर्व-निर्धारित नहीं होता बल्कि अवशेष आय (Residual Income) होती है।

**प्र.11. कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ का क्या अर्थ है? कुल लाभ के घटकों का वर्णन करते हुए कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।**

**What is meant by total profit and net profit? Describing the components of total profit, explain the difference between total profit and net profit.**

**उत्तर**

## कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ
## (Total Profit and Net Profit)

एक उत्पादक या फर्म को कुल आय में से उत्पादन साधनों के पुरस्कार तथा घिसाई व्यय को निकाल देने के बाद जो शेष बचता है उसे कुल लाभ (Gross Profit) कहा जाता है। कुल आगम में से स्पष्ट लागतों व अस्पष्ट लागतों को घटा देने के बाद जो कुल बचता है उसे शुद्ध लाभ (Net Profit) कहते हैं।

समीकरण के रूप में,

1. कुल लाभ = कुल आय — स्पष्ट लागतें
   Total Profit = Total Revenue – Explicit Costs
2. शुद्ध लाभ = कुल लाभ - अस्पष्ट लागतें
   Net Profit = Total Profit – Implicit Costs

अथवा, शुद्ध लाभ = कुल आगम – स्पष्ट लागतें – अस्पष्ट लायतें
Net Profit = Total Revenue – Explicit Costs – Implicit Costs

### कुल लाभ के घटक (Components of Total Profit)

1. **साहसी या उद्यमी के निजी साधनों का पुरस्कार** (Remuneration for the Factors Owned by Entrepreneurs)—उद्यमी कभी-कभी अपने व्यवसाय में उन साधनों को भी लगाता है जो स्वयं उसके द्वारा जुटाये जाते हैं। प्राय: छोटे-छोटे दुकानदार उत्पादन के सभी साधन स्वयं जुटाते हैं-दुकान उनकी स्वयं की होती है, पूँजी भी वे स्वयं लगाते हैं, श्रम भी उनका ही होता है और प्रबन्ध तथा जोखिम भी उन्हीं का होता है। ऐसी स्थिति में शुद्ध लाभ की गणना करने के लिए लाभ में से निजी साधनों के पुरस्कार (अस्पष्ट लागत) को घटाना पड़ेगा।

TOUCH 'n' PASS

2. **आकस्मिक लाभ** (Chance Profit)—युद्ध, बाढ़, प्राकृतिक विपत्तियों आदि के कारण कीमतों में परिवर्तन आता है। कीमतों में परिवर्तन होने के कारण उद्यमियों को अचानक लाभ प्राप्त हो जाते हैं। इन लाभों को अप्रत्याशित लाभ भी कहा जाता है।
3. **घिसाई आदि का खर्च** (Depreciation Charges)—उत्पादन में अचल पूँजी; जैसे—मशीन, बिल्डिंग आदि प्रयोग के कारण जो घिसावट होती है, उसे कुल लाभ में शामिल कर लिया जाता है।
4. **शुद्ध लाभ** (Net Profit)—शुद्ध लाभ नये आविष्कार लागू करने, जोखिम तथा अनिश्चितताएँ उठाने के परिणामस्वरूप उद्यमी को प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत जोखिम उठाने का पुरस्कार योग्यता का पुरस्कार, नव-परिवर्तन का पुरस्कार आदि शामिल हैं।

कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ में निम्न अन्तर पाये जाते हैं—

1. कुल लाभ में आन्तरिक लागतें शामिल होती हैं और आन्तरिक लागतों में बीमा तथा घिसावट व्यय शामिल होता है। शुद्ध लाभ में कोई लागत शामिल नहीं होती।
2. कुल लाभ व्यापक होता है जबकि शुद्ध लाभ कुल लाभ का एक भाग होता है।
3. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में शुद्ध लाभ प्राप्त नहीं होता। दीर्घकाल में पूर्ण और अपूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ होता है जो उत्पादन लागत में शामिल होता है।

**प्र.12. विभिन्न व्यवसायों के कुल लाभों में अन्तर के कारणों पर प्रकाश डालिए।**
**Throw light on the reasons of difference in gross profits of different occupations.**

**उत्तर**

## विभिन्न व्यवसायों के कुल लाभों में अन्तर के कारण
## (Reasons of Difference in Gross Profits of Different Occupations)

लाभ के सामान्य स्तर पर व्यापार चक्रों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि कुल लाभ की मात्रा में अन्तर होता है परन्तु शुद्ध लाभ की मात्रा में कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि शुद्ध लाभ ही उद्यमी की सेवाओं का प्रतिफल है। विभिन्न व्यवसायों में कुल लाभ की मात्रा में अन्तर होता है जिसके निम्न कारण प्रमुख हैं—

1. **प्रतियोगिता** (Competition)—हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में दीर्घकाल में उद्यमियों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। अल्पकाल में हो सकता है कि असामान्य लाभ या हानि भी मिले। अपूर्ण प्रतियोगिता व एकाधिकार में स्वाभाविक रूप से पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा लाभ अधिक मिलेंगे।
2. **जोखिम व अनिश्चितता में अन्तर** (Difference in Risk and Uncertainty)—जिन व्यवसायों में जोखिम व अनिश्चितता अधिक होती है, लाभ की मात्रा भी अधिक होती है। उदाहरण के लिए, सट्टा व्यवसाय में सबसे अधिक जोखिम व अनिश्चितता रहती है, इसी कारण लाभ भी बहुत अधिक मात्रा में मिलता है।
3. **उत्पादन लागत में अन्तर** (Difference in Cost of Production)—लाभ ज्ञात करने के लिए हम कुल आगम (TR) में से कुल लागत (TC) को घटाते हैं। अलग-अलग व्यवसायों में उत्पादन साधनों को अधिक पुरस्कार देना पड़ता है, लाभ की दर नीची होती है और ऐसे व्यवसाय जिनमें उत्पादन साधनों को कम पुरस्कार दिया जाता है लाभ की दर ऊँची होती है। इस प्रकार अन्य बातें समान रहने पर भी उत्पादन लागत में अन्तर लाभ की मात्रा में अन्तर लाता है।
4. **आर्थिक परिस्थितियाँ** (Economic Circumstances)—आर्थिक परिस्थितियाँ बदलना स्वाभाविक है जिनके फलस्वरूप आर्थिक निर्णय, आर्थिक नीतियाँ, उत्पादन की तकनीक, फैशन, रुचि, स्वभाव आदि में परिवर्तन होता है। इनसे लाभ की मात्रा में भी अन्तर होता है।
5. **माँग की लोच** (Elasticity of Demand)—जिस वस्तु की माँग ग्राहक के लिए बेलोच होती है, उस वस्तु के उत्पादक को अधिक लाभ होता है और लोचदार माँग वाली वस्तु से उत्पादक को कम लाभ होता है।
6. **उद्यमी की योग्यता** (Entrepreneurial Skill)—उद्यमियों की प्रबन्ध कुशलता, संगठन, योग्यता, निर्णय शक्ति, समन्वय क्षमता आदि अलग-अलग होने के कारण लाभ की मात्रा में भी अन्तर होता है।

TOUCH 'n PASS

## खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

**प्र.1. व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का विस्तृत विवेचन कीजिए।**
**Discuss in detail the different phases of a trade cycle.**

**उत्तर**

### व्यापार चक्र की अवस्थाएँ
### (Phases of a Trade Cycle)

एक व्यापार चक्र की साधारण रूप से चार अवस्थाएँ होती हैं : पुनरुत्थान, विस्तार अथवा समृद्धि, प्रतिसार अथवा सुस्ती एवं अवसाद। निम्न बिन्दु से प्रारम्भ होकर व्यापार चक्र पुनरुत्थान की अवस्था से गुजरकर समृद्धि की ओर बढ़ता है एवं इसके उच्च बिन्दु पर पहुँचता है। फिर प्रतिसार के माध्यम से नीचे की ओर आता है तथा अवसाद की अवस्था में पहुँचता है तथा पुनः निम्न बिन्दु में पहुँच जाता है। निम्न रेखाचित्र में इसे स्पष्ट किया गया है—

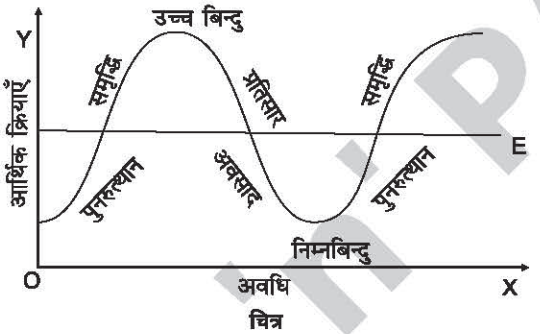

चित्र

रेखाचित्र 1 में $OX$ अक्ष पर अवधि तथा $OY$ अक्ष पर आर्थिक क्रियाओं को दर्शाया गया है। बिन्दु $E$ सन्तुलन की स्थिति दर्शाता है। व्यापार चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का नीचे विवेचन किया गया है—

1. **पुनरुत्थान** (Recovery)—व्यापार चक्र की अवस्था को हम पुनरुत्थान से शुरू करते हैं जो अवसाद के बाद प्रारम्भ होती है। इसे निम्न मोड़ बिन्दु (Lower Turning Point) भी कहते हैं। पुनरुत्थान का प्रारम्भ बाह्य तत्त्वों से हो सकता है या आन्तरिक तत्त्वों से। हम मान सकते हैं कि उद्योगों में टिकाऊ अथवा अर्द्ध टिकाऊ वस्तुओं की क्षमता नष्ट होने लगती है तथा उन्हें प्रतिस्थापन की आवश्यकता होती है जिससे उनकी माँग बढ़ती है। इस माँग की पूर्ति करने के लिए विनियोग एवं रोजगार में वृद्धि होती है। इस उद्योग से सम्बन्धित अन्य उद्योगों की वस्तुओं की माँग भी बढ़ती है। इस तरह पुनरुत्थान की अवस्था प्रारम्भ हो जाती है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर, आय एवं उत्पादन में वृद्धि होती है। चूँकि प्रारम्भ में उद्योगों में अतिरेक क्षमता (Excess Capacity) होती है, उत्पादन के अनुपात में लागत नहीं बढ़ती, किन्तु बाद में लागत बढ़ने से कीमतों में वृद्धि होती है तथा लाभ भी बढ़ते हैं एवं चारों ओर आशावाद की लहर फैल जाती है। बैंक भी ऋण देना प्रारम्भ कर देते हैं। यह संचयी प्रक्रिया समृद्धि को जन्म देती है।
2. **समृद्धि** (Prosperity)—व्यापार चक्र के समृद्धि काल में उत्पादन, माँग, रोजगार तथा आय उच्च बिन्दु पर होते हैं। कीमतों में वृद्धि होती है। इस क्रम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उत्पादन लागत में तत्काल वृद्धि नहीं होती है। लाभ बढ़ने के कारण उत्पादक विनियोग तथा उत्पादन में वृद्धि करने लगते हैं तथा नये उत्पादक व्यवसाय के क्षेत्र में प्रविष्ट होने लगते हैं। फलस्वरूप अधिक पूँजी का विनियोग होता है। अधिक लोगों को रोजगार मिलता है। लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। इससे उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है जिनकी पूर्ति के लिए औद्योगिक इकाइयों का विस्तार किया जाता है और नई इकाइयाँ स्थापित की जाती हैं। इस प्रकार मूल्य रोजगार तथा वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है। यही समृद्धि की अवस्था है। यह समृद्धि की अवस्था अति पूर्ण रोजगार और मुद्रा-स्फीति की अवस्था में पहुँच सकती है। यही समृद्धि की अवस्था का अन्त एवं प्रतिसार (Recession) का प्रारम्भ है। प्रतिसार के बीज, समृद्धि की अवस्था में ही छिपे रहते हैं।
3. **प्रतिसार या सुस्ती** (Recession)—उच्च बिन्दु से नीचे की ओर जाने वाली प्रवृत्ति प्रतिसार को जन्म देती है। प्रतिसार का क्रम कुछ इस प्रकार प्रारम्भ होता है। उत्पादन निरन्तर बढ़ने तथा मूल्यों में वृद्धि होने से, उत्पादकों की लागत तथा बाजार

TOUCH 'n' PASS

मूल्यों में अन्तर कम होने लगता है क्योंकि ब्याज, लगान तथा मजदूरी की दरें कालान्तर में बढ़ जाती हैं एवं उत्पादन लागत बढ़ जाती है जिससे शुद्ध लाभ कम हो जाता है। उद्योगों में भी अन्त में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने लगता है और पूँजी का विनियोग घटने लगता है। ऐसी स्थिति में बैंक भी ऋणों पर अंकुश लगा देते हैं।

प्रतिसार अथवा सस्ती का प्रभाव संचयी होता है। अर्थात् एक बार आरम्भ होकर ऐसे कारक उपस्थित होते हैं जिससे प्रतिसार का प्रभाव बढ़ता जाता है। इसकी तुलना जंगल की आग से की जा सकती है जो स्वयं ही विनाश की शक्तियों का सृजन करती है और आगे बढ़ती जाती है।

4. **अवसाद** (Depression)—प्रतिसार अन्त में जाकर अवसाद की स्थिति में बदल जाती है जहाँ आर्थिक क्रियाओं में सामान्य ह्रास दिखाई देता है। वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन काफी घट जाता है। जिससे रोजगार, आय, माँग और मूल्य में कमी हो जाती है। आय में कमी होने से बैंकों में जमा राशि भी घटने लगती है। साथ ही साख का विस्तार रुक जाता है क्योंकि माँग में कमी होने से विनियोगी एवं उत्पादक ऋण लेने को तैयार नहीं होते।

अवसाद के लक्षणों को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—व्यापक स्तर पर बेरोजगारी, कीमतों में कमी, लाभ, मजदूरी, उपभोग, विनियोग तथा बैंकों में जमा राशि में गिरावट। इससे उद्योग बन्द होने लगते हैं और अन्त में अर्थव्यवस्था अवसाद के गड्ढे में पहुँच जाती है। अवसाद की अवधि कम या अधिक हो सकती है। इस अवधि के बाद विस्तारवादी शक्तियाँ सक्रिय होने लगती हैं और चक्र पूर्ण हो जाता है। **प्रो० मिचेल** के अनुसार, "प्रतिसार तथा पुनरुत्थान की अवधि, समृद्धि तथा अवसाद की अवधि की तुलना में बहुत कम होती है।"

**प्र.2. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए।**

**Explain the marginal productivity theory of distribution.**

**उत्तर**

## वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
## (Marginal Productivity Theory of Distribution)

वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अन्तर्गत साधनों के पारिश्रमिक का निर्धारण किया जाता है। यह सिद्धान्त इस समस्या का समाधान आसानी से करता है कि साधनों का पारिश्रमिक किस प्रकार से निर्धारित किया जाय? इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले प्रमुख अर्थशास्त्री **जे०बी० क्लार्क** (J.B.Clark), **विक्स्टीड** (Wicksteed), **वालरस** (Walras), **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. Joan Robinson) तथा **हिक्स** (J.R. Hicks) हैं। सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त को सामान्य सिद्धान्त भी कहा गया है, क्योंकि उसकी सहायता से उत्पत्ति के सभी साधनों की कीमत-निर्धारण समस्या का अध्ययन किया जाता है।

**सिद्धान्त का सामान्य कथन** (General Statement of the Marginal Productivity Theory)—सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त हमें बताता है कि साधन की कीमत का निर्धारण साधन की उत्पादकता (Productivity) से निर्धारित होता है और यह उत्पादकता साधन की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) से तय होती है।

प्राय: यहाँ यह प्रश्न किया जाता है कि साधन की कीमत, साधन की उत्पादकता पर क्यों निर्भर करती है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वस्तु और साधन की माँग में अन्तर है। वस्तु की माँग प्रत्यक्ष रूप से, उस वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता के आधार पर की जाती है, जबकि साधन की माँग व्युत्पन्न माँग (Derived demand) होती है। साधन की माँग इस बात पर निर्भर करती है कि 'साधन में उत्पादन करने की क्षमता कितनी है' अर्थात् साधन की माँग 'साधन की उत्पादकता पर निर्भर करती है', इसलिए यह कहा जाता है कि जिस साधन की उत्पादकता जितनी अधिक होगी, उसकी माँग भी उतनी ही अधिक होगी और इसके विपरीत भी सही सिद्ध होगा। यही कारण है कि साधन की कीमत का निर्धारण साधन की सीमान्त उत्पादकता से तय होता है।

साधन की सीमान्त उत्पादकता के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

### सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की मान्यताएँ
### (Assumptions of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **परिवर्तित साधन की कीमत की जानकारी**—यह मान लिया गया है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर 'साधन विशेष' को परिवर्तित किया जाता है और परिवर्तित साधन की कीमत को ज्ञात कर लिया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **उत्पत्ति के साधनों में समानता**—उत्पत्ति के साधन विशेष की इकाई समान गुणों, समान उत्पादन क्षमता तथा समान आकार-प्रकार की होती है और साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे को पूर्ण स्थानापन्न (Perfect substitutes) भी होती हैं।
3. **साधनों का प्रतियोगी बाजार**—उत्पत्ति के साधनों के द्वारा उत्पादित वस्तु का बाजार भी प्रतियोगी बाजार मान लिया जाता है।
4. **पूर्ण प्रतियोगिता**—यह मान लिया गया है कि बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की दशा पायी जाती है। क्रेता और विक्रेता आपस में प्रतियोगिता के आधार पर साधनों का क्रय-विक्रय करते तो हैं, परन्तु वे आपस में एक-दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकते हैं।
5. सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की धारणा को मानकर कार्य करता है।
6. **उत्पत्ति ह्रास नियम की मान्यता**—यह मान लिया गया है कि उत्पादन में उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है।
7. **लाभ का अधिकतम करना**—प्रत्येक उत्पादक तथा फर्म का अन्तिम उद्देश्य यह होता है कि वह अपने लाभ में अधिकतम वृद्धि कर लेता है।

**प्र.3. सीमान्त उत्पादकता का क्या अर्थ है? सीमान्त उत्पादकता को कितने प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है?**
**What is the meaning of marginal productivity? How can marginal productivity be expressed?**

**उत्तर**

## सीमान्त उत्पादकता का अर्थ
## (Meaning of Marginal Productivity)

अन्य साधनों को स्थिर रखकर परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, साधन की एक अतिरिक्त इकाई से होने वाले उत्पादन को उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहा जाता है। **प्रो० हिक्स** (J. R. Hicks) के अनुसार, "सीमान्त उत्पादकता जो किसी उपादान को सन्तुलन की दशा में मिलने वाले वास्तविक पुरस्कार का माप है, वह वृद्धि है जो किसी फर्म की उत्पत्ति में किसी उपादान की पूर्ति की एक इकाई बढ़ाने से सम्भव होती है। जबकि फर्म का संगठन उत्पादन के नये स्तर के साथ समायोजित हो गया हो, परन्तु फर्म के शेष संगठन में, जिसमें कीमतों की सामान्य प्रणाली भी सम्मिलित है, कोई परिवर्तन न हुआ हो।" सीमान्त उत्पादकता को तीन प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—

1. **सीमान्त भौतिक उत्पादकता** (Marginal Physical Productivity or MPP)—जब कभी सीमान्त उत्पादकता को 'वस्तु की भौतिक मात्रा' में व्यक्त किया जाता है तब उसे 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' (Marginal Physical Productivity or MPP) कहा जाता है। जब उत्पादन के क्षेत्र में अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की एक अतिरिक्त इकाई को उत्तरोत्तर बढ़ाया जाता है, तब इस साधन के प्रयोग के परिणामस्वरूप कुल भौतिक उत्पादन में जो वृद्धि होती है उस अतिरिक्त वृद्धि को उस साधन की 'सीमान्त-भौतिक उत्पादकता' (MPP) कहा जाता है।

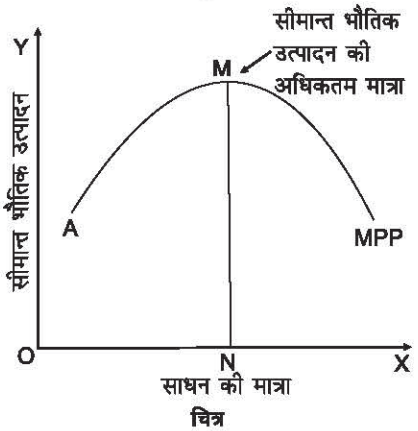

चित्र

उत्पत्ति ह्रास नियम अर्थात् परिवर्तनशील अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions) के क्रियाशील होने के कारण प्रारम्भ में परिवर्तनशील साधन की भौतिक उत्पादकता बढ़ती है। उत्पादकता बढ़ते-बढ़ते एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती है, जो सबसे अधिक होती है और इस चरम बिन्दु के बाद साधन की भौतिक उत्पादकता घटनी प्रारम्भ हो जाती है। इस व्याख्या को दिए गए चित्र से स्पष्ट किया जा सकता है।

चित्र में *Y*-axis पर साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन तथा *X*-axis पर साधन विशेष की इकाइयों को दिखाया गया है। सीमान्त भौतिक उत्पादकता रेखा (MPP-curve) A बिन्दु से M बिन्दु तक लगातार बढ़ती है। M बिन्दु पर भौतिक उत्पादकता सबसे अधिक होती है। M

TOUCH 'n' PASS

बिन्दु के बाद साधन की सीमान्त-भौतिक उत्पादकता घटने लगती है। जैसा कि हम बता चुके हैं परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के क्रियाशील होने के परिणामस्वरूप, भौतिक उत्पादकता एक बिन्दु तक बढ़ती है और उसके बाद घटती है। सीमान्त भौतिक उत्पादकता वक्र का आकार उल्टे U (Inverted U-shape) होता है। इसको घण्टे के आकार या Bell-shaped भी कहते हैं।

2. **सीमान्त आगम उत्पादकता** (Marginal Revenue Productivity or MRP)—फर्म या उत्पादक की नजर केवल इस पर ही नहीं कि उसे उसके साधन के द्वारा कितनी मात्रा में भौतिक उत्पादन उपलब्ध कराया जा रहा है, बल्कि उसकी नजर इस बात पर भी रहती है कि वस्तु को बेचकर उसे कितनी आय प्राप्त हो रही है, अर्थात् प्रत्येक फर्म या उत्पादक का हित सीमान्त-भौतिक उत्पादकता (MPP) की अपेक्षा सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) पर निर्भर है। अत: प्रत्येक फर्म या उत्पादक यह जानना चाहता है कि, किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई को लगाने से उसकी कुल आय में कितनी वृद्धि होती है। सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को हम इस प्रकार से भी परिभाषित कर सकते हैं कि, अन्य साधनों को स्थिर रखने के बाद, परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल आय में जो वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त आगम उत्पादकता कहते हैं।

   सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) को दूसरे शब्दों में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि हम सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आगम (MR) से गुणा कर दे, तो हमें सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) प्राप्त हो जायेगी। संक्षेप में,

$$MPP \times MR = MRP$$

3. **सीमान्त उत्पाद का मूल्य** (Value of Marginal Product or VMP)—सीमान्त मूल्य उत्पाद अथवा सीमान्त मूल्य उत्पादकता को तब प्राप्त किया जा सकता है, जबकि सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को उत्पाद (Product) की कीमत से गुणा कर दिया जाय।

   दूसरे शब्दों में $VMP = MPP \times Price$

   चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य $AR = MR$

   इसलिए $VMP = MPP \times MR = MRP$

अत: यह कहा जाता है कि पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त उपज का मूल्य या सीमान्त मूल्य उत्पाद (MVP) और सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) एक ही होती है।

निम्न तालिका में MPP, MRP तथा VMP की तुलनात्मक स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

| साधन की इकाइयाँ (Units of the Factor) | कुल भौतिक उत्पादन (Total Physical Production) | उत्पादन की कीमत (Price of the Production) | कुल आगम (Total Revenue) | सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) | सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) | सीमान्त उत्पाद मूल्य (VMP = MPP × Price) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 |
| 10 | 100 | 10 | 100 × 10 = 1000 | — | — | — |
| 11 | 100 | 10 | 110 × 10 = 1100 | 110 – 100 = 10 इकाइयाँ | 1100 – 1000 = ₹100 | 10 × 10 = ₹100 |

उपर्युक्त तालिका को देखने से ज्ञात है कि पूर्ण प्रतियोगिता में प्रति इकाई मूल्य 10 रुपया है, परिणामस्वरूप MRP तथा MVP 100 रुपये के बराबर है, परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत स्थिति भिन्न होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता में MRP, VMP के बराबर नहीं होगी। अपूर्ण प्रतियोगिता में VMP से MRP कम होती है।

TOUCH n PASS

**प्र.4. वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।**
**Critically explain the marginal productivity theory of distribution.**

**उत्तर**

## सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना
## (Criticism of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **लाभ अधिकतम करने की मान्यता ठीक नहीं** (Maximum Production Assumption is not True)—सिद्धान्त की यह मान्यता है कि एक फर्म विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करते हुए अपने लाभ को अधिकतम करती है। अधिकतम लाभ की यह मान्यता भी सही नहीं है। कोई भी फर्म उत्पादन करते समय केवल अधिकतम लाभ को ही ध्यान में नहीं रखती है, बल्कि वह अपनी प्रतिष्ठा को भी ध्यान में रखती है।
2. **यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है** (It is based on the Unrealistic Assumption of Perfect Competition)—यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर टिका है, पूर्ण प्रतियोगिता की केवल कल्पना ही की जा सकती है, व्यवहार में इसका महत्त्व नहीं है।
3. **साधनों की सभी इकाइयाँ समान नहीं होती हैं** (All Units of Factors are not Homogeneous)—सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि उत्पत्ति के साधनों की सभी इकाइयाँ समान होती हैं। यह मान्यता व्यावहारिक नहीं है। प्राय: हम देखते हैं कि साधनों की इकाइयों के बीच समरूपता नहीं पायी जाती है। एक इकाई दूसरी इकाई से भिन्न होती है।
4. **एक साधन की सीमान्त उत्पादकता को अलग करना कठिन है** (It is difficult to Isolate the Marginal Productivity of One Factor)—प्राय: यह कहा जाता है कि उत्पत्ति के सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता सामूहिक होती है। उसमें से प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता को अलग करना कठिन है। यद्यपि सीमान्त विश्लेषण की सहायता से इसे ज्ञात करना सम्भव है, पर कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस बात पर सन्देह भी प्रकट किया है।
5. **यह सिद्धान्त समाज में धन के वितरण की असमानता का समर्थन करता है** (Theory Supports Unequal Distribution of Wealth in the Society)—वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त इस बात का समर्थन करता है कि धनी इसलिए अधिक धनी है कि वह अधिक उत्पादन करता है और गरीब इसलिए गरीब है कि वह कम उत्पादन करता है। सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त का यह तर्क धन के वितरण की असमानता को बढ़ावा देता है।
6. **सिद्धान्त वितरण के सामान्य सिद्धान्त के रूप में अपर्याप्त है** (Theory is Inadequate as a General Theory of Distribution)—उत्पत्ति के साधनों का पुरस्कार उनकी उत्पादकता के आधार पर निर्धारित नहीं होता है, बल्कि अनेक ऐसे कारण हैं जो उसके पुरस्कार को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए, श्रम का पुरस्कार उसके सौदा करने की सामर्थ्य के ऊपर निर्भर करता है।
7. **पूर्ण रोजगार की मान्यता ठीक नहीं है** (Assumption of Full Employment is not Correct)—पूर्ण रोजगार के ही कारण एक साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है, परन्तु व्यवहार में पूर्ण रोजगार नहीं पाया जाता है।
8. **उत्पत्ति के साधनों का पूर्णतया गतिशील न होना** (Factors of Production are not Perfectly Mobile)—सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त की एक त्रुटिपूर्ण मान्यता यह है कि यह सिद्धान्त उत्पत्ति के साधनों को पूर्णतया गतिशील मानता है। परन्तु कोई भी साधन पूर्णतया गतिशील नहीं होता है।
9. **यह सिद्धान्त उत्पत्ति के साधनों की कीमत-निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त नहीं है** (It is not a Complete Theory of Factor Pricing)—**फ्रीडमैन** (Friedman) तथा **सैम्युलसन** (Samuelson) ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त अपूर्ण है। **मिल्टन फ्रीडमैन** के अनुसार, "सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण उत्पत्ति के साधनों की कीमत के निर्धारण का पूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता है। वह केवल उन शक्तियों का विश्लेषण करता है जो उत्पत्ति

TOUCH 'n PASS

के साधनों के माँग पक्ष पर कार्य करती हैं, किन्तु साधनों की कीमत उन दशाओं पर भी निर्भर होती है जिनमें उनकी पूर्ति की जाती है।'' अत: मिल्टन फ्रीडमैन के अनुसार, ''सीमान्त उत्पादकता का यह सिद्धान्त साधनों की कीमत निर्धारण का अधूरा सिद्धान्त है।''

**प्र.5. पूर्ण प्रतियोगिता एवं अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?**
**How is wages determined in perfect competition and imperfet competiton?**

**उत्तर**

## पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी दर का निर्धारण
## (Determination of Wage Rate in Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी दर का निर्धारण बाजार की माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के पारस्परिक सामंजस्य से निर्धारित होता है।

मजदूरी की अधिकतम सीमा श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता द्वारा निश्चित होती है, और न्यूनतम सीमा श्रमिकों के जीवन-स्तर से निश्चित होती है।

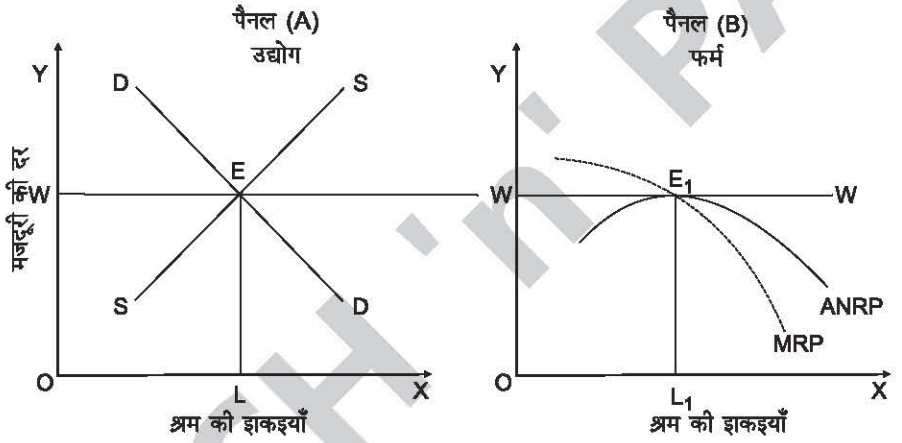


चित्र

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की व्याख्या को उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट किया गया है। चित्र के पैनल $A$ में उद्योग व पैनल $B$ में फर्म की स्थिति को दिखाया गया है। उद्योग में श्रम की माँग-पूर्ति का सन्तुलन $E$ बिन्दु पर है जहाँ मजदूरी की दर $OW$ तय होती है। इस मजदूरी की दर पर श्रम की माँग व पूर्ति $OL$ के बराबर है। यदि मजदूरी की दर इस साम्य दर से ऊँची होती है तो श्रमिकों की पूर्ति बढेगी परन्तु श्रमिकों की माँग के न बढ़ने के कारण मजदूरी की दर घटकर फिर से साम्य पर आ जायेगी। इसके विपरीत, यदि मजदूरी की दर साम्य से कम होती है तो मजदूरों की माँग बढ़ेगी जबकि उनकी पूर्ति कम होगी फलत: मजदूरी की दर बढ़कर फिर से साम्य में आ जायेगी। उद्योग की व्यक्तिगत फर्म इस साम्य मजदूरी दर को स्वीकार करती है। दीर्घकाल में फर्म उस सीमा तक श्रम की मात्रा का प्रयोग करेगी जिस सीमा पर सीमान्त आगम उत्पादकता, औसत शुद्ध आगम उत्पादकता एवं सीमान्त मजदूरी की दर बराबर होती है। जैसा कि चित्र के पैनल $B$ में फर्म $OL_1$ मात्रा में श्रम को लगाती है। इस बिन्द पर सीमान्त मजदरी सीमान्त आगम उत्पादकता एवं औसत शुद्ध सीमान्त उत्पादकता तीनों बराबर हैं। बिन्दु $E_1$ से स्थिति स्पष्ट होती है।

## अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी का निर्धारण
## (Wage Determination Under Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता वाले श्रम बाजार की कई दशाएँ हो सकती हैं, परन्तु हम यहाँ विशेषकर दो दशाओं पर विचार करेंगे—

1. **क्रेता एकाधिकार की स्थिति** (Condition of Monopsony)—क्रेता एकाधिकार की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब श्रम बाजार में कुछ उत्पादक, शेष उत्पादकों की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं या सभी उत्पादक संगठित होकर

TOUCH 'n' PASS

अपना एक संघ बना लेते हैं। इस प्रकार का संगठन, मजदूरी की दर को नियन्त्रित करता है, अत: श्रमिकों के असंगठित होने के कारण उन्हें जो मजदूरी दी जाती है उसे वे स्वीकार कर लेते हैं।

2. **विक्रेता एकाधिकार की स्थिति** (Condition of Monopoly)—दूसरी ओर, श्रम बाजार में, श्रमिक संगठित होकर अपना श्रम बेचते हैं। इस दशा में वे श्रम पूर्ति के एकाधिकारी हो जाते हैं। अत: वास्तविकता यह है कि श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और मजदूरी का निर्धारण उत्पादकों व श्रमिकों के संघों के बीच सौदा करने की शक्ति से निर्धारित होता है।

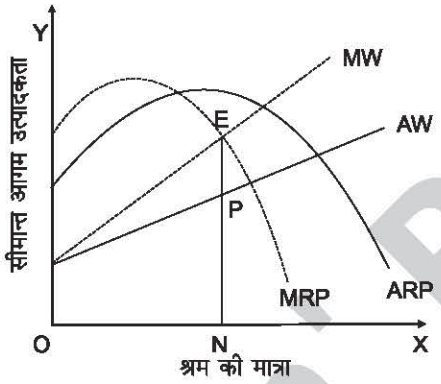


चित्र

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट करने से पूर्व इस बात को भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत औसत मजदूरी रेखा (Average Wage Line *i.e.*, AW) ऊपर को बढ़ती हुई होती है। यही बात 'सीमान्त मजदूरी रेखा' (Marginal Wage Line, *i.e.*, MW) में भी लागू होती है, अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता की तरह से अपूर्ण प्रतियोगिता में AW = MW नहीं होता है। सीमान्त मजदूरी रेखा (MW) का ऊपर को उठता हुआ होना, इस बात को बताता है कि उद्योगपतियों को अतिरिक्त श्रमिकों के काम पर लगाने के लिए ऊँची मजदूरी देनी होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति फर्म का माँग वक्र उसका सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) वक्र होगा।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारण की दशा को चित्र में स्पष्ट किया गया है। उत्पादक श्रम की उस मात्रा को प्रयोग में लायेगा जहाँ पर MRP = MW के हैं। चित्र में इस स्थिति को E बिन्दु से दिखाया गया है। इस सन्तुलन बिन्दु पर फर्म के द्वारा ON मात्रा में श्रमिकों को काम पर लगाया जायेगा और मजदूरी की दर NP तय होगी। चित्र के अनुसार मजदूरों की 'सीमान्त आगम उत्पादकता' (Marginal Revenue Productivity) EN मजदूरी की दर NP से अधिक है। सीमान्त उत्पादकता से कम मजदूरी होने पर श्रमिकों का शोषण होता है, यह शोषण (NE – NP) = PE से दिखाया गया है।

**प्र.6. लगान के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुए आर्थिक लगान और ठेके के लगान के मध्य अन्तर कीजिए।**
**Explaining the different forms of rent, differentiate between economic rent and contract rent.**

**उत्तर**

## लगान के प्रकार
## (Types of Rent)

1. **ठेके के लगान** (Contract Rent)—यह लगान भू-स्वामी एवं काश्तकार के बीच आपसी समझौते द्वारा निश्चित होता है। कुल लगान के अलावा काश्तकारों एवं भू-स्वामियों की सौदा करने की शक्ति भी ठेका लगान को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में ठेका लगान एवं आर्थिक लगान एकसमान होते हैं। जब ठेका लगान आर्थिक लगान से अधिक हो तो इसे अत्यधिक लगान (Rack Rent) कहा जाता है।
ठेके का लगान भूमि की माँग एवं पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि भूमि की माँग पूर्ति की तुलना में अधिक है तब काश्तकारों में भूमि की प्राप्ति के लिए अधिक प्रतियोगिता होगी जिसके कारण आर्थिक लगान से ठेका का लगान ऊँचा होगा। इसके

TOUCH 'n' PASS

विपरीत, भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में अधिक होने पर भू-स्वामियों में भूमि को काश्तकारों को देने के लिए उपयोगिता होगी जिसके कारण ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम हो जायेगा।

2. **आर्थिक लगान** (Economic Rent)—केवल भूमि के प्रयोग के बदले दिया जाने वाला पुरस्कार आर्थिक लगान कहलाता है। **रिकार्डो** के अनुसार, आर्थिक लगान एक शुद्ध लगान है जो श्रेष्ठ भूमि और सीमान्त भूमि की उपज के बराबर होता है। आधुनिक अर्थशास्त्री रिकार्डो के इस विचार से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार, "आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है।"
3. **कुल लगान** (Total Rent)—साधारण भाषा में लगान का अर्थ कुल लगान ही होता है, आर्थिक लगान नहीं होता। भूमि का प्रयोग उसी रूप में नहीं किया जाता जिस रूप में वह प्रकृति से प्राप्त होती है बल्कि इस पर पूँजी व्यय करके इसका सुधार किया जाता है। भू-स्वामी जब भूमि को काश्तकार को प्रयोग के लिए देता है तो वह जोखिम उठाता है और कुछ स्थितियों में प्रबन्ध आदि भी करता है। इस प्रकार भूस्वामी को आर्थिक लगान ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उसके द्वारा लगायी पूँजी पर ब्याज, भूमि के प्रबन्ध के लिए मजदूरी और जोखिम का पुरस्कार भी मिलता है।
   कुल लगान में सम्मिलित किये जाने वाले घटक हैं—
   (i) आर्थिक लगान
   (ii) भूमि सुधार में लगाई गई पूँजी पर ब्याज
   (iii) भूमि प्रबन्ध का व्यय
   (iv) भू-स्वामी द्वारा उठाये गये जोखिम का पुरस्कार
4. **दुर्लभता अथवा सीमितता लगान** (Scarcity Rent)—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होता है। जब किसी साधन की पूर्ति उसकी माँग के सापेक्ष दुर्लभ हो तो लगान की समस्या उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उत्पादन के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त हो सकता है यदि उसकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार न हो।
5. **स्थिति लगान** (Situation Rent)—भूमि की स्थिति के अन्तर के कारण जो लगान उत्पन्न होता है उसे स्थिति लगान कहते हैं। उदाहरण के लिए, विकसित एवं सुविधा सम्पन्न क्षेत्र में मकान का किराया शहर से दूर स्थित अविकसित क्षेत्र की तुलना में अधिक होगा।

### आर्थिक लगान और ठेके के लगान में अन्तर
(Difference between Economic Rent and Contract Rent)

| | आर्थिक लगान | ठेके का लगान |
|---|---|---|
| 1. | सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत घटने या बढ़ने पर आर्थिक लगान घटता या बढ़ता है। | भू-स्वामियों एवं काश्तकारों की सौदेबाजी की शक्ति पर निर्भर करता है। |
| 2. | सीमान्त तथा अधि-सीमान्त भूमियों की उपज में अन्तर द्वारा निर्धारित होता है। | भूमि की माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। |
| 3. | आर्थिक लगान न्यायोचित होता है क्योंकि कम उपजाऊ और अधिक उपजाऊ भूमियों की उर्वरा शक्ति द्वारा निर्धारित होता है। | प्राय: भू-स्वामियों के पक्ष में होता है जिससे सामाजिक शोषण उत्पन्न होता है। |
| 4. | यह लगान पूर्व-निर्धारित नहीं होता। | यह लगान आपसी समझौते द्वारा पूर्व-निर्धारित होता है। |

**प्र.7. लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए। लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विशेषताओं का भी उल्लेख कीजिए।**

**Explain in detail the modern theory of rent. Also mention the peculiarities of the modern theory of rent.**

**उत्तर**

## लगान का आधुनिक सिद्धान्त
## (Modern Theory of Rent)

लगान का आधुनिक सिद्धान्त रिकार्डो के लगान सिद्धान्त पर एक सुधार है। रिकार्डो के अनुसार, भूमि प्रकृति का नि:शुल्क उपहार है जिसमें सीमितता का गुण होता है जिसके कारण भूमि पर लगान प्राप्त होता है। आधुनिक अर्थशास्त्री रिकार्डो के इस कथन से

TOUCH 'n' PASS

पूर्ण सहमत नहीं थे। उनके अनुसार भूमि के अतिरिक्त लगान अन्य उत्पत्ति साधनों पर भी उपस्थित हो सकता है बशर्ते साधन की पूर्ति सापेक्षत: बेलोच हो। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भूमि का प्रयोग केवल अनाज पैदा करने में ही नहीं किया जाता बल्कि भूमि के वैकल्पिक प्रयोग (Alternative Uses) सम्भव हैं। लगान के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या करने का श्रेय **प्रो० जे०एस० मिल** (J. S. Mill) को जाता है परन्तु इसका विकास **जेवन्स, परेटो, मार्शल, श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** आदि ने किया। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक लगान वह आय है जो उत्पादन के किसी साधन को कुल पूर्ति कीमत से अधिक प्राप्त होती है और कुल पूर्ति कीमत साधन की वर्तमान व्यवसाय में वह न्यूनतम आय है जिस पर वह काम करने को तैयार है। इस आय को हस्तान्तरण आय (Transfer Earnings) भी कहते हैं। इस प्रकार, आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार वास्तविक आय एवं हस्तान्तरण आय का अन्तर ही लगान है।

संक्षेप में,

लगान = वास्तविक आय — हस्तान्तरण आय

Rent = Actual Earnings – Transfer Earnings

**श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "लगान के तथ्य का सार वह आधिक्य है जो किसी विशेष साधन को उस काम पर लगाये रखने के लिए कम-से-कम मिलने वाली धनराशि के अतिरिक्त प्राप्त होता है।"

**स्टोनियर** एवं **हेग** के शब्दों में, "लगान वह भुगतान है जो हस्तान्तरण आय से अधिक होता है।"

## सिद्धान्त का आधार (Basis of Theory)

लगान के आधुनिक सिद्धान्त का आधार साधनों की विशिष्टता (Specificity of Factors) है। **वॉन वीजर** (Von Wieser) नामक अर्थशास्त्री ने विशिष्टता के आधार पर उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण दो भागों में किया है—

1. पूर्णतया विशिष्ट साधन (Perfectly Specific Factors),
2. पूर्णतया अविशिष्ट साधन (Perfectly Non-specific Factors)।

जो साधन केवल एक ही प्रयोग में लगाये जा सकते हैं अथवा जिनका कोई वैकल्पिक प्रयोग नहीं होता, उन्हें पूर्णतया विशिष्ट साधन कहा जाता है।

इसके विपरीत, अनेक वैकल्पिक प्रयोग वाले उत्पत्ति के साधनों को पूर्णतया अविशिष्ट साधन कहा जाता है। पूर्णतया अविशिष्ट साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं।

वास्तविकता में उत्पत्ति का कोई भी साधन न तो पूर्णत: विशिष्ट होता है और न ही पूर्णत: अविशिष्ट। उत्पत्ति साधन में विशिष्टता एवं अविशिष्टता दोनों प्रकार के गुण विद्यमान होते हैं। कोई साधन किसी समय विशेष में विशिष्ट हो सकता है तथा वही साधन दूसरे समय में अविशिष्ट भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक भू-खण्ड जिसमें गेहूँ की फसल खड़ी है गेहूँ के प्रयोग के लिए पूर्णतया विशिष्ट होगा क्योंकि उसका कोई वैकल्पिक प्रयोग उपलब्ध नहीं किन्तु गेहूँ की फसल कट जाने के बाद वही भू-खण्ड पूर्णतया अविशिष्ट बन जायेगा क्योंकि उस खाली भू-खण्ड को अब अनेक वैकल्पिक प्रयोगों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, साधन की विशिष्टता लगान उत्पन्न करती है। एक साधन में विशिष्टता का अंश जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक लगान उत्पन्न होगा।

**लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विशेषताएँ** (Peculiarities of Modem Theory of Rent)—प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

1. यदि साधन की पूर्ति पूर्णतया बेलोच है अथवा साधन पूर्णतया विशिष्ट है, तो साधन को प्राप्त होने वाली कुल आय लगान होगी।
2. साधन के अविशिष्ट होने अथवा साधन की पूर्ति के पूर्णतया लोचदार होने पर, साधन को लगान नहीं मिल पाता है।
3. लगान के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण साधन में विशिष्टता का गुण है।
4. आधुनिक लगान सिद्धान्त की सहायता से लगान को सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है, यथा—यदि साधन की वास्तविक आय में से उसकी अवसर लागत को घटा दिया जाय तो लगान की राशि प्राप्त हो जायेगी।
5. उत्पत्ति के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त होता है। इसलिए लगान का सम्बन्ध केवल भूमि के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है।

संक्षेप में, लगान का आधुनिक सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है, जो उत्पत्ति के प्रत्येक साधन पर लागू होता है।

TOUCH 'n PASS

**प्र.8. ब्याज से आपका क्या अभिप्राय है? ब्याज के विभिन्न प्रकारों का भी वर्णन कीजिए।**
**What do you mean by interest? Also describe different types of interest.**

**उत्तर**

## ब्याज का अभिप्राय
## (Meaning of Interest)

अर्थशास्त्र में मौद्रिक पूँजी के उपयोग के लिए दिया जाने वाला भुगतान ब्याज है। ब्याज राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले पूँजीपति को दिया जाता है।

ब्याज की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **कीन्स** के अनुसार, "ब्याज निश्चित अवधि के लिए तरलता के परित्याग का पुरस्कार है।"
2. **विकसल** के अनुसार, "ब्याज उस भुगतान को कहते हैं जो पूँजी उधार लेने वाला पूँजी की उत्पादन शक्ति के कारण पूँजीपति को उसे त्यागने के पुरस्कार स्वरूप मिलता है।"
3. **मेयर्स** के अनुसार, "ब्याज वह मूल्य है जो उधार देने योग्य कोष के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"
4. **मार्शल** के अनुसार, "ब्याज किसी बाजार में पूँजी के प्रयोग की कीमत है।"

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ब्याज मौद्रिक पूँजी के उपयोग का मौद्रिक भुगतान है।

### ब्याज के प्रकार (Kinds of Interest)

ब्याज प्रमुख रूप से दो प्रकार का होता है—कुल ब्याज और शुद्ध ब्याज। कुल ब्याज वह ब्याज है जो वास्तविक जीवन में ऋणदाता द्वारा वसूल किया जाता है। शुद्ध ब्याज (Net Interest) उधार दी गयी राशि के प्रयोग के बदले पुरस्कार है। कुल ब्याज शुद्ध ब्याज से अधिक होता है। इसमें शुद्ध ब्याज के अलावा जोखिम, असुविधा, प्रबन्ध तथा अन्य भुगतान भी शामिल होते हैं। कुल ब्याज (Total Interest) में निम्न तत्त्व शामिल होते हैं—

1. **शुद्ध ब्याज** (Net Interest)—केवल मुद्रा की सेवाओं अथवा ऋण योग्य कोष की सेवाओं के उपयोग के लिए दिया गया पुरस्कार शुद्ध ब्याज कहलाता है। **प्रो० एनातोल मुराद** के अनुसार, "ऋण योग्य कोष के उपयोग के लिए दी जाने वाली कीमत ब्याज कहलाती है। ऋण योग्य कोष को उधार देने के बाद जो आय प्राप्त होती है उसे ब्याज कहा जाता है।" **प्रो० चैपमैन** के अनुसार, "पूँजी के ऋण के लिए शुद्ध ब्याज भुगतान है जबकि कोई जोखिम न हो, बचत की असुविधा छोड़कर कोई असुविधा न हो और उधार देने वाले के लिए कोई काम न हो।"
2. **जोखिम का पुरस्कार** (Reward of Risk)—जब कोई ऋणदाता उधार देता है तो वह जोखिम उठाता है। जोखिम भी दो प्रकार के होते हैं—
   (a) व्यावसायिक जोखिम,
   (b) व्यक्तिगत जोखिम।
   कुछ व्यवसाय अधिक जोखिम वाले होते हैं और कुछ व्यवसाय कम जोखिम वाले। उदाहरण के लिए, कृषि भारत में मानसून का जुआ है। इसी कारण किसान को उधार देते समय व्यावसायिक जोखिम अधिक रहता है। किसान ईमानदार हो तब भी फसल खराब होने पर ऋण वापस करने की स्थिति में नहीं होता। ऐसे व्यवसायों में जब उधार दिया जाता है तो ब्याज दर अधिक ली जाती है। जहाँ तक व्यक्तिगत जोखिम की बात है तो व्यक्ति के चरित्र के साथ जोखिम का सम्बन्ध होता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो उधार वापस देना अपना धर्म नहीं समझते जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो किसी का उधार रुपया अपने पास रख ही नहीं सकते। इस प्रकार झूठे, बेईमान और लापरवाह व्यक्ति को उधार देने में जोखिम अधिक रहता है। ऐसे व्यक्ति को उधार देते समय अधिक ब्याज लिया जाता है और सामान्य रूप से उधार नहीं दिया जाता।
3. **असुविधा का भुगतान** (Payment for Inconvenience)—उधार देने के कारण ऋणदाता को असुविधा सहनी पड़ती है। जितनी अवधि के लिए रुपया उधार दिया जाता है, ऋणदाता को तरलता का त्याग करना पड़ता है और जरूरत के समय पैसा नहीं मिल पाता चाहे आपातकालीन स्थिति ही क्यों न हो। ऋणदाता को रुपया वापस आने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कीमतें बढ़ जायें तो कम क्रय-शक्ति वापस लेनी पड़ती है। बीच में आवश्यकता पड़ जाय तो निजी आवश्यकताओं के उपभोग से वंचित रहना पड़ता है–ये ही वे असुविधाएँ हैं जिनका सामना ऋणदाता को करना पड़ता है। इस असुविधा के बदले वह ऋण लेने वाले व्यक्ति से शुद्ध ब्याज से कुछ अधिक रकम वसूल करता है जिसे हम असुविधा का भुगतान कह सकते हैं।

TOUCH 'n PASS

4. **प्रबन्ध की लागत** (Cost of Management)—प्रत्येक ऋणदाता को ऋण के प्रबन्ध पर कुछ-न-कुछ व्यय अवश्य करना पड़ता है। ऋणी को दी गयी राशि और समय तथा ब्याज आदि की गणना का पूरा लेख-जोखा तैयार करना पड़ता है। इसके लिए खाते व मुनीम आदि भी रखने पड़ जाते हैं। ऋण वसूल करने के लिए तकादे के लिए आना-जाना भी पड़ता है और यदि ऋणी ऋण वापस न करे तो मुकदमे का खर्चा भी वहन करना पड़ता है। इन सब खर्चों को ऋणदाता ऋणी से ही वसूल करता है। इस प्रकार ब्याज के एक अंश के रूप में प्रबन्ध की लागत भी शामिल है।

इस प्रकार,

कुल ब्याज = शुद्ध ब्याज + जोखिम का पुरस्कार + असुविधा का भुगतान + प्रबन्ध की लागत

**प्र.9. ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।**

**Explain the point of view of the classifical theory of interest.**

## उत्तर ब्याज का परम्परावादी सिद्धान्त *अथवा* ब्याज का बचत-विनियोग सिद्धान्त
## (Classical Theory of Interest *Or* Saving Investment Theory of Interest)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **मार्शल, वालरस, पीगू, मिल** आदि अर्थशास्त्रियों ने किया। इस सिद्धान्त को बचत-विनियोग सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति द्वारा होता है। इसीलिए इस सिद्धान्त को 'ब्याज का माँगपूर्ति सिद्धान्त' भी कहा जाता है।

**पूँजी की माँग** (Demand for Capital)—पूँजी की माँग उत्पादक वर्ग द्वारा विनियोग करने के उद्देश्य से की जाती है। पूँजी की माँग पूँजी की उत्पादकता के कारण उत्पन्न होती है। यही कारण है कि पूँजी की माँग पूँजी की सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। उत्पादन में जैसे-जैसे पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है उत्पत्ति ह्रास नियम के कारण पूँजी की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। घटती सीमान्त उत्पादकता के कारण पूँजी की माँग एवं ब्याज दर में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है जिसे नीचे दिए चित्र में $DD$ वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। ब्याज दर $OR$ पर पूँजी की माँग $ON$ है। जब ब्याज दर बढ़कर $OR_1$ हो जाती है तब पूँजी की माँग घटकर $ON_1$ रह जाती है तथा जब ब्याज दर घटकर $OR_2$ रह जाती है तब पूँजी की माँग बढ़कर $ON_2$ हो जाती है।

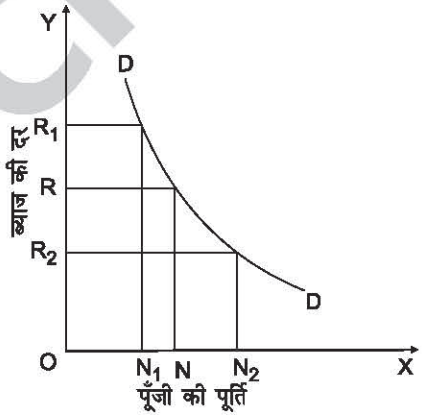


चित्र : पूँजी की माँग

**पूँजी की पूर्ति** (Supply of Capital)—सम्पूर्ण समाज की बचत को पूँजी की पूर्ति कहा जाता है। पूँजी की पूर्ति समाज में बचत की मात्रा पर निर्भर करती है। बचत करने के लिए समाज के व्यक्तियों को वर्तमान उपभोग का परित्याग करना पड़ता है जिसके लिए उसे ब्याज रूपी पुरस्कार की आवश्यकता पड़ती है। यदि बचत करने वाला व्यक्ति पुरस्कार के रूप में ब्याज प्राप्त नहीं करता तब वह बचत करके पूँजी की पूर्ति उपलब्ध नहीं करता। ब्याज और पूँजी की पूर्ति में कार्यात्मक सम्बन्ध (Functional Relation) होता है। ब्याज की दर ऊँची होने पर पूँजी की पूर्ति अधिक होती है और ब्याज की दर नीची होने पर पूँजी की पूर्ति

TOUCH 'n' PASS

घटती है। यही कारण है कि आगे दिए चित्र के अनुसार पूँजी का पूर्ति वक्र $SS$ बायें से दायें ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है। ब्याज की दर $OR$ पर बचतकर्त्ता $ON$ पूँजी की पूर्ति देते हैं। ब्याज की दर के बढ़कर $OR_1$ हो जाने पर पूँजी की पूर्ति बढ़कर $ON_1$ हो जाती है क्योंकि ऊँची ब्याज दर पर लोग अधिक बचत करते हैं। इसके विपरीत ब्याज की दर घटकर $OR_2$ हो जाने पर पूँजी की पूर्ति $ON_2$ तक घट जाती है क्योंकि ब्याज दर घटने पर लोग कम बचत करते हैं।

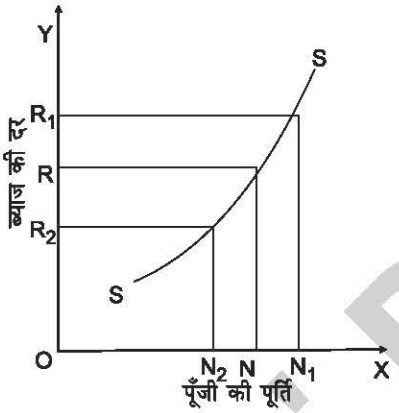


चित्र : पूँजी की पूर्ति

**ब्याज दर का निर्धारण** (Determination of Interest Rate)—प्रतिष्ठित विचारधारा के अनुसार व्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पूँजी की माँग पूँजी की पूर्ति के बराबर होती है। ब्याज दर का निर्धारण नीचे दिए चित्र में प्रदर्शित किया गया है। चित्र में पूँजी का माँग वक्र $DD$ तथा पूँजी का पूर्ति वक्र $SS$ एक-दूसरे को बिन्दु $E$ पर काटते हैं जहाँ $OR$ (या $EN$) ब्याज की दर का निर्धारण होता है। पूँजी की पूर्ति और पूँजी की माँग के असन्तुलित होने पर ब्याज दर स्वत: समायोजित होकर सन्तुलन बिन्दु $E$ पर पहुँच जाती है। अतिरेक पूँजी की पूर्ति होने पर ब्याज दर $OR_1$ से नीचे गिरेगी और तब तक गिरती रहेगी जब तक सन्तुलन ब्याज दर $OR$ प्राप्त नहीं हो जाती। इसी प्रकार अतिरेक पूँजी की माँग होने पर ब्याज की दर बढ़ेगी और बढ़कर सन्तुलन ब्याज दर $OR$ तक पहुँच जायेगी।

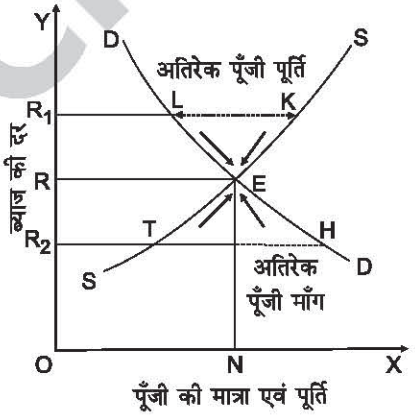


चित्र

**प्र.10. ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।**
**Mention the criticisms of the classical theory of interest.**

**उत्तर**

## ब्याज के परम्परावादी सिद्धान्त की आलोचनाएँ
## (Criticisms of the Classical Theory of Interest)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त की अग्रलिखित आलोचनाएँ हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **अनिर्धारित सिद्धान्त** (Indeterminate Theory)—**कीन्स** के अनुसार यह सिद्धान्त ब्याज की दर को निर्धारित नहीं कर सकता क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर पूँजी की माँग एवं पूँजी की पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर करती है। जब तक ब्याज का पता न हो, बचत और विनियोग निर्धारित नहीं होंगे और जब बचत और विनियोग ही निर्धारित नहीं होंगे तो ब्याज दर किस प्रकार निर्धारित होगी? अत: यह ब्याज का एक अनिर्धारित सिद्धान्त है।
2. **पूँजी की संकुचित धारणा** (Narrow Conception of Supply of Capital)—पूँजी की पूर्ति के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित विचारधारा बड़ी संकुचित है क्योंकि इसमें केवल वर्तमान आय से प्राप्त होने वाली बचत को ही शामिल किया जाता है। पिछली संचित राशि और बैंक साख दोनों ही पूँजी की पूर्ति के प्रमुख स्रोत हैं जिन्हें प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भुला दिया था।
3. **बचत और विनियोग में सन्तुलन** (Equilibrium between Saving and Investment)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि बचत और विनियोग में सन्तुलन ब्याज दर के माध्यम से होता है परन्तु कीन्स के अनुसार यह सन्तुलन ब्याज दर की अपेक्षा आय में होने वाले परिवर्तनों के माध्यम से होता है।
4. **बचत तथा विनियोग पर ब्याज का प्रभाव** (Effect of Interest on Saving and Investment)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि बचत और विनियोग दोनों ही ब्याज दर पर निर्भर करते हैं। **कीन्स** इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि बचत ब्याज दर की अपेक्षा प्रमुख रूप से राष्ट्रीय आय पर ही निर्भर करती है और विनियोग ब्याज की अपेक्षा प्रमुख रूप से पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) पर निर्भर करता है।
5. **पूर्ण रोजगार की मान्यता** (Assumption of full Employment)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। पूर्ण रोजगार वह स्थिति होती है जहाँ देश के सभी प्राकृतिक एवं मानवीय साधन पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रहे होते हैं। पूर्ण रोजगार की अवस्था में पूँजी का भी पूरी क्षमता पर उपयोग होता है। ऐसी दशा में एक ऋणी को पूँजी उसी समय मिल सकती है जबकि उपभोग कम किया जाय और उपयोग कम करने के फलस्वरूप जो त्याग सहन करना पड़ता है उसी का प्रतिफल ब्याज है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि अपूर्ण रोजगार की अवस्था हो तो ब्याज क्यों दिया जायेगा? वास्तविक जीवन में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पायी जाती है।
6. **मुद्रा की निष्क्रियता** (Money Passive)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता है कि मुद्रा निष्क्रिय होती है अर्थात् आर्थिक चर-मूल्यों (Economic Variables) को प्रभावित नहीं करती। वास्तविकता यह है कि मुद्रा निष्क्रिय नहीं होती और कीन्स के अनुसार मुद्रा सक्रिय होती है क्योंकि ब्याज दर ही मुद्रा की पूर्ति और मुद्रा की माँग की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है।
7. **वास्तविक सिद्धान्त** (A Real Theory)—इस सिद्धान्त में ब्याज दर को निर्धारित करने वाले केवल वास्तविक तत्त्वों को ही शामिल किया गया है; जैसे—उत्पादकता, त्याग, प्रतीक्षा, समय, अधिमान आदि। मौद्रिक तत्त्वों की उपेक्षा की गयी है। **कीन्स** ने अपने ब्याज दर सिद्धान्त में मौद्रिक तत्त्वों को ही शामिल किया है।
8. **उपभोग और विनियोग सम्बन्ध की उपेक्षा** (Effect of Lesser Consumption on Investment Ignored)—इस सिद्धान्त में उपभोग के प्रभाव को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। **कीन्स** का कहना है कि जब उपभोग माँग कम होती है तो अर्थव्यवस्था की समर्थ माँग भी कम होती है। समर्थ माँग होने से विनियोग के लिए प्रोत्साहन भी कम होता है। यह सिद्धान्त इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा करता है।
9. **बचत अनुसूची और विनियोग अनुसूची** (Saving Schedule and Investment Schedule)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि यदि किन्हीं कारणों से विनियोग में कमी अथवा वृद्धि हो जाय तो इसका बचत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वास्तव में यह बात गलत है। उदाहरण के लिए, यदि विनियोग कम हो जाता है तो आय कम हो जायेगी और इसके फलस्वरूप बचत भी कम हो जायेगी।

अत: ब्याज निर्धारण का यह सिद्धान्त भी एक आदर्श सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता।

TOUCH 'n PASS

**प्र.11. ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।**
**Explain in detail the modern theory of interest.**

**उत्तर**

## ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त
## (Modern Theory of Interest)

ब्याज के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन **प्रो० हिक्स** (Hicks) तथा **प्रो० हेन्सन** (Hansen) ने किया। इसी कारण ब्याज के इस सिद्धान्त को **हिक्स-हेन्सन समन्वय सिद्धान्त** (Hicks-Hansen Synthesis) भी कहा जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर वास्तविक तत्त्वों (Real Factors) जैसे—विनियोग तथा बचत पर निर्भर करती है। कीन्स का सिद्धान्त ब्याज की दर को पूर्णत: मौद्रिक घटना के रूप में परिभाषित करता है। कीन्स के अनुसार ब्याज की दर मुद्रा की माँग (अथवा तरलता पसन्दगी) तथा मुद्रा की पूर्ति द्वारा प्रभावित होती है।

**प्रो० हिक्स** ने दोनों ही विचारधाराओं को अपूर्ण बताते हुए स्पष्ट किया कि प्रतिष्ठित विचारधारा वस्तु बाजार के सन्तुलन को बताती है जिसमें ब्याज दर के निर्धारण के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह सिद्धान्त केवल यह बतलाता है कि विनियोग-बचत समानता की दशा में विभिन्न ब्याज की दरों पर आय के स्तर क्या होंगे? कोन्स का सिद्धान्त मुद्रा बाजार के सन्तुलन को बताता है जिसमें ब्याज की दर पुन: अनिर्धारणीय है क्योंकि यह सिद्धान्त केवल मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति में समानता की दशा को स्पष्ट करता है।

**प्रो० हिक्स** एवं **प्रो० हेन्सन** ने उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का उचित समन्वय करके ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। आधुनिक सिद्धान्त में आय परिवर्तन का मौद्रिक एवं वास्तविक तत्त्वों पर प्रभाव देखकर ब्याज दर का निर्धारण किया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सिद्धान्त में मौद्रिक एवं वास्तविक तत्त्वों का एकीकरण करके ब्याज दर निर्धारित की गयी है।

प्रतिष्ठित विचारधारा एवं कीन्स की तरलता पसन्दगी विचारधारा का समन्वय (Synthesis) करके हमें निम्नलिखित चार तत्त्व प्राप्त होते हैं—

1. विनियोग माँग वक्र (Investment Demand Function)
2. बचत वक्र (Saving Function)
3. तरलता पसन्दगी वक्र (Liquidity Preference Curve)
4. मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)।

उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर हमें दो प्रकार के वक्र प्राप्त होते हैं—

1. **विनियोग बचत वक्र** (IS Curve)—विनियोग बचत वक्र, प्रतिष्ठित सिद्धान्त से प्राप्त किया जाता है जो ब्याज एवं आय के ऐसे संयोगों को बताता है जिन पर विनियोग एवं बचत बराबर होते हैं। (IS curve depicts those different combinations of interest and income level which keep I = S)।

   इस प्रकार, वस्तु बाजार में वास्तविक तत्त्वों के सन्तुलन को बताने वाला वक्र IS वक्र कहलाता है। वस्तु बाजार में,

   $I = f(r)$ अर्थात् विनियोग ब्याज की दर का फलन है।

   $S = f(Y)$ अर्थात् बचत आय का फलन है।

   तथा $I = S$ अर्थात् वस्तु बाजार में सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि विनियोग तथा बचत बराबर हों।

   वस्तु बाजार के इन सभी कारणों की सहायता से $IS$ वक्र की व्युत्पत्ति की जा सकती है। चित्र 1 में $IS$ वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के $A$ भाग में विभिन्न आय स्तरों $Y_1$, $Y_2$, $Y_3$, $Y_4$ तथा $Y_5$ पर बचत वक्र (Saving Curve) क्रमश: $S_1Y_1$, $S_2Y_2$, $S_3Y_3$, $S_4Y_4$ तथा $S_5Y_5$ हैं। इन विभिन्न आय स्तरों पर बचत वक्र विनियोग वक्र के साथ समानता ($I = S$) स्थापित करते हुए क्रमश: ब्याज को दर $r_1$, $r_2$, $r_3$, $r_4$ तथा $r_5$ निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का $A$ भाग हमें यह बतलाता है कि विभिन्न आय स्तरों पर बचत तथा विनियोग की समानता की दशा में ब्याज की विभिन्न दरें क्या है? चित्र के भाग $B$ में इसी सम्बन्ध का निरूपण किया गया है।

TOUCH 'n' PASS

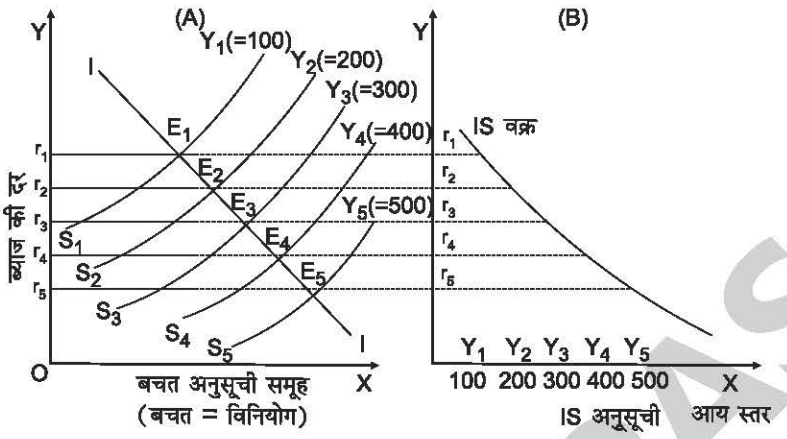


चित्र 1 : IS वक्र की व्युत्पत्ति

*IS* वक्र ऐसे बिन्दुओं का बिन्दुपथ (Locus) है जो आय एवं ब्याज की दर के उन विभिन्न संयोगों को बताता है जिन पर बचत एवं विनियोग समान होते हैं।

2. ***LM* वक्र** (*LM* Curve)—**कीन्स** के विश्लेषण के अनुसार, अर्थव्यवस्था में ब्याज दर पूर्णत: एक मौद्रिक घटना है। ब्याज दर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। आय के विभिन्न स्तरों पर तरलता पसन्दगी (Liquidity Preference) के भी कई स्तर होंगे। दूसरे शब्दों में, कीन्स की तरलता पसन्दगी विचारधारा से *LM* वक्र की उत्पत्ति की जा सकती है।

*LM* वक्र हमें यह बतलाता है कि तरलता पसन्दगी वक्र दिये हुए होने की दशा में विभिन्न आय स्तरों पर ब्याज की क्या-क्या दरें होंगी।

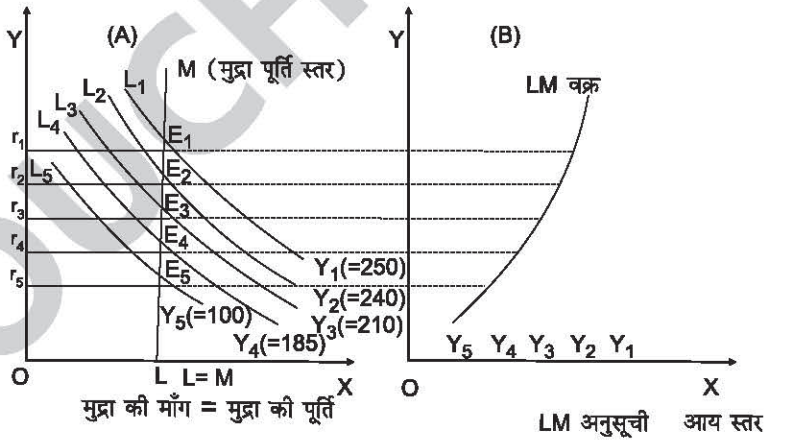


चित्र 2 : LM वक्र की व्युत्पत्ति

चित्र 2 में, *LM* वक्र की व्युत्पत्ति समझायी गयी है। चित्र के भाग *A* में स्थिर मुद्रा की पूर्ति को *ML* वक्र द्वारा दिखाया गया है। विभिन्न आय स्तरों $Y_1$, $Y_2$, $Y_3$, $Y_4$ तथा $Y_5$ पर तरलता पसन्दगी वक्र क्रमश: $L_1Y_1$, $L_2Y_2$, $L_3Y_3$, $L_4Y_4$ तथा $L_5Y_5$ प्रदर्शित किये गये हैं जो विभिन्न आय स्तरों पर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति में समानता ($L = M$) स्थापित करते हुए विभिन्न ब्याज की दरें क्रमश: $r_1$, $r_2$, $r_3$, $r_4$ तथा $r_5$ निर्धारित करते हैं। इस प्रकार चित्र का *A* भाग स्पष्ट रूप से हमें मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति की समानता की दशा में आय-स्तर तथा ब्याज की दर के सम्बन्ध को बताता है। चित्र के *B* भाग में इसी सम्बन्ध को

TOUCH n PASS

*LM* वक्र की सहायता से व्यक्त किया गया है। *LM* वक्र आय तथा ब्याज की दर के ऐसे संयोग बिन्दुओं का बिन्दुपथ है जिन पर मुद्रा की पूर्ति (*M*) तथा मुद्रा की माँग (*L*) परस्पर बराबर हों। *LM* वक्र की सहायता से हम दिये गये आय-स्तरों पर ब्याज की दरों का अनुमान लगा सकते हैं किन्तु यदि हमें पहले से आय-स्तर का पता हो तो हम ब्याज की दर का अनुमान नहीं कर सकते।

## ब्याज दर का निर्धारण (Determination of Interest Rate)

*IS* वक्र तथा *LM* वक्र दोनों की सहायता से हम ब्याज की दर तथा आय-स्तर का निर्धारण कर सकते हैं। निर्धारण की इस प्रक्रिया को चित्र 3 में समझाया गया है। चित्र में आरम्भिक $IS_1$ वक्र तथा $LM_1$ वक्र एक-दूसरे को बिन्दु $E_1$ पर काटते हैं तथा $Or_1$ ब्याज दर तथा $OY_1$ आय-स्तर निर्धारित होते हैं। इस सन्तुलन बिन्दु $E_1$ पर आय-स्तर तथा ब्याज की दर में सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है कि—(i) विनियोग एवं बचत सन्तुलन में हों [अर्थात् वास्तविक बचत एवं विनियोग इच्छित बचत (Desired) के बराबर हों] तथा (ii) मुद्रा की माँग, मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए (अर्थात् माँगी गयी मुद्रा की मात्रा वास्तविक मुद्रा की पूर्ति के बराबर होनी चाहिए।)

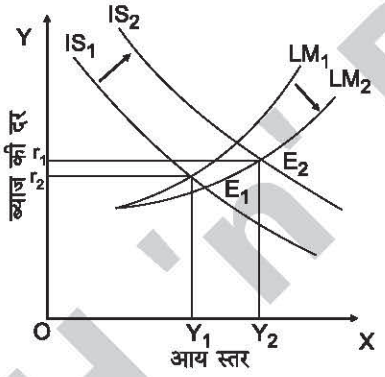


**चित्र 3 : ब्याज दर निर्धारण**

चित्र में $IS_2$ परिवर्तित विनियोग-बचत वक्र को बताता है। विनियोग-बचत वक्र का यह परिवर्तन विनियोग फलन में वृद्धि अथवा बचत फलन में कमी के कारण उत्पन्न होता है। परिवर्तित $LM_2$ वक्र मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि और/अथवा तरलता पसन्दगी में कमी के कारण उपस्थित होता है। परिवर्तित $IS_2$ तथा $LM_2$ वक्रों के साथ $Or_2$ ब्याज दर तथा $OY_2$ आय-स्तर निर्धारित होते हैं।

इस प्रकार ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त निर्धारणीय है जो निम्नलिखित फलनों पर आधारित है—

1. विनियोग माँग फलन

$$I = I(r)$$

अर्थात् विनियोग ब्याज की दर का फलन होता है।

2. बचत फलन

$$S = S(Y, r)$$

अर्थात् बचत, आय-स्तर तथा ब्याज की दर दोनों का फलन होती है।

3. तरलता पसन्दगी फलन

$$L = L(Y, r)$$

अर्थात् मुद्रा की माँग, आय-स्तर तथा ब्याज की दर पर निर्भर करती है।

4. मुद्रा की मात्रा जो सरकार द्वारा नियन्त्रित की जाती है, स्थिर होती है।

उपर्युक्त फलनों के आधार पर सन्तुलन शर्तों को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है—

1. $I = S$ अर्थात् विनियोग = बचत
2. $L = M$ अर्थात् मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

TOUCH 'n' PASS

**प्र.12. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए–1. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त, 2. लाभ का लगान सिद्धान्त, 3. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त।**

**Explain the following : 1. The wage theory of profit, 2. The rent theory of profit, 3. The dynamic theory of profit.**

**उत्तर**

## 1. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त
## (The Wage Theory of Profit)

इस सिद्धान्त को प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **टॉजिग** (Taussig) ने प्रतिपादित किया और इसका समर्थन अमेरिका के ही अर्थशास्त्री **प्रो० डेवनपोर्ट** (Devenport) ने किया। इन अर्थशास्त्रियों का विचार था कि 'लाभ मजदूरी का दूसरा रूप है।' दूसरे शब्दों में, लाभ एक प्रकार से उद्यमी की मजदूरी है जो उसे अपनी सेवाओं के बदले प्राप्त होती है। टॉजिग के शब्दों में, 'लाभ एक प्रकार से साहसी (या उद्यमी) की मजदूरी है जो उसे उसकी विशेष योग्यता और बुद्धिमानी के कारण मिलती है।' टॉजिग उद्यमी को श्रमिक ही मानते हैं क्योंकि अर्थशास्त्र में कोई भी कार्य चाहे शारीरिक हो या मानसिक, यदि आर्थिक प्रतिफल की दृष्टि से किया जाय तो उसे श्रम कहा जाता है। डॉक्टर, अध्यापक, वकील आदि की मानसिक सेवाएँ श्रम के अन्तर्गत ही शामिल की जाती हैं। उद्यमी के कार्य को भी मानसिक कार्य माना जा सकता है और इसके बदले जो पुरस्कार दिया जाता है वही लाभ है।

### आलोचना (Criticism)

आलोचकों के अनुसार टॉजिग ने श्रम और साहस दोनों को एकसमान मानकर लाभ को मजदूरी का दूसरा रूप मान लिया है जो गलत है। श्रम की मजदूरी एवं साहसी के लाभ में मौलिक अन्तर पाये जाते हैं जिनकी यह सिद्धान्त उपेक्षा करता है। दोनों में प्रमुख अन्तर हैं—

1. अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ बढ़ते हैं क्योंकि साहसी (अथवा उद्यमी) अपनी वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचता है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी में कमी होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
2. उद्यमी को जोखिम व अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता है जबकि श्रमिक को ऐसी कोई समस्या नहीं होती।
3. लाभ एक अवशेष (Residue) भुगतान है जबकि मजदूरी एक ठेका भुगतान है। लाभ ऋणात्मक (Negative) हो सकता है जबकि मजदूरी सदैव धनात्मक (Positive) रहती है।
4. संयुक्त पूँजी कम्पनी के अंशधारी लाभ प्राप्त करते हैं जबकि वे कोई भी मानसिक श्रम नहीं करते।

आलोचकों के अनुसार उपर्युक्त मौलिक भेदों के कारण मजदूरी और लाभ को समानार्थी नहीं माना जा सकता।

## 2. लाभ का लगान सिद्धान्त
## (Rent Theory of Profit)

इस सिद्धान्त की परिकल्पना का श्रेय ब्रिटिश अर्थशास्त्री सीनियर (Senior) तथा मिल (Mill) को जाता है परन्तु प्रस्तुत करने का श्रेय अमेरिकन अर्थशास्त्री **प्रो० वाकर** (Walker) को जाता है। यह सिद्धान्त वाकर के नाम से ही जाना जाता है। इस सिद्धान्त का आधार रिकार्डो का लगान सिद्धान्त है। रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक उपज है जो अधिक उर्वरता वाली भूमियों पर सीमान्त भूमि की अपेक्षा प्राप्त होती है। जिस प्रकार भूमि के भिन्न-भिन्न टुकड़ों की उपजाऊ शक्ति में अन्तर होता है उसी प्रकार उद्यमियों की योग्यता में भी अन्तर पाया जाता है। सीमान्त भूमि की भाँति सीमान्त उद्यमी सामान्य योग्यता का व्यक्ति होता है और वह अपनी वस्तु को उत्पादन लागत पर ही बेच पा सकने के कारण कोई आधिक्य प्राप्त नहीं कर पाता। सीमान्त उद्यमी से अधिक योग्य व कार्यकुशल उद्यमी आधिक्य प्राप्त कर लेते हैं, वही लाभ है। इस प्रकार लाभ योग्यता को लगान है।

### आलोचना (Criticism)

इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न पाये गये हैं—

1. यह सिद्धान्त एकाधिकारी लाभ व आकस्मिक लाभ को स्पष्ट नहीं करता।
2. सीमान्त उद्यमी की परिकल्पना की गलत है क्योंकि सामान्य लाभ न मिलने पर उद्यमी व्यवसाय छोड़ जाता है।
3. संयुक्त पूँजी कम्पनी के हिस्सेदारों को जो लाभांश मिलता है उसमें योग्यता का प्रश्न ही नहीं आता।
4. लाभ व लगान दोनों में मौलिक अन्तर है क्योंकि लगान कभी भी ऋणात्मक नहीं हो सकता।
5. यह सिद्धान्त लाभों में पाये जाने वाले अन्तर को स्पष्ट करता है, उसकी प्रकृति को स्पष्ट नहीं करता।

TOUCH 'n PASS

## 3. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त
## (Dynamic Theory of Profit)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **प्रो० जे०बी० क्लार्क** (J.B. Clark) ने किया। लाभ स्थिर समाज की वस्तु न होकर गतिशील समाज में ही उत्पन्न होता है। स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ नहीं मिलता, केवल प्रबन्ध की मजदूरी मिलती है। स्थिर अर्थव्यवस्था में निश्चितता और ज्ञान की पूर्णता होती है। **प्रो० क्लार्क** के अनुसार, गतिशील अर्थव्यवस्था को निम्न पाँच विशेषताएँ होती हैं—

1. जनसंख्या बढ़ती जाती है (Population is Increasing)।
2. पूँजी में वृद्धि होती है (Capital is Increasing)।
3. उत्पादन की विधियों में सुधार होता है (Methods of Production are Improving)।
4. औद्योगिक संस्थानों के रूप भी बदल जाते हैं अर्थात् अकुशल संगठन का स्थान कुशल संगठन ग्रहण करते हैं (Forms of industrial establishment are changing, the less efficient firms are going out of the market and the more efficient ones are surviving)।
5. उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं में वृद्धि होती रहती है (Wants of Consumer's are Maltiplying)।

उपर्युक्त कारणों से अनिश्चितताएँ उत्पन्न होती हैं और कीमत तथा लागत में परिवर्तन होने के कारण लाभ उत्पन्न होता है। समाज में परिवर्तन की गति तेज होने पर लाभ की मात्रा भी बढ़ती है।

### आलोचना (Criticism)

अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त के प्रमुख दोष निम्न बताये हैं—

1. सभी प्रकार के परिवर्तन लाभ को जन्म नहीं देते बल्कि केवल वे परिवर्तन जो अनिश्चित या अज्ञात होते हैं, लाभ को जन्म देते हैं।
2. यह कहना भी गलत है कि स्थिर अर्थव्यवस्था में लाभ बिल्कुल नहीं मिलता।
3. इस सिद्धान्त में लाभ और प्रबन्ध की मजदूरी के बीच एक काल्पनिक अन्तर किया गया है।
4. इस सिद्धान्त में जोखिम तत्त्व की पूर्णत: उपेक्षा की गई है।

❑

TOUCH n PASS

# मॉडल पेपर

## व्यावसायिक अर्थशास्त्र

**B.Com.-I (SEM-II)** [ पूर्णांक : 75

**नोट**—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

### खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

**1.** अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।

**2.** उत्पादक के अधिकतम लाभ के बिन्दु का निर्धारण किन तत्त्वों पर निर्भर करता है?

**3.** प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

**4.** वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की किन्हीं चार मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।

**5.** मजदूरी के किन्हीं दो सिद्धान्तों के नाम लिखिए।

### खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

**6.** जनांकिकीय संक्रमण सिद्धान्त की आलोचना के मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए तथा इस सिद्धान्त का मूल्यांकन भी कीजिए।

***अथवा*** बड़े पैमाने के उत्पादन से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों की अविभाज्यता सम्बन्धी बचत एवं प्रतियोगिता सम्बन्धी मितव्ययताओं को स्पष्ट कीजिए।

**7.** विशुद्ध एकाधिकार से आप क्या समझते हैं? इसकी दशाओं का भी उल्लेख कीजिए।

***अथवा*** एकाधिकारी का क्या उद्देश्य है? क्या एकाधिकारी कीमत सदैव स्पर्धात्मक कीमत से ऊँची होती है?

**8.** व्यापार चक्र से आप क्या समझते हैं? व्यापार चक्र के प्रकारों का भी उल्लेख कीजिए।

***अथवा*** कुल लाभ एवं शुद्ध लाभ का क्या अर्थ है? कुल लाभ के घटकों का वर्णन करते हुए कुल लाभ तथा शुद्ध लाभ के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

### खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।*

**9.** व्यावसायिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र का वर्णन कीजिए एवं आर्थिक सिद्धान्तों का व्यावसायिक अर्थशास्त्र में उपयोग बताइए।

***अथवा*** अनुकूलतम जनसंख्या सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

**10.** उत्पादन समयावधि के आधार पर लागतों को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है? अल्पकालीन लागत की व्याख्या कीजिए।

TOUCH 'n' PASS

***अथवा*** दीर्घकालीन सीमान्त लागत तथा दीर्घकालीन औसत लागत के बीच क्या सम्बन्ध है?

**11.** परिवर्तनशील अनुपात के नियम से आप क्या समझते हैं? इस नियम की कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता एवं सीमान्त उत्पादकता की सहायता से व्याख्या कीजिए।

***अथवा*** बाजार को कितने रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है? क्षेत्र, समय एवं प्रतियोगिता के आधार पर बाजार का विस्तृत वर्णन कीजिए।

**12.** अपूर्ण प्रतियोगिता का क्या अर्थ है? अपूर्ण प्रतियोगिता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

***अथवा*** अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण का अध्ययन किन बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है? स्वीजी के गैर-कपट सन्धि (किंकित माँग वक्र) अल्पाधिकार मॉडल को सविस्तार समझाइए।

**13.** लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए। लगान के आधुनिक सिद्धान्त की विशेषताओं का भी उल्लेख कीजिए।

***अथवा*** निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—1. लाभ का मजदूरी सिद्धान्त, 2. लाभ का लगान सिद्धान्त, 3. लाभ का प्रावैगिक सिद्धान्त।

❑

TOUCH 'n' PASS


- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।